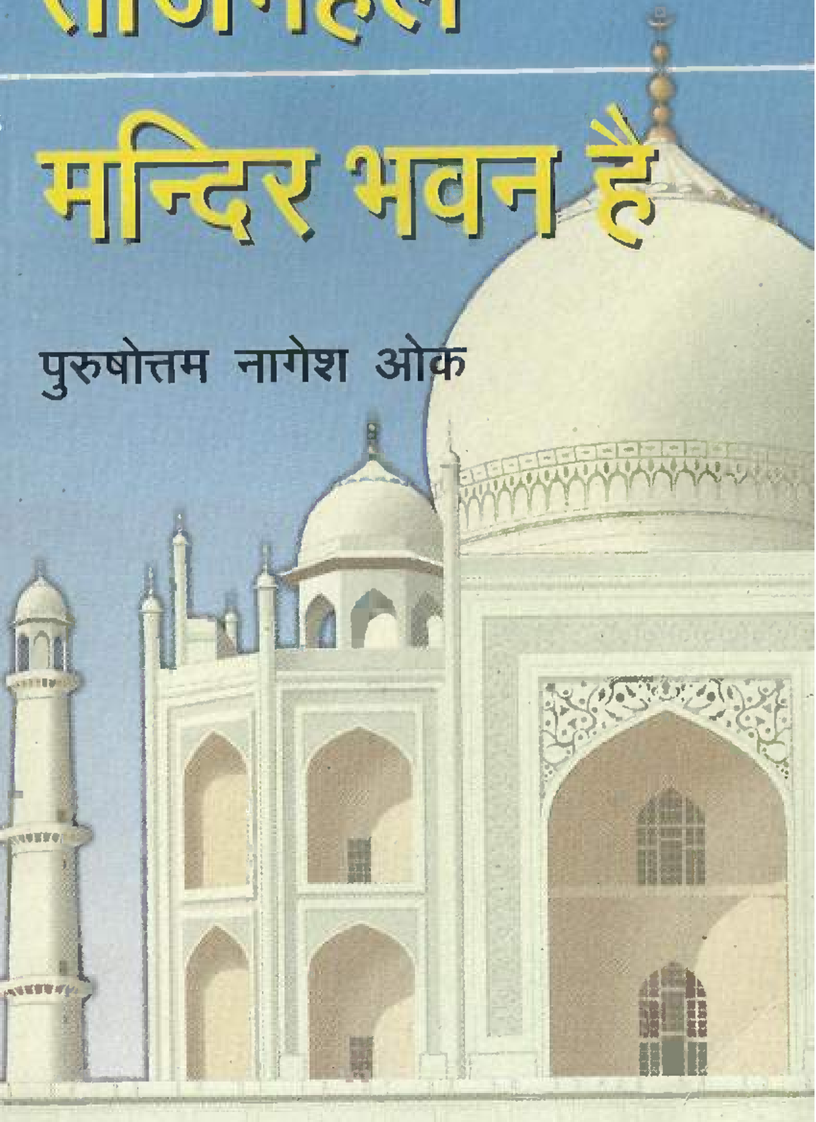
ताजमहल मन्दिर भवन है

पुरुषोत्तम नागेश ओक



ताजमहल मन्दिर भवन है

एक खोजपूर्ण रचना

पुरुषोत्तम नागेश ओक

श्री ओक की खोजपूर्ण रचना, जिसने इतिहास–जगत् में तहलका मचा दिया था। हिन्दू–मुस्लिम एकता की मिथ्या भावना तथा सेक्युलरिज्म की मृगतृष्णा में फँसे हमारे इतिहासकार तथा अन्धे राजनीतिज्ञ सब कुछ समझते हुए भी आँखें मूँदे हुए हैं अथवा योरुपियन इतिहासकारों के उच्छिष्ट भोगी बनने में गौरव अनुभव करते हैं, यह वही जानें।

लेखक की अन्य खोजपूर्ण रचनाएँ—

- हास्यास्पद अंगरेजी भाषा
- क्रिश्चियनिटी कृष्णनीति है
- वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-१
- वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-२
- वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-३
- वैदिक विश्वराष्ट्र का इतिहास-४
- भारत में मुस्लिम सुल्तान-१
- भारत में मुस्लिम सुल्तान-२
- कौन कहता है अकबर महान् था?
- दिल्ली का लालकिला लालकोट है
- आगरा का लालकिला हिन्दू भवन है
- फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है
- लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
- ताजमहल मन्दिर भवन है
- भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
- विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
- ताजमहल तेजोमहालय शिव मन्दिर है
- फेल ज्योतिष (ज्योतिष विज्ञान पर अनूठी पुस्तक)
- Some Blunders of Indian Historical Research

ताजमहल मन्दिर भवन है

एक खोजपूर्ण रचना

पुरुषोत्तम नागेश ओक

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली-११०००५

मूल्य : 75.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी. डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
फोन : 23553624, 23551344; फैक्स : 23553624
email : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2011

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली

अनुक्रम

प्राक्कथन	७
पूर्ववृत्त के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता	१९
शाहजहाँ के बादशाहनामे की स्वीकारोक्ति	२२
टैवर्नियर का साक्ष्य	३१
औरंगजेब का पत्र तथा सद्य:सम्पन्न उत्खनन	४४
पीटर मुण्डी का साक्ष्य	५२
विश्व ज्ञान-कोश के उदाहरण	६०
शाहजहाँ-सम्बन्धी गल्पों का ताजा उदाहरण	६८
एक अन्य भ्रान्त विवरण	७६
बादशाहनामे का विवेचन	८२
ताजमहल की निर्माण-अवधि	८७
ताजमहल की लागत	९३
ताजमहल के आकार-प्रकार का निर्माता कौन?	१००
ताजमहल का निर्माण हिन्दू वास्तुशिल्प के अनुसार	१०८
शाहजहाँ भावुकता-शून्य थे	११५
शाहजहाँ का शासनकाल न स्वर्णिम न शान्तिमय	१२४
बाबर ताजमहल में रहा था	१३४
मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहास का असत्य	१४०
ताज की रानी	१४७
प्राचीन हिन्दू ताजप्रासाद यथावत् विद्यमान	१५४
ताजमहल के आयाम प्रासादिक हैं	१५८

उत्कीर्ण शिला-लेख	१७०
ताजमहल सम्भावित मन्दिर प्रासाद	१७४
प्रख्यात मयूर-सिंहासन हिन्दू कलाकृति	१८५
दन्तकथा की असंगतियाँ	१९०
साक्ष्यों का संतुलन-पत्र	२१६
आनुसंधानिक प्रक्रिया	२२४
कुछ स्पष्टीकरण	२३०

प्राक्कथन

यह पुस्तक और इसकी पूर्ववर्ती पुस्तक 'ताजमहल राजपूत प्रासाद था', जो कि अनुसन्धान-कार्य हैं, के अतिरिक्त अन्य सभी पुस्तकें जो ताजमहल के सम्बन्ध में विगत ३०० वर्ष की अवधि में लिखी गई हैं सब कपोल-कल्पना पर आधारित हैं। बड़े गहन शोध के उपरान्त हमें यह जानकर आश्चर्य होता है कि ताजमहल के विषय में रचे गए इन्द्रजाल में सारे संसार में एक भी ऐसी पुस्तक नहीं मिली जो पुष्ट-प्रमाणयुक्त हो और जिसमें ताजमहल की मौलिकता का विस्तृत विवरण हो तथा तत्कालीन प्रमाणों को उद्धृत किया गया हो। क्योंकि किसी एक लेखक की धारणा उतनी ही है जितनी कि दूसरे की। इसलिए मात्र किंवदन्तियाँ ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए महत्त्वहीन हैं।

ताजमहल विश्व-प्रसिद्ध होने पर भी उसके विषय में तदनुरूप सन्देहरहित और अधिकृत विवरण का अभाव वास्तव में आश्चर्यजनक है। संसार-भर के विश्वविद्यालय और शोध-संस्थान ताजमहल-सदृश मोहक और आकर्षक विषय की क्यों और कैसे उपेक्षा कर सके हैं ? क्यों ताजमहल के सम्बन्ध में उसकी मौलिकता, निर्माणकाल, निर्माण में व्यय, धन का स्रोत, निर्माता और शिल्पी, मुमताज के उसमें दफनाए जाने की तिथि, और भी इसी प्रकार के अन्य अनेक विवरण सारे वैसे ही अस्पष्ट, भ्रामक, विवादास्पद और वास्तविकता-रहित क्यों हैं ?

कदाचित् आज तक कोई भी अनुसन्धानकर्ता ताजमहल के वृत्तान्त को तदनुरूप आधिकारिक रूप से प्रस्तुत करने में सफल नहीं हो सका। जिस किसी ने भी इस विषय पर शोध करने का प्रयास किया, वह अव्यवस्थित और परस्पर विरोधी सामग्रियों के विस्मय में फँसकर यह समझने लगा कि वह भी उसी पुरानी अलिफ-लैला की कहानी की पुनरावृत्ति करने लगा है। उसको भी अपने पाठकों के सम्मुख

वही असंगत, अनियमित और सभी बिन्दुओं पर परस्पर विरोधी विवरण प्रस्तुत करना पड़ा। ताजमहल के सम्बन्ध में शाहजहाँ की कहानी के सभी पहलू सन्देहास्पद होने से ताजमहल की मौलिकता के विषय में अधिकृत विवरण प्रस्तुत करने का प्रत्येक प्रयास असफल सिद्ध होना स्वाभाविक था। ताजमहल के मूल के विषय में निर्णायक शब्द कहने में न कोई कभी सफल हुआ और न किसी ने इसकी आशा ही की। सभी पूर्ववर्ती प्रयासों का असफल होना निश्चित था, क्योंकि वे सब भ्रान्ति पर आधारित थे। भ्रान्ति के आधार पर वे निर्भ्रान्त निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सके।

परवर्ती पृष्ठों में हम यह सिद्ध करने का प्रयास करेंगे कि ताजमहल, जिसका अर्थ है—'राजप्रासादों का शिरमौर'—प्राचीन हिन्दू भवन है, इस्लामी मकबरा नहीं। हम यह भी बताएँगे कि किस प्रकार इतस्तत: बिखरी सूचनाएँ—वास्तविक अथवा काल्पनिक—जोकि शाहजहाँ की कहानी से सम्बन्धित हैं, उचित स्थान पर आकर हमारी खोज की पुष्टि करती हैं। जिस प्रकार गणित के प्रश्न की सत्यता को जाँचने के अनेक प्रकार हैं उसी प्रकार ऐतिहासिक अनुसन्धान की कसौटी भी सभी असंगत बातों को त्यागकर संगत और तदनुरूप बातों को प्रस्तुत करने की सुविधा प्रदान करती है।

इस पुस्तक में हमने शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार द्वारा रचित 'बादशाहनामा' से एक उद्धरण भी प्रकाशित किया है, जिसमें यह स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि ताजमहल एक हथियाया गया हिन्दू प्रासाद है। हमने फ्रेंच-व्यापारी टैवर्नियर को, जो शाहजहाँ के काल में भारत आया था, यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि मचान बनाने का व्यय ही समूचे मकबरे के व्यय से अधिक था। इससे यह सिद्ध होता है कि शाहजहाँ ने हिन्दू प्रासाद की दीवारों पर कुरान की आयतों की खुदाई करवाई, यही कारण है कि मचानों पर हुआ व्यय सारे ताजमहल पर हुए व्यय से कहीं अधिक है। हमने 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' का वह उद्धरण दिया है जिसमें कहा गया है कि ताजमहल परिसर में अश्वशाला, अतिथिगृह और प्रहरी-कक्ष सम्मिलित हैं। हमने नूरुल हसन की पुस्तक को भी उद्धृत किया है, जिसमें बादशाहनामे की ही भाँति स्वीकार किया गया है कि मुमताज को दफनाने के लिए एक हिन्दू प्रासाद हथियाया गया। हमने शाहजहाँ के पंचम पूर्वज बाबर का भी उल्लेख, यह सिद्ध करने के लिए किया है कि मुमताज की मृत्यु से १०० वर्ष पूर्व

उस भवन में बाबर रहता था, जिसे हम ताजमहल कहते हैं और जिसे उसके मकबरे के लिए बनवाया गया, कहा जाता है। हमने विंसेंट स्मिथ को भी यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि बाबर की मृत्यु ताजमहल में ही हुई थी। इन प्रमाणों के अतिरिक्त हमने शाहजहाँ की प्रचलित कथा का विशद मन्थन किया है और अन्य बड़े-बड़े प्रमाण की निष्कर्षात्मक रूप से यह सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए हैं कि ताजमहल प्राचीन हिन्दू भवन है।

इस पुस्तक में पर्याप्त मात्रा में जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं वे सदा के लिए उन सबको मौन कर देंगे जिन्हें हमारी खोज पर सन्देह था। उन्हें यह विश्वास हो जाएगा कि कभी-कभी एक व्यक्ति का शोध-कार्य सारे संसार की धारणा को गलत सिद्ध कर सकता है। मानवता के इतिहास में ऐसा अनेक बार हुआ है। उदाहरणार्थ गैलिलियो और आइन्स्टाइन ने तत्कालीन सिद्धान्तवादियों को झकझोर कर उनकी जंग लगी सिद्धान्त-सारणियों से उन्हें बाहर फेंक दिया था।

यह सौभाग्य की बात थी कि ताजमहल-सम्बन्धी हमारे नवीन शोध को बादशाहनामा, सिद्दीकी की पुस्तक, टैवर्नियर का यात्रा-वृत्तान्त और बाबर के संस्मरण आदि ग्रंथों में समर्थन उपलब्ध हुआ है। किन्तु इस अवसर पर हम भावी पीढ़ी तथा अपने समकालीन उन सबको, जो अनुसन्धान में रुचि रखते हैं, सावधान करना चाहते हैं और कहना चाहते हैं कि हमारी प्रथम पुस्तक 'ताजमहल एक राजपूती भवन था' में दिए गए प्रमाण उन सबको विश्वास दिखाने के लिए पर्याप्त थे, जो न्यायिक तर्कप्रणाली से सुपरिचित हैं कि जिस मुमताज का यह मकबरा समझा जाता है वह ताजमहल उसकी मृत्यु से बहुत पहले ही विद्यमान था।

तदपि यदि मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी, बादशाहनामा का लेखक तथा अन्य लेखकों द्वारा वे प्रमाण जो हमने अपनी पहली पुस्तक में प्रस्तुत किए हैं, गलत सिद्ध होते तो वह भी हमारे लिए पर्याप्त होता कि हम उनकी सच्चाई को आँकते और उनके उद्देश्य को प्राप्त करने में प्रवृत्त होते। जनसाधारण और उन अनुसंधानकर्ताओं के लिए जो असत्य और विकृत विवरणों के दलदल में फँसे हैं, यह एक आत्मसात् करनेवाला पाठ है।

हमने इस पुस्तक में यह प्रमाणित करने का यत्न किया है कि ताजमहल के कण-कण का निर्माण प्राचीन हिन्दू वास्तुकला के अनुरूप, हिन्दुओं के लिए, हिन्दुओं द्वारा किया गया। हमने अपनी प्रस्तुत पुस्तक और पहली पुस्तक में इसे

दृढ़ता से सिद्ध कर दिया है। यह विषय अब भावी अनुसंधान को प्रोत्साहित करे, जब तक कि हम इसके हिन्दू निर्माता की खोज न कर लें, मानसिंह और बाबर के अधिकार से पूर्व ताजमहल का क्या इतिहास है। बीकानेर स्थित राजस्थान अभिलेखागार और महाराजा जयपुर के अधिकार में सुरक्षित जयपुर राजवंश का वृत्तान्त कदाचित् इसका कोई स्रोत बता सके। हमने स्वयं प्रस्तुत पुस्तक में यह संकेत दिया है कि ताजमहल का मूल नाम 'तेज महा आलय' है जिसका निर्माण कार्य सन् ११५५-५६ में पूर्ण हुआ।

जब हमने अपनी प्रथम उपलब्धियों को प्रकाशित कराया था तो हमें बहुत बड़े व्यंग्य और तिरस्कार का सामना करना पड़ा था। किन्तु हम अपने निश्चय पर अटल हैं। सभी ओर से वे व्यंग्य और तिरस्कार आए। हमें विशेष दुःख उन बौछारों से हुआ जो प्रमुख इतिहासज्ञों की ओर से की गई। अधिकांश ने तो इस विषय पर टीका-टिप्पणी करने की अपेक्षा प्रत्यक्षः अथवा कानाफूसी द्वारा अपनी ओर से तीव्र घृणा का प्रदर्शन किया। जनसाधारण हमें अविश्वास से देखता रहा। उसने इतिहासकारों की ओर दृष्टिपात किया मानो वे हमारी प्रशंसा और भर्त्सना के लिए उपयुक्त अधिकारी हों।

यह दुःख का विषय है कि वे विद्वान् जो ताजमहल सम्बन्धी शाहजहाँई पुराण-कथा से प्रतिबद्ध हैं, जिन्होंने या तो स्वयं इस विषय पर कुछ लिखा है, या स्नातकोत्तर छात्रों का उसी घिसी-पिटी लकीर पर मार्गदर्शन किया है, या शैक्षिक एवं आधिकारिक प्रतिष्ठा के कारण, उन्होंने अपनी संकुचित ढर्रे पर स्थिर रहने की प्रवृत्ति प्रदर्शित की। हम पर विघ्नकारी और सुधारविरोधी होने के आक्षेपों की बौछार हुई। अनेक ने सक्रोध कहा कि हमने अपनी मान्यता को सिद्ध नहीं किया। किन्तु वह बड़ा ही अविद्वत्तापूर्ण रुख था। यदि विद्वत्तापूर्ण खोज पर उनकी रुचि होती तो वे इस विषय पर पुनर्विचार करते। यदि उनकी मान्यता ठीक थी तो पुनर्विचार से उनको ही सुविधा होती। क्योंकि हमने जिन छिद्रों की ओर संकेत किया था उन्हें अपने पुराने विचारों द्वारा भरने में उनको सहायता मिल जाती। और वे यदि गलत सिद्ध होते तो उन्हें अपने पूर्व सिद्धान्तों को त्यागना असुविधाजनक न होता। इस प्रकार वे इस सूत्र से मार्गदर्शन प्राप्त करने में असमर्थ रहे कि "यदि आप ठीक मार्ग पर हैं तो आप अपना मस्तिष्क स्थिर रख सकते हैं और यदि गलत मार्ग पर हैं तो उसे विचलित होने से नहीं रोक सकते।"

मौलिक अनुसंधाताओं के लिए एक और सूत्र भी है कि किसी विद्यमान आधार की ओर संकेत किए गए किसी छिद्र को तुरन्त बन्द करने के लिए खोज की जाय, अपेक्षया इसके कि उस पर क्रोध अथवा घृणा व्यक्त करने के, जो पारम्परिक मान्यताओं पर सन्देह व्यक्त करता है। जीर्ण-शीर्ण मान्यताओं पर जो सन्देह व्यक्त करता है उसकी गलतियाँ ढूँढने का यत्न करना न तो नैतिकता कहलाएगी और न विद्वत्ता ही। जिन प्रक्रियाओं द्वारा खोज का निष्कर्ष निकला है उनकी गलतियाँ निकालना और भी बुरा है। क्योंकि हम सब जानते हैं कि जो प्रक्रियाएँ अपनाई गई हैं वे रूढ़ियों से परे, यहाँ तक कि अलौकिक भी हो सकती हैं। वास्तव में इस सम्बन्ध में चिंता का विषय तो उसका प्रतिफलन अथवा परिणाम होना चाहिए। बाद में भले ही कहें कि उन्हें उस प्रक्रिया के बारे में बताया जाय किन्तु प्रक्रिया की निन्दा करते हुए निष्कर्ष का परीक्षण न करना मूर्खता है।

यह हमारे सौभाग्य की बात है कि जब हमने अपनी प्रथम खोज का परिणाम प्रकाशित किया था तब से अब तक बहुत समय का अन्तराल बीत गया है और आज हमारा अन्वेषण कम-से-कम कुछ लोगों द्वारा सनक-भरा, कपोल-कल्पित तथा भ्रमपूर्ण अथवा केवल अतिशयोक्ति नहीं माना जाता। 'ताजमहल हिन्दू प्रासाद है' इतना कह देने मात्र से ही बात समाप्त नहीं हो जाती। भारतीय तथा विश्व इतिहास के लिए वह अन्वेषण बड़ा प्रभाव छोड़नेवाला है।

आज तक ताजमहल को बड़े गलत ढंग से इण्डो-अरब शिल्प का रहस्यमय पुष्प माना जाता रहा है। अब जब हमने इसे प्राचीन भारतीय भवन सिद्ध कर दिया है तो पाठक हमारी अन्य पुस्तक 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' में वर्णित तथ्यों को कुछ अधिक आदर और सम्मान देते हुए सभी भारतीय मध्ययुगीन मस्जिदें और मकबरे हथियाकर, दुरुपयोग किए गए हिन्दू प्रासाद और मन्दिर ही स्वीकार करने लगे हैं। इस प्रकार ग्वालियर में मुहम्मद गौस का मकबरा, फतेहपुर सीकरी में सलीम चिश्ती की मजार, दिल्ली में निजामुद्दीन की कब्र, अजमेर में मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा सभी प्राचीन हिन्दू भवन हैं जिन्हें मुस्लिम आक्रमणकारियों ने हथियाकर दुरुपयोग किया।

ताजमहल के सम्बन्ध में हमारा दूसरा निष्कर्ष यह है कि इण्डो-अरब शिल्प का सिद्धान्त मनघड़न्त कल्पना की उड़ानमात्र है। इतिहास की पुस्तकें तथा नागरिक अभियांत्रिकी और वास्तुकला की पुस्तकों में से इसे तुरन्त निकाल देना चाहिए।

किन्तु जो वास्तविक परिवर्तन करना आवश्यक है वह छोटा-सा है कि जिसे इण्डो-अरब शिल्प कहा गया है उसे अब प्राचीन भारतीय शिल्प समझा जाय।

तीसरा निष्कर्ष यह है कि गुम्बद हिन्दू शिल्प का विधान है।

चौथा निष्कर्ष यह है कि भारत और पशिचमी एशिया में जिन भवनों में ताजमहल जैसी समानता है वे हिन्दू शिल्पशास्त्र की उत्पत्ति हैं। जिस प्रकार हम अपने समय में समस्त संसार में पाश्चात्य वास्तु-शिल्प की अधिकता पाते हैं उसी प्रकार प्राचीन काल में वह हिन्दू वास्तु-शिल्प ही था जो समस्त संसार में प्रचलित था, भले ही वह किसी भी स्थान पर किसी भी उद्देश्य से निर्माण किया जा रहा हो।

विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों तथा पुस्तक समीक्षकों से विचार-विमर्श के अवसर पर हमें अपने अन्वेषण के सम्बन्ध में चित्रित आपत्तियाँ सुनने को मिलीं। हमारी पहली पुस्तकें पढ़कर उन्होंने हमारी प्रक्रिया को विवादास्पद, वियोजक और कानूनी जैसी बताकर उस पर आपत्ति उठाई।

इससे एक रोचक बिन्दु उठ खड़ा हुआ। क्या उनका अभिप्राय यह है कि वियोजक तथा वकीलों जैसे तर्कों का ऐतिहासिक अनुसन्धान में कोई स्थान न होने या ऐतिहासिक अनुसन्धान के उचित निष्कर्ष पर पहुँचने में उनके हानिकर होने से उनका सर्वथा परित्याग करना चाहिए? उनकी आपत्ति यह आग्रह करती है कि वियोजक तर्क अथवा निर्णायक प्रक्रिया के आधार पर निकाले गए निष्कर्ष सर्वथा गलत हैं।

तब हम पूछना चाहेंगे कि क्या मनुष्य प्राणीशास्त्र के प्रत्येक पक्ष पर उसका जो वर्तमान ज्ञान है उसे उसने अपनी तर्क-बुद्धि से प्राप्त नहीं किया? अन्यथा उसने किस प्रकार प्रगति की? भूगोल का ही उदाहरण लीजिए। अन्तरिक्ष में जाकर पृथ्वी का चित्र उतारने के लिए भेजे गए अन्तरिक्षयान से सहस्रों वर्ष पूर्व मनुष्य ने क्या मात्र तर्कबुद्धि से यह सही निष्कर्ष नहीं निकाला था कि पृथ्वी गोलाकार है? इससे उन आपत्तियों के खोखलेपन का पर्दाफाश हो जाता है। तर्क को—विज्ञान का विज्ञान—ठीक ही कहा है। क्योंकि इसका आधार युक्ति है, जो सब प्रकार के ज्ञान का आधार है, इससे इतिहास मुक्त नहीं हो सकता।

ऐसी आपत्तिकर्ताओं को हम स्मरण दिलाना चाहते हैं कि कौलिंगवुड, वाल्श, रेनियर, लैंग्ले, सीनबौस, बर्कले तथा लौर्ड सेंके सदृश ऐतिहासिक प्रक्रिया के प्रमुख व्यक्तियों ने संक्षेप में किन्तु बारम्बार कहा है कि जासूसी प्रकार का अन्वेषण,

वकील जैसा तर्क और वियोजक युक्ति, ऐतिहासिक प्रक्रिया के आत्मा और हृदय हैं और एक सच्चे इतिहासज्ञ को चिरस्थायी तथा पूर्णतया स्थापित विश्वास को भी सन्देह की दृष्टि से देखना चाहिए। इस बिन्दु को स्थिर करने के लिए हमने इस पुस्तक में एक अध्याय प्रक्रिया-सम्बन्धी रख दिया है। जो परम्परा की लीक से स्वयं को विमुक्त करने में असमर्थ हैं, वे उक्त अध्याय को पढ़ने पर पाएँगे कि ताजमहल की मौलिकता के सम्बन्ध में उनके निष्कर्ष सत्य से कितने परे हैं, यह केवल इसलिए कि उन्होंने अन्वेषण सम्बन्धी उन मार्गदर्शक बिन्दुओं की या तो उपेक्षा की या अवहेलना की, जो उन विद्वानों द्वारा निर्धारित किए गए थे जिनके नाम पर वे कसमें उठाया करते थे।

संयोगवशात् इससे यह निष्कर्ष निकल गया कि भारतीय तथा विश्व के इतिहास बहुत-सी गलत धारणाओं से लदे हैं, क्योंकि इतिहास के अध्यापक और अनुसंधाता सदा गलत प्रक्रिया को अपनाए रहे। इसलिए हमारी प्रक्रिया में किसी प्रकार का दोष नहीं है। यह तो दूसरों का ही दोष है। यह स्वाभाविक था कि पुराना जीर्ण-शीर्ण दृष्टिकोण भारत तथा विश्व इतिहास में उथल-पुथल मचा दे। परिणामस्वरूप सैकड़ों वर्षों के बाद आज हम निराशापूर्वक पाते हैं कि वह सब जिसे हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह पढ़ाते आए हैं कि भारत में मुस्लिम वास्तुकला भी थी और उनका उदार शासन था, यह सब भूलना पड़ेगा।

ताजमहल सम्बन्धी शाहजहाँ की पुराणकथा के विभिन्न कथनों के पुनरीक्षण की आवश्यकता इसलिए है कि संसार को इस सुरम्य भवन के विषय में सत्यता का ज्ञान होना ही चाहिए, विशेषतया वह तथ्य कि ताजमहल का जन्म शाहजहाँ की रखेल मुमताज की मृत्यु पर हुआ था। शाहजहाँ और मुमताज के प्रेत विगत ३०० वर्षों से ताजमहल के कथानक द्वारा जनसाधारण को परेशान किए हुए हैं। बहुत समय तक पाठकों के मस्तिष्क को कुण्ठित किया गया है।

ताजमहल के निर्माण सम्बन्धी तथ्य-उद्घाटन का एक यह भी कारण हमारे मस्तिष्क में है कि जिस अप्रायोगिक और अस्थिर प्रक्रिया के कारण भारतीय इतिहास तथा भ्रमित, सन्देहशाक्तिशून्य समकालीन जन तथा भावी पीढ़ी पर जो दूरगामी कुप्रभाव थोपे गए हैं, उनका निराकरण करें। ताजमहल की मौलिकता के सम्बन्ध में पुनर्विचार अन्वेषण-प्रक्रिया को प्रायोगिक पाठ पढ़ाएगा। अब तक किए गए गलत काम, इतिहास-अन्वेषकों तथा अध्यापकों द्वारा जिन सिद्धान्तों एवं

सुविधाओं को ध्यान में रखा है उनका पर्दाफाश भी हो जाएगा।

इस पुस्तक का यह भी उद्देश्य है कि प्रत्येक पाठक यह भली भाँति समझ ले कि यह केवल मकबरा नहीं जो उनको बरबस आकर्षित करता है। दर्शक सारे परिसर को देखे, लम्बे मेहराबोंवाले गलियारों में जाए, ताजमहल की सभी मंजिलों और इसके संगमरमर तथा लाल पत्थर की मीनारों पर जाए, सूक्ष्मता से बन्द दरवाजों का निरीक्षण करे, भूमिगत दो मकबरे और पहली मंजिल पर उनके ऊपर के गुम्बद, इस अष्टभुजी हिन्दू प्रासाद में यदि कुछ दिखाई देते हैं तो केवल रुकावट ही दिखाई देते हैं। इन्हीं में से एक कक्ष में प्राचीन मयूराकार सिंहासन रखा रहता था। प्रासाद के साथ ही उसे भी शाहजहाँ ने हथिया लिया था।

वे विचारशील पाठक जिन्होंने यद्यपि अज्ञानता से किन्तु अखण्डनीयता से ताजमहल को अपनी शिक्षा अथवा सामाजिकता के आधार पर मुस्लिम-स्मारक स्वीकार किया है, इस पुस्तक को पढ़ने पर अब कदाचित् स्वयं को विचलित, अस्थिर तथा आहत अनुभव करेंगे। कुछ अन्य पाठक ताजमहल के प्राचीन हिन्दू मूल के रूप में अन्वेषण को सत्यता मान उसका स्वागत करेंगे। दोनों ही प्रकार के पाठकों से हम कहना चाहते हैं कि हमारी दृष्टि में सत्य जल की भाँति स्वादरहित, वर्णरहित, दिव्य, विशुद्ध और जीवनप्रदायक होता है। वह न मीठा होता है और न कड़वा। हमारे लिए सत्य केवल अन्वेषण का आधार है जैसाकि वास्तव में इसे सभी रचनात्मक कार्यों में होना चाहिए। हमें उनकी तनिक भी चिन्ता नहीं है कि ताजमहल के हिन्दू-पूर्व रूप के अन्वेषण से जिन्हें उत्तेजना अथवा निराशा हुई है।

इतिहास के संसार में इस प्रकार का श्वासावरोध करनेवाला, यह सिद्ध करने वाला कि सारा संसार गलती पर है, कदाचित् ही सम्भव है। एक ही बात है, हम अपने लिए कोई वैयक्तिक श्रेय अथवा विजय का अधिकार नहीं माँगते, क्योंकि ऐसी खोज परमात्मा के पथप्रदर्शन, सुअवसर तथा प्रेरणा के बिना सम्भव नहीं।

किन्तु हम उनसे जो हमारे प्रयत्नों को महत्त्वहीन समझते हैं और हमारी खिल्ली उड़ाते हैं कि ताजमहल का—इसके सुन्दर परिसर, शोभनीय दीवारों तथा सुरम्यता का कोई महत्त्व नहीं है, कुछ शब्द कहना चाहते हैं। ताजमहल को मकबरा या प्रासाद समझने से द्विविधा होती है। प्रासाद उसको कहते हैं जो किसी समृद्ध, धनी और शक्तिशाली का निवास हो, इसलिए वह भव्य और विशाल होता है। दूसरी ओर, मकबरा वह अद्भुत और विलक्षण निवास है उनका जिनकी आत्मा कूच कर

चुकी है। जो दर्शक अथवा अध्येता इस धारणा के अन्तर्गत यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि ताजमहल मकबरा है, इसके भीतर की कब्रों की प्रशंसा को मुख्य उद्देश्य मानकर ताजमहल परिसर की वास्तविक सुन्दरता से वंचित रह जाते हैं। दूसरी ओर यदि दर्शक और इतिहास के अध्येता ताजमहल का उसके प्रासाद के रूप में अध्ययन करें तो उन्हें इसमें आनन्ददायक सफलता मिलेगी। इस स्थिति में उनकी दफ्नगाह की ओर जाने की इच्छा ही होगी और वे उस विशाल परिसर में उसकी परिधि का भ्रमण, उसके गलियारों का आनन्द, अन्धकारयुक्त भूगर्भ में ठोकरें खाना और उसके मीनारों तथा ऊपरी मंजिलों पर चढ़ने में ही आनन्द अनुभव करते हुए अपना दिन व्यतीत कर देंगे।

अब कोई नए दृष्टिकोण से खोज करना आरम्भ करता है तो उसको अनेक कठिनाइयों में एक सबसे बड़ी कठिनाई लोगों की चली-चलाई मान्यता है। उदाहरणार्थ इतिहास के प्रकाण्ड अध्यापक कभी-कभी, पूर्ण ईमानदारी से, इस आधार पर ऐतिहासिक खण्डनों की ओर ध्यान देना अस्वीकार कर देते हैं कि उसके मूल ऐतिहासिक स्रोत उद्धृत नहीं किये हैं। उनके इस प्रकार के रुख में दो गलतियाँ हैं। एक तो उनका यह घमण्ड करना कि वे निर्णायक हैं, जबकि वे इसके योग्य नहीं हैं। उनकी शैक्षिक तथा आधिकारिक स्थिति कुछ भी हो, किन्तु उनको यह समझना चाहिए कि वे सत्य को खोज करने वाले दल के साधारण व्यक्ति हैं तथा खोज में अग्रणी के सहायक हैं। इस दृष्टि से विचार किया जाय तो उनका स्वयं को निर्णायक मानकर गलती निकालने की तत्परता दिखाना नितान्त अनुपयुक्त है, दूसरी कमी यह है कि उनका एक विशिष्ट प्रकार का तथा निर्णय के उद्घोषक का-सा रुख और जिस प्रकार से वे आपत्ति उठाते हैं कि जो स्रोत उद्धृत किया गया है वह मौलिक नहीं गौण है, बड़ा ही विचित्र, उदासीन और अनुत्तरदायित्वपूर्ण है। वे अनुभव करते हैं कि मेरी खोज की उपेक्षा करना उनके लिए न्यायसंगत है। इससे वे अपने शैक्षिक विचारों की वमनेच्छा से मुक्ति पा जाते हैं। ऐसे सभी को हम कहना चाहते हैं कि स्रोत के मौलिक अथवा गौण होने सम्बन्धी आपत्ति तभी संगत है जबकि जो तथ्य उद्घाटित हुए हैं वे स्वीकार न किये गए हों। यहाँ तक कि न्यायालय भी युगों पुराने तथ्यों को ध्यान में रखता है। उसी प्रकार इतिहास के विद्वान् तथा अन्य अध्येताओं को भी उन तथ्यों को ध्यान में रखना ही होता है जोकि निर्विवाद हैं।

उदाहरणार्थ परवर्ती पृष्ठों पर जब हम विंसेंट स्मिथ और इलियट एण्ड डौसन

को उद्धृत करेंगे तो केवल इसलिए कि पाठकों की सुविधा हेतु उनके सम्मुख तुरंत परिशोधित, परिपक्व, अनूदित तथा संक्षिप्त साक्ष्य प्रस्तुत कर सकें। जब तक उनके द्वारा उद्धृत तथ्यों पर सन्देह नहीं किया जाता तब तक हम पर यह आरोप कि 'मूल स्रोत उद्धृत नहीं किया गया' यदि सर्वथा शरारतपूर्ण नहीं तो अन्यायपूर्ण तो है ही। ऐसे कितने लोग हैं जो प्रयत्नपूर्वक एकत्रित किये गए मूल स्रोत का मूल्यांकन कर सकते हैं ? और यदि उन मूल स्रोतों को इतने लोग बरतें तो फिर वे भावी पीढ़ी के लिए कितने दिनों तक सुरक्षित रह सकेंगे ? और यदि पग-पग पर अनुसन्धाता को कुतर्क के जाल में फँसाकर कि प्रत्येक दृष्टिकोण पर सभी भाषाओं में मौलिक प्रमाणों को प्रस्तुत नहीं किया गया है, तब क्या अनुसन्धान किया जा सकेगा ? इस प्रकार तो एक शब्द भी लिखना असम्भव हो जाएगा। क्या आपत्तिकर्ताओं ने स्वयं जो ग्रन्थ लिखे हैं, उस समय ऐसा प्रयत्न किया था ?

विद्वान् पाठक जब इस प्रकार की कोई आपत्ति उठाने की सोचता है तो उससे पूर्व हम उससे निवेदन करना चाहेंगे कि वह यह विचार कर ले कि उद्धृत तथ्य तथा शब्दों पर उसका कोई विवाद तो नहीं है। यदि वे तथ्य और शब्द विवादास्पद नहीं हैं तो फिर उन्हें किसी प्रकार के प्राथमिक अथवा माध्यमिक स्रोतरूपी आधार-स्तम्भ की आवश्यकता नहीं है।

ताजमहल के हिन्दू प्रासाद होने की खोज भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग के दृष्टिकोण को बदलने में सहायक होगी। अब तक तो वे यह धारणा बनाए हुए थे कि यदि कोई दो मकबरे और गुम्बद जनसाधारण के निरीक्षण के लिए खोल दिये जाएँ तो यही उनकी पर्याप्त उदारता होगी। किन्तु जब एक बार यह स्वीकार कर लिया गया कि ताजमहल प्रासाद था तब फिर वह साधारण दया पर्याप्त नहीं होगी। आवृत भूगर्भ, बहुत से मीनार, संगमरमर की ऊपरी मंजिल, दुर्ग की ओर जानेवाली सुरंग, सबकी अच्छी तरह सफाई करके उनको जनसाधारण के निरीक्षण के लिए खोलना होगा।

परवर्ती पृष्ठों का आनन्द लेते हुए पाठक इस दूरगामी प्रभाव से सावधान होगा कि हमारी खोज विश्व तथा भारतीय, दोनों इतिहासों पर आधारित है।

इस पुस्तक का नितान्त विस्फोटक प्रभाव यह है कि विगत ३०० वर्षों से सारे ताजमहल के सम्बन्ध में गद्य अथवा पद्य में जो कुछ भी रोमांचक और छद्म-ऐतिहासिक लिखा गया है उसे यह पुस्तक एक ही झटके में तहस-नहस कर देती है।

शिल्पशास्त्री और इतिहासविद् परवर्ती पृष्ठों को पढ़ने पर पाएँगे कि उन्हें अभी बहुत कुछ सीखना है और जो कुछ उन्होंने अब तक सीखा है उसमें से बहुत कुछ उनको भुलाना होगा। इतिहास-लेखक तथा शिल्पशास्त्री को प्रारंभिक आघात, भय और अविश्वास को भुलाकर अब अपने भारत-अरब शिल्प के रहस्यमय सिद्धान्तरूपी पारम्परिक अन्धविश्वास को उखाड़ फेंकने के लिए तैयार होना चाहिए। और उनको उसकी अपेक्षा मध्ययुगीन ऐतिहासिक स्थलों के विशुद्ध प्राचीन भारतीय शिल्प के दृष्टिकोण को सीखना चाहिए। इतिहास और शिल्पशास्त्र की पुस्तकों में उपयुक्त संशोधन, आज या कल, करना ही होगा।

इतिहासविद् शिक्षाशास्त्री तथा सामान्य दर्शक मध्ययुगीन शिल्प पर उस तथाकथित मुस्लिम योगदान के सम्बन्ध में जो उनके मस्तिष्क में सोद्देश्य एवं बड़ी सावधानी से मिथ्या धारणा बैठाई गई है, उसे दूर करने के लिए अब कुछ तत्पर हो गए होंगे। हिन्दू, ईसाई तथा जियोनिस्ट मकबरे के बाहर और भीतर अरबी के अक्षरों को अंकित कर उसे मध्ययुगीन शिल्प में मुसलमानों के योगदान का ढिंढोरा पीटकर उन्हें गलत समझाने का प्रयास भारत तथा समस्त संसार में किया गया है। विश्व-विख्यात ताजमहल, दिल्ली तथा आगरे का लाल किला, आगरा की तथाकथित जामा मस्जिद, दिल्ली की तथाकथित फतेहपुरी मस्जिद तथा अहमदाबाद, जौनपुर, इलाहाबाद, माण्डवगढ़, बिहार, बीजापुर, फतेहपुर सीकरी और औरंगाबाद आदि नगरों के असंख्य स्मारक समस्त संसार को धोखा देने के ऐसे ही उदाहरण हैं। आशा की जाती है कि अनुसंधाता और लेखक आगे आकर मध्ययुगीन प्रत्येक नगर तथा स्मारक पर पृथक्-पृथक् पुस्तकें लिखकर मुस्लिम इतिहास के सम्बन्ध में सर एच. एम. इलियट के शब्दों में 'निर्लज्ज और रोचक धोखे' का पर्दाफाश करेंगे। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक को उन्हें सभी आवश्यक निर्देश और स्रोत देने में प्रसन्नता होगी।

जनसाधारण कभी यह पूछ सकता है कि १६३०-३१ में मुमताज की मृत्यु से अनेक शती पूर्व ताजमहल यदि विद्यमान था तो क्या रेडियो ऐक्टिव कार्बन १४ के द्वारा उनका परीक्षण कर उसके काल का निर्णय नहीं किया जा सकता? यह विशेषज्ञों के उत्तर देने की बात है, यदि उनके पास ऐसी कोई निर्भ्रान्त पद्धति है तो वे मकबरे तथा ताजमहल के अन्य भागों में प्रयुक्त सामग्री के युग में अन्तर को आसानी से जाँच सकते हैं। किन्तु ऐसा कोई भी परीक्षण तभी उपयुक्त होगा जब उसकी कालावधि के सम्बन्ध में संक्षेप में ज्ञान हो जाए। पाँच-दस वर्ष का अन्तराल विशेष

महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु जब यह अन्तराल सदियों का हो तो यह निष्कर्ष कि ताजमहल हिन्दू भवन था, जिसे मुस्लिम मकबरा बनाने के लिए हथियाया गया था, इसकी पुष्टि के लिए यह परीक्षण अनुपयुक्त होगा।

हमारी सरकार को चाहिए कि ताजमहल तथा अन्य मध्ययुगीन भवनों से सम्बन्धित दर्शक साहित्य, इतिहास, पुरातत्त्व सम्बन्धी अभिलेख तथा राजकीय प्रमाणपत्रों में वह स्वयं संशोधन करें।

और समस्त जन-समाज अपना इतिहास-सम्बन्धी दृष्टिकोण एवं स्वरूप को पूर्णतया बदलने के लिए स्वयं को सन्नद्ध करे।

नई दिल्ली —पुरुषोत्तम नागेश ओक

पूर्ववृत्त के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता

उत्तर भारत के आगरा नगर में यमुना नदी के तट पर एक सुन्दर भव्य भवन खड़ा है, जो ताजमहल नाम से विख्यात है। भारत में आनेवाले पर्यटकों का यह प्रमुख आकर्षण केन्द्र तथा विश्व में अति प्रसिद्ध भवनों में एक है। तीन सौ वर्ष के भ्रामक प्रचार के दबाव के फलस्वरूप दर्शकों का ध्यान इसके अन्य विशेष लक्षणों को छोड़कर केवल उन दो कब्रों की ओर ही केन्द्रित किया जाता है जो इस भवन के अन्दर हैं। परिणामस्वरूप इसके इतिहास तथा शिल्पकला, इन दोनों के विस्तृत अध्ययन में अपार क्षति हुई है।

जब तक हमने विश्व की जनता और शासकों के दृष्टिकोण को अपनी १९६५ में प्रकाशित पुस्तक 'ताजमहल राजपूती महल था' द्वारा सावधान नहीं किया, तब तक सर्वत्र यही विश्वास किया जाता था कि ताजमहल मौलिकतया मुस्लिम मकबरा ही है। अभिज्ञ सामान्य दर्शक तो केवल पारम्परिक सार्वलौकिक किंवदन्तियों पर विश्वास करता है कि ताजमहल का निर्माण भारत के पाँचवें मुगल-शासक शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज़ के प्रति रसिक वृत्ति के कारण हुआ है। उनका विश्वास है कि उसकी मृत्यु पर निराश बादशाह ने उसकी स्मृति में अपने प्रेम का प्रतीक यह विस्तीर्ण और विशाल ताजमहल बनवाया था।

इतिहास और पुरातत्त्व से सम्बन्धित इतिहास के छात्र, शिक्षक, विद्वान्, अनुसन्धानकर्ता तथा शासकीय अधिकारी भी सामान्य दर्शक से अधिक जानकारी कदाचित् ही रखते हैं। इतिहास के अध्यापक और अधिकारी ताजमहल के विषय में अधिकाधिक मिथ्या विवरण ही अपनी स्मृति में लिए फिरते हैं। यदि उन विवरणों को एकत्रित कर तुलना की तुला पर रखा जाय तो उन सभी विवरणों को बड़ी सरलता से परस्पर विरोधी, बनावटी, असंगत एवं कपोल-कल्पित सिद्ध किया जा सकता है।

विगत तीन सौ वर्षों से शाहजहाँ के ताजमहल का निर्माता होने के विषय में ऐसी काल्पनिक तथा रहस्यपूर्ण कथाओं की झड़ी लगी रही है कि उनके विषय में किसी को तनिक भी सन्देह क्यों नहीं हुआ, यही आश्चर्य है। विश्व के लगभग प्रत्येक भाग से भारतीय इतिहास के ज्ञाता एक के बाद एक, दोहरा रहे हैं कि किस प्रकार ताजमहल का मूल्य ४० लाख से ९ करोड़ कुछ भी हो सकता है। तुर्की, ईरानी, इटालियन अथवा फ्रांसीसी कोई भी इसका शिल्पकार हो सकता है। इसके निर्माण की अवधि १० से २२ वर्ष तक कुछ भी हो सकती है और ताजमहल की उस तथाकथित बेगम को ताजमहल के तहखाने में उसकी मृत्यु के ६ मास से लेकर ९ वर्ष तक के भीतर कभी भी दफनाया गया होगा। ऐसे ये कुछ ही उदाहरण हैं ताजमहल की कथा की हास्यास्पद विसंगति के। इसी प्रकार की अन्य अनेक बातें हैं जिनका भण्डाफोड़ हम अगले पृष्ठों में करेंगे।

हमें यह जानकर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार विगत सौ वर्षों तक संसार इस नितान्त भ्रामक बात पर विश्वास करता रहा कि ताजमहल सदृश अद्‌भुत स्मारक, कम-से-कम भारत में, किसी के यौन-प्रेम की स्मृति में बनाया जा सकता है। रोमांटिक काल्पनिक कथाओं में तो इस प्रकार का भोला विश्वास ठीक माना जा सकता है किन्तु मध्ययुगीन मुसलमानी राजदरबारों के कटु तथ्यों के प्रसंग में इसे कठिनाई से ही युक्तियुक्त माना जा सकता है।

'काल्पनिक कब्र' की कथा पर विश्वास करने से पूर्व दो प्रश्न पूछे जा सकते हैं। प्रथम यह कि मुमताज़, जो कि शाहजहाँ की पाँच हजार प्रेयसियों में से एक थी, की मृत्यु से पूर्व शाहजहाँ के उसके प्रति प्रेमानुराग का ऐतिहासिक लेखा-जोखा कहाँ है? दूसरे यह कि मुमताज़ की मृत्यु पर उसकी स्मृति में भव्य भवन बनवानेवाले शाहजहाँ ने अपनी प्रेमिका के जीवन-काल में उसके लिए कितने भवन बनवाए?

इन दोनों प्रश्नों पर इतिहास मौन है। प्रथम प्रश्न का तो उत्तर यही हो सकता है कि क्योंकि शाहजहाँ और मुमताज़ के मध्य प्रेम-व्यापार था ही नहीं, अतः उसका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। वह तथाकथित प्रणय-व्यापार तो केवल ताजमहल को अनोखा मकबरा सिद्ध करने के लिए कल्पित है। दूसरे प्रश्न का उत्तर है कि शाहजहाँ ने मुमताज़ के लिए न तो उसके जीवन-काल में और न ही उसकी मृत्यु पर कोई भवन बनवाया था।

किसी भी विषय पर अनुसन्धान करने से पूर्व अनुसन्धाता को चाहिए कि वह इस बात की पुष्टि कर ले कि उसकी धारणाएँ निर्भ्रान्त हैं, अतः हम पग-पग पर इस प्रकार के चुनौतीपूर्ण प्रश्न उपस्थित करने की प्रक्रिया स्वीकार करेंगे।

हम यह बात दृढ़ता से कहेंगे कि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति जो प्रेम था उसकी स्मृति में उसने संगमरमर का ताजमहल बनवाया, यह पाश्चात्य विचारों के व्यक्तियों को भले ही रोचक प्रतीत हो, किन्तु इसमें तथ्य कुछ भी नहीं है। मध्ययुगीन भारत में ऐसा कभी नहीं हुआ और सम्भवतया संसार में ऐसा कहीं अन्यत्र भी नहीं हुआ। प्रत्येक मुगल बादशाह के हरम में कम-से-कम पाँच हजार रखेलें होती थीं और उनसे कहीं अधिक उसके राज्य में होती थीं। इन सहस्रों रखेलों में से किसी एक के प्रति प्रेम व्यक्त करने का उसे समय ही कहाँ मिल सकता था?

यह बड़े दुःख की बात है कि इतिहास के विद्वान् बिना किसी जाँच-पड़ताल के विगत तीन सौ वर्षों से मुमताज के प्रति शाहजहाँ के प्रेम की कल्पित कहानी को दोहराते रहे हैं। इस प्रक्रिया में वे इन तथ्यों की जाँच करना भूल गए कि वे परस्पर असंगत हैं। परिणामस्वरूप इतिहास तथ्यविहीन विवरण से लद गया है।

क्योंकि इतिहास की पुस्तकों में ताजमहल सम्बन्धी अगणित असत्य वृत्तान्त भरे पड़े हैं, उन्हें एकत्रित कर संकलित करना संभव नहीं। कौन जाने विगत ३०० वर्षों में से ऐसे कितने असत्य विवरण संसार में कितने ही लोगों ने, जो शाहजहाँ की काल्पनिक कथा से प्रभावित होंगे, लिख रहे होंगे। किन्तु इस पुस्तक में हम उनमें से कुछ प्रमुख वृत्तान्तों का उल्लेख करके यह सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि वे परस्पर कितने विरोधी और निराधार हैं।

शाहजहाँ के बादशाहनामे की स्वीकारोक्ति

हिन्दू राजप्रासाद ताजमहल को मुसलमानी मकबरा बनाने के लिए अधिकृत कर लिया गया, यह असंदिग्ध, अनावृत आत्मस्वीकृति शाहजहाँ के दरबारी इतिहास में उसके वैतनिक इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा लिखित है।

इलियट और डौसन[१] की पुस्तक में लिखा है—"अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा रचित 'बादशाहनामा' शाहजहाँ शासन के प्रथम बीस वर्षों का इतिहास है।....अपनी भूमिका में स्वयं अब्दुल हमीद लिखता है कि बादशाह किसी ऐसे लेखक को चाहता था जो कि अब्दुल फजल के 'अकबरनामा' की भाँति उसके शासन के संस्मरणों को लिख सके....उस कार्य के लिए उसको, अब्दुल हमीद की सिफारिश की गई और उसे पटना से, जहाँ वह सेवानिवृत्ति का जीवन व्यतीत कर रहा था, बुलाया गया।" इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने शाहजहाँ के अपने आदेशानुसार फारसी भाषा में 'बादशाहनामा' (दरबारी इतिहास) लिखा। दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने मौलिक रूप में 'फारसी बादशाहनामा' प्रकाशित किया। 'बादशाहनामा' के पहले खण्ड के पृष्ठ ४०२ और ४०३ इसी पुस्तक के आगे उद्धृत है :[२]

---

१. 'हिस्ट्री ऑफ इंडिया ऐज़ टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स' खण्ड ७, पृष्ठ ३ : स्वर्गीय सर एच. एम. इलियट, के. सी. बी. के मरणोपरान्त प्रो. जौन डौसन एम. आर. ए. एस. द्वारा सम्पादित तथा किताब महल प्रा. लि., इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित।

२. मुल्ला अब्दुल हमीद का फारसी बादशाहनामा 'दि एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल' ने बिबलियोथेका इंडिया सीरीज के अन्तर्गत दो भागों में प्रकाशित किया है। राष्ट्रीय अभिलेखागार में सुरक्षित प्रति की दिसम्बर १९६५ में मैंने फोटो स्टेट प्रतियाँ लीं। संसार-भर में भारतीय मध्यकालीन इतिहास पर कार्य करनेवाली सभी प्रमुख संस्थाओं के पुस्तकालयों में इस प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध हैं।

पृष्ठ ४०२ पर २२ तथा पृष्ठ ४०३ पर १९ पंक्तियाँ हैं। हमने दोनों पृष्ठों की पंक्तियों को क्रमबद्ध कर दिया है जिससे कि फारसी लिपि न जाननेवाले पाठक पंक्तिशः उनका हिन्दी अनुवाद पढ़ सकें।

पंक्तिशः हिन्दी अनुवाद

(फारसी लिपि की मूल पंक्तियों के लिए इस पुस्तक के अन्त में प्रकाशित चित्र-प्रतिलिपि देखिए।)

पृष्ठ ४०२

१. दोनों को परस्पर पृथक् कर दिया गया और वे उन अत्याचारों के कारण बीमार पड़ गए।
२. कुछ कालोपरान्त उसके पिता के ही समय में, वह मर गया। इसे पूर्व फतह खाँ
३. अकबर के बेटे ने अमीनुद्दौला आसफ खाँ के द्वारा एक निवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें
४. अपनी राजभक्ति की घोषणा करते हुए प्रार्थना की कि
५. यह राजभक्त सेवक पूर्ण सच्चाई से निवेदन करता है कि अदूरदर्शिता और अत्याचार के कारण
६. आपके विरोधी तथा राजकीय अधिकारी बीच में पड़े
७. और कठोर करावास में रखा—और मुझे आशा है कि मुझे राजकीय क्षमा प्राप्त होगी और उस मारक
८. राजकीय आदेश.....और उस वक्तव्य में तनिक भी सत्यता है
९. तो यह संसार ऐसे व्यक्ति के अस्तित्व से मुक्त हो क्योंकि फतह खाँ
१०. राजकीय आदेश प्राप्त होने के उपरान्त—संसार मान्य—अपने दुःशासन के लिए तर्क प्रस्तुत करता हुआ क्षमा-याचना करने लगा।
११. उसने इस प्रकार प्रचारित किया मानो वह स्वाभाविक मृत्यु हो और दरसलेह के पुत्र हुसैन को
१२. असंवैधानिक रूप से उत्तराधिकारी बना और एक प्रार्थना
१३. सच्चाई से कोसों दूर, इस घटना की, मोहम्मद इब्राहीम जो उसका

विश्वस्त नौकर था, उसके द्वारा भेजी

१४. और बादशाह के दरबार से एक आदेश जारी हुआ जिसका दृढ़ता से पालन हो

१५. कि अभियुक्त को दौलताबाद के दुर्ग में डालकर भूखों मार दिया जाय।

१६. और बड़े ही शान-शौकत से अपने (बड़े) पुत्र के साथ

१७. उसे विदा दी जाय, जिससे कि उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो।

१८. और इस राजकीय आदेश से युक्त और दो घोड़ों—जिनमें से एक सोने की गद्दी से सजा इराकी ईरानी

१९. दूसरा—स्वर्णिय जीनवाला तुर्क—शकरुल्लाह अरब और फतेह खाँ

२०. दौलताबाद भेजे गए और उदजहाँ को चालीस हजार रुपए से पुरस्कृत किया।

२१. शुक्रवार १५ जमा-दि-उल-अव्वल को यात्री का पवित्र शव जो पवित्रता के राज्य

२२. हजरत मुमताजुल ज़मानी, जो अस्थायी रूप से दफना दिया गया था, भेजा गया

पृष्ठ ४०३

२३. राजकुमार मोहम्मदशाह, शुजा बहादुर, वजीर खाँ

२४. और सातुन्निसा खानम—जो मृतक के स्वभाव से भली भाँति परिचित थी

२५. कार्य से सुपरिचित और बेगम के विचारों का प्रतिनिधित्व करती थी।

२६. उसको राजधानी अकबराबाद (आगरा) लाया गया और उसी दिन एक आदेश निकाला गया

२७. कि यात्रा के दौरान फकीर और जरूरतमन्दों को असंख्य मुद्राएँ बाँटी जाएँ। स्थान

२८. महान् नगर के दक्षिण में भव्य. सुन्दर हरित उद्यान से घिरा हुआ

२९. जिसका केन्द्रीय भवन जो राजा मानसिंह के प्रासाद के नाम से जाना जाता था अब राजा जयसिंह, जो मानसिंह का पौत्र था, के अधिकार में था

३०. बेगम को दफनाने के लिए, जो स्वर्ग जा चुकी थी, चुना गया।

३१. यद्यपि राजा जयसिंह उसे अपने पूर्वजों का उत्तराधिकार और सम्पदा के

रूप में मूल्यवान समझता था, तो भी वह बादशाह शाहजहाँ के लिए निःशुल्क देने के लिए तत्पर था

३२. फिर भी केवल सावधानीवश जो कि दुःख और धार्मिक पवित्रता के लिए आवश्यक है, अपने प्रासाद का अधिग्रहण अनुपयुक्त मानता हुआ।

३३. उस भव्य प्रासाद (आली मंजिल) के बदले में जयसिंह को एक साधारण टुकड़ा दिया गया।

३४. उस महानगरी (आगरा) में शव के पहुँचने के बाद १५ जमाहुल सानिया को

३५. अगले वर्ष स्वर्गीय महारानी का सुंदर शरीर दफना दिया गया।

३६. राजधानी के अधिकारियों द्वारा शाही फरमान के अनुसार गगनचुम्बी गुम्बद के नीचे

३७. उस पुण्यात्मा रानी का शरीर, संसार की आँखों से ओझल हो गया और यह प्रासाद (इमारते-आलीशां) इतना भव्य

३८. और जो अपनी बनावट में इतना ऊँचा है, गगनचुम्बी गुम्बदों से युक्त स्मारक

३९. साहिब कुरानी सानी (बादशाह) तथा शक्तिशाली

४०. दृढ़व्रती, उसके आदेश से नींव रखी
सुविज्ञ रेखांकनकार तथा वास्तुकारों द्वारा

४१. इस भवन पर ४० लाख रुपया व्यय हुआ।

उपरिलिखित उद्धरण को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कुछ अन्य बिन्दुओं का स्पष्टीकरण करना चाहेंगे।

बादशाह शाहजहाँ की बेगम अर्जुमन्दबानो की मृत्यु बुरहानपुर में सन् १६२३-३२ के मध्य हुई। वहाँ एक उद्यान में उसका शव दफनाया गया। किन्तु लगभग छः मास बाद उसे वहाँ से उखाड़कर आगरा ले जाया गया। यही एकमात्र विवरण किसी भी विवेकशील एवं विचारवान व्यक्ति को सचेत करने के लिए पर्याप्त था कि शाहजहाँ को एक पूर्वनिर्मित मकबरा मिल गया था। अन्यथा वह कब्र में भली भाँति दफनाए गए शव को वहाँ से उखाड़कर ६०० मील दूर क्यों ले गया? बिना किसी प्रयोजन विशेष के वह एक कब्र से दूसरी कब्र पर ले जाना पसन्द नहीं कर सकता था। किसी शाही बेगम का तो क्या साधारण व्यक्ति के शव के साथ भी

यह खिलवाड़ नहीं किया जा सकता, और जबकि वह बेगम बादशाह को अत्यन्त प्रिय हो। ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार के परीक्षण का अभाव रहा है।

मुमताज़ के शव को यदि बुरहानपुर से हटाया गया है तो केवल इसलिए कि उस समय तक आगरा में जयसिंह का प्रासाद उसको दोबारा दफनाने के लिए प्राप्त कर लिया गया था। आगरा में मुमताज़ को दफनाने के लिए जो स्थान चुना गया वह बहुत ही हरा-भरा (सब्ज जमीं) था जैसा कि बादशाहनामे में अंकित है। यह प्रकट करता है कि मानसिंह प्रासाद के चारों ओर सुन्दर राजकीय उद्यान था। उसके मध्य मानसिंह का प्रासाद था जो उन दिनों उसके पौत्र जयसिंह के अधिकार में था—ऐसा बादशाहनामा कहता है।

यह ध्यान देने की बात है कि राजा मानसिंह का प्रासाद कहने से यह अभिप्राय नहीं कि वह उसी के द्वारा बनवाया गया था। इसका केवल यही अभिप्राय है कि जयसिंह के समय में उसको राजा मानसिंह का प्रासाद कहा जाता था क्योंकि मानसिंह इस प्रासाद का अन्तिम प्रमुख निवासी था। वह प्राचीन हिन्दू भवन था जो मानसिंह को उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था और उसके बाद जयसिंह को। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि यह आवश्यक नहीं कि ताजमहल मानसिंह को पीढ़ी-दर-पीढ़ी से उत्तराधिकार में ही मिला होगा। ऐसे भवन, अन्य सम्पत्तियों की भाँति क्रय, उपहार, दहेज, विजय और विनिमय में हस्तान्तरित होते रहते थे। समय-समय पर वह प्राचीन हिन्दू भवन विभिन्न व्यक्तियों के अधिकार में गया और फिर एक ऐसा भी समय आया जब यह विजेता मुसलमानों के हाथ में आया जैसाकि हम परवर्ती पृष्ठों में स्पष्ट करेंगे।

बादशाहनामे के अनुसार मुमताज़ का शव आगरा पहुँचने पर उसे राज्याधिकृत मानसिंह के प्रासाद के गुम्बद के तले दफनाया गया। इससे पूर्व इसमें हमें बताया गया है कि जयसिंह अपनी मूल्यवान पैतृक सम्पत्ति को राजकीय उपयोग में लेना अपने प्रति सम्मान प्रकट किया जाना समझता था। इस पर भी धार्मिक अन्धविश्वास के कारण यह उचित समझा गया कि इसके विनिमय में उसको सरकारी भूमि का एक टुकड़ा दे दिया जाय। यह विदित नहीं है कि वह कोई गाँव था, या खुला मैदान, या पथरीली पहाड़ी या और कोई ऐसी भूमि जिसका कि विवरण लिखित में देना सम्मानजनक नहीं समझा गया। परन्तु क्योंकि ऐसा कोई भी स्थान नहीं पाया गया

जिसे कि प्रासाद के विनिमय में जयसिंह को दिया गया था, तो इतिहासकारों ने अपनी स्वच्छंदता का दुरुपयोग कर उसे खुली भूमि का टुकड़ा घोषित कर दिया। विवादास्पद बात पर भ्रम उत्पन्न करने के लिए उन्होंने निराधार ही यह भी अनुमान लगा लिया कि शाहजहाँ ने भी विनिमय में खुली भूमि का एक टुकड़ा प्राप्त किया। शाहजहाँ क्यों एक टुकड़े के लिए दूसरे टुकड़े का विनिमय करेगा? यदि उसने ऐसा किया था तो जयसिंह को दिये गए भूमि के टुकड़े के स्थान का संकेत क्यों नहीं किया? बादशाहनामे में स्पष्ट लिखा है कि जयसिंह को भूमि का टुकड़ा दिया गया और विनिमय में शाहजहाँ को मानसिंह का उद्यान-प्रासाद प्राप्त हुआ। यह एक ऐसा विस्तृत विवरण है जो सिद्ध करता है कि ताजमहल के सम्बन्ध में शाहजहाँ की सारी कहानी आदि से अन्त तक पूर्णतया कपोलकल्पित है।

प्रत्यक्षरूपेण यह विनिमय मात्र एक कहानी है, ऐसा कौन होगा जो विशाल हृदयता से अपार सम्पत्ति-सम्पन्न विशाल प्रासाद को साधारण भूमि के टुकड़े में विनिमय कर देगा? दूसरे, विनिमय स्वयं में रहस्य बना हुआ है, क्योंकि जो भूमि दी गई है उसका परिमाण एवं दिशा का कहीं कोई संकेत नहीं दिया गया है। तीसरे, शाहजहाँ सदृश हठी, धर्मान्ध मुस्लिम सुलतान तथा उसके दरबारी अधिकारियों, विशेषतया हिन्दू अधिकारियों के मध्य सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध शेष नहीं रहे थे। इसकी सम्भावना अधिक प्रतीत होती है कि जयसिंह को उसके पैतृक प्रासाद से धकेलकर बाहर कर दिया गया हो।

तीन सौ सुदीर्घ वर्षों से विश्व के जन-समाज को भुलावे में रखकर यह विश्वास करने पर विवश किया गया है कि शाहजहाँ ने जयसिंह से खुली भूमि का एक टुकड़ा लिया था। कम-से-कम इतिहास के अध्येताओं को तो इस पर पुनः विचार करना ही चाहिए था। बादशाह होते हुए शाहजहाँ अपने अधीनस्थ राज्याधिकारी से जमीन के टुकड़े की याचना क्यों करें? क्या स्वयं शाहजहाँ के अधिकार में विशाल भूमि नहीं थी? उसने जयसिंह से वह भव्य प्रासाद अपनी बेगम को दफनाने के लिए उपयुक्त स्थान समझकर छीन लिया।

बादशाहनामे का लेखक बताता है कि प्रासाद में एक गुम्बद था जिसके नीचे मुमताज का शव शाहजहाँ के 'आदेशानुसार', राज्याधिकारियों ने संसार की दृष्टि से छिपाया (दफनाया)। जब तक मुमताज़ को किसी अन्य की सम्पत्ति में दफनाने की बात न हो, इस प्रकार का आदेश पुनः अनावश्यक प्रतीत होता है। इस प्रकार यहाँ पर

'आदेशानुसार' शब्द साभिप्राय है। हम स्पष्ट करेंगे कि लगभग १०४ वर्ष पूर्व बादशाह बाबर ने भी इस गुम्बदयुक्त प्रासाद का उल्लेख किया है।

गुम्बद के विषय में इस भ्रामक धारणा को मिटाना अत्यन्त कठिन है जो कि भारतीय इतिहास, वास्तु-विद्या तथा नागरिक अभियान्त्रिकी की पुस्तकों में ऐसा उल्लेख किया गया है कि गुम्बद मुस्लिम वास्तुकला का प्रतीक है। बादशाहनामा हमें स्पष्टतया बताता है कि मुमताज को दफनाने के लिए जो प्रासाद अधिग्रहण किया गया था उसमें एक गुम्बद था। संयोगवशात् प्रासाद को भी गगनचुम्बी भवन बताया गया है। यद्यपि ऐसे विशेषण शाहजहाँ के साहस और वीरता के साथ जोड़े गए हैं।

अब क्योंकि ताजमहल को गुम्बदयुक्त हिन्दू प्रासाद स्वीकार किया जा चुका है तब यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि सिकन्दरा में अकबर का तथाकथित मजार, दिल्ली में हुमायूँ और सफदरजंग के मकबरे, जिनकी तुलना बहुधा ताजमहल से की जाती है, यह सब[१] वे पूर्व के हिन्दू राजप्रासाद हैं जिन्हें मुसलमानों ने जीता और मकबरों में परिणत कर उनका दुरुपयोग किया।

उपरि-उद्धरित बादशाहनामे की ४०वीं पंक्ति में कहा गया है कि बादशाह ने रेखांकनकार और वास्तुविशारद को इस कार्य पर लगाया। इससे यह किंचित् भी सिद्ध नहीं होता कि उसने नींव से ही किसी मकबरे का निर्माण कराया था। रेखांकनकार तथा वास्तुविशारद की नियुक्ति अपहृत राजप्रासाद के अधोभाग के कक्ष के मध्य में कब्र की खुदाई तथा उसके ठीक ऊपर अष्टभुज सिंहासन-कक्ष के मध्य में नकली कब्रों को उठाने के लिए ही की गई थी। कुछ संगमरमर के पत्थरों को हटाने के लिए, जिससे कि उनके स्थान पर विभिन्न आयामों एवं आकार-प्रकार की कुरान की आयतें उचित स्थान एवं ऊँचाई पर खुदवाने के लिए भी रेखांकनकार तथा वास्तुविशारद के मार्गदर्शन की आवश्यकता थी।

उसी ४०वीं पंक्ति में निहित शब्द 'नींव रखी' स्वयं में स्पष्ट हैं। वे एक नहीं दो अर्थों में प्रयुक्त हुए हैं। प्रथमतः, शव सदा किसी गर्त में ही दाबा जाता है, अतः गर्त को भरने के लिए शव के ऊपर मिट्टी डालने की क्रिया 'कब्र की नींव रखी' मानी जाएगी। द्वितीयतः इसका एक अर्थ लाक्षणिक भी है। हिन्दू प्रासाद में शव को

१. जुलाई १९६६ में प्रकाशित मेरी पुस्तक 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' के द्वितीय अध्याय में इस बिन्दु पर अधिक विस्तार से विचार किया गया है।

दफनाकर शाहजहाँ ने मुसलमानी कब्र की नींव रखी। 'नींव रखी' जैसा लाक्षणिक किन्तु साभिप्राय शब्द-प्रयोग असामान्य नहीं है। उदाहरणार्थ कोई कह सकता है कि अपनी विजय-यात्राओं द्वारा नेपोलियन ने फ्रैंच-साम्राज्य की नींव रखी। क्या इसका अभिप्राय यह है कि नेपोलियन ने फ्रैंच-साम्राज्य के भवन के लिए ईंट, गारे और पत्थरों का आदेश दिया था। इसी प्रकार शाहजहाँ ने किसी प्रकार की भवन-निर्माण-सामग्री के लिए आदेश दिये बिना अपनी पत्नी की कब्र की नींव रखी। क्योंकि उसने इस कार्य के लिए एक अधिकृत भवन को चुन लिया था। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि अनेक मुस्लिम कथाकारों ने 'नींव रखी' जैसे भ्रामक शब्द का प्रयोग कर इस झूठ को प्रचलित करने का प्रयत्न किया कि मुसलमान बादशाहों ने बड़े-बड़े भवन निर्माण कराए।

यह ऐसा है कि जिसके विषय में हम सभी इतिहासकारों से आग्रह करेंगे कि वे इनकी तार्किक एवं वैधानिक व्याख्या करें। आज तक हमारे इतिहासकार अनुपयुक्त पद्धति से शब्दावलियों और वाक्य पंक्तियों की गलत व्याख्या, महत्त्वपूर्ण उद्धरणों की उपेक्षा, अवास्तविकता के संसार में काल्पनिक अनुमान, साधारण और स्वाभाविक अर्थों की तोड़-मरोड़, तर्कसंगत एवं वैधानिक साक्ष्य की ओर से आँखें मूँदकर धोखेबाज तथा असत्य वक्ताओं पर विश्वास करते रहे। यदि भारतीय इतिहास को इसकी अनेक गलत धारणाओं एवं संकेतों से मुक्त करना है तो ऐसी असन्तोषकारक एवं असंगत पद्धति का पूर्णतः परित्याग करना होगा।

भवन पर व्यय किए गए जिन ४० लाख रुपयों की जो बात बादशाहनामे में मिलती है, उसका स्पष्टीकरण भी सहज है। हम अपने पाठकों को आरम्भ में ही सूचित कर देना चाहते हैं कि मुसलमानी दरबारी इतिहासकारों की अपने राजकीय संरक्षकों की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा में आँकड़ों को बढ़ा-चढ़ाकर कहने अथवा बताने की सबसे बड़ी दुर्बलता रही है।[१] इन अतिशयोक्तियों को ध्यान में रखते हुए हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि उस मकबरे को बनाने में लगभग तीस लाख रुपए व्यय हुए होंगे।

उसके उपरान्त हम एक अन्य विषय पर विचार करेंगे। मुगल शासकों के

---

१. इलियट एण्ड डौसन के इतिहास, खण्ड ६, पृष्ठ २५३ पर लिखा है—'डे सैकी भी सम्पत्ति खर्च, हाथियों तथा घोड़ों की संख्या, भवनों के मूल्य आदि के विषय में अपने संस्मरणों (मैमॉयर्स ऑफ जहाँगीर) जिनका प्राइस ने अनुवाद किया है, एन्डरसन के सार में दिए गए उचित विवरण से तुलना करने पर, अतिशयोक्ति का उल्लेख करता है।

समय में प्रचलित भ्रष्टाचार को ध्यान में रखते हुए ऐसे कार्य के निर्माण का जो अनुमानित व्यय बादशाह को बताया गया होगा उसमें बहुत बड़ा भाग उस अनधिकृत लाभ का होगा जो हजारों बिचौलियों में बाँटा गया होगा। इस प्रकार के अनुचित अनुमान के आधार को ध्यान में रखते हुए हम समझ सकते हैं कि वास्तविक व्यय २० लाख रुपए के लगभग ही हुए होंगे।

बीस लाख रुपए अथवा इसके लिए ४० लाख भी मान लें तो भवन की अधोभाग में कब्रों की खुदाई, बनवाई, अष्टभुज केन्द्रीय कक्ष में नकली कब्रों की बनवाई, उन पर पच्चीकारी करवाने तथा दीवारों पर कुरान की आयतों के खुदवाने आदि में सहज ही व्यय हो सकते हैं। पच्चीकारी करवाने के कारण मीनारों की ऊँचाई तक प्रासाद के चारों ओर मुखद्वार और मेहराबों के परिवर्तन के लिए विशाल मचान बँधवाने की आवश्यकता थी। इस प्रकार के पच्चीकारी के कार्य और कुरान की आयतों को खुदवाने के लिए प्राचीन हिन्दू प्रासाद के उन भागों से पत्थरों को हटाने और उनके स्थान पर दूसरे लगाने की आवश्यकता थी। इसके लिए नये पत्थर भी मँगवाए गए होंगे। क्योंकि पत्थरों को उखाड़ने-लगाने में कुछ खराब हो जाते होंगे और कुछ टूट भी जाते होंगे। उच्च वेतनों पर शिल्पियों की नियुक्ति, दूर से पत्थरों का मँगवाना और ऊँचे मचान बँधवाने के विषय में ही व्यय का विवरण बादशाहनामे में उल्लिखित है।

पूर्ण निर्माण कार्य की अपेक्षा मचान बँधवाने में अधिक व्यय हुआ है, यह सिद्ध करने के लिए-हम अगले अध्याय में फ्रैंच-व्यापारी टैवर्नियर को उद्धृत करेंगे। इससे यह सिद्ध हो जाएगा कि जो कार्य किया गया वह ताजमहल की दीवारों पर लिखाई की तुलना में महत्त्वहीन था।

हमें आश्चर्य होता है कि बाद के लेखकों ने किस अधिकार के आधार पर ताजमहल के इस तथाकथित निर्माण-कार्य में नौ करोड़ सत्रह लाख व्यय होने का उल्लेख किया जबकि शाहजहाँ का अपना दरबारी लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद इसको केवल चालीस लाख ही बताता है। ऐसे अपुष्ट प्रमाण जो अन्धविश्वासपूर्वक कार्य-प्रणाली को विकृत कर मान लिये गए, जिनके कारण भारतीय इतिहास पहेली बनकर रह गया है। इनमें सबसे अधिक उलझन-भरी घटना ताजमहल की मौलिकता के सम्बन्ध में है।

टैवर्नियर का साक्ष्य

पिछले अध्याय में बताया गया है कि स्वयं शाहजहाँ का राजकीय इतिहास-लेखक स्वीकार करता है कि ताजमहल गुम्बदवाला हिन्दू राजप्रासाद था जिसे मुमताज़ को दफनाने के लिए अधिग्रहण किया गया था। प्रस्तुत अध्याय में हम सिद्ध करना चाहते हैं कि फ्रांसीसी यात्री टैवर्नियर का साक्ष्य भी पूर्णतया हमारे निष्कर्ष की पुष्टि करते हुए सिद्ध करता है कि शाहजहाँ के सम्बन्ध में परम्परा से चली आ रही कथा निराधार है। टैवर्नियर ने शाहजहाँ के शासनकाल में भारत-यात्रा की थी। ताजमहल पर उसके कुछ संक्षिप्त विवरण प्राप्य हैं जो उस प्रासाद की मौलिक निर्माण की सत्यता प्रतिपादित करने में सहायक होंगे।

उनके साक्ष्य का परीक्षण करने से पूर्व हमें उसका परिचय प्राप्त करना अपेक्षित है। महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश हमें बताता है[१] :

"फ्रांसीसी जौहरी जीन बैप्टिस्ट टैवर्नियर ने व्यापार की दृष्टि से १६४१-१६६८ ई. के मध्य भारत का भ्रमण किया। उसका यात्रा-वृत्तान्त मुख्यतया वाणिज्योन्मुख है। जब वह भारत में होता तो सूरत और आगरा में डेरा डाला करता था। बंगाल, गुजरात, पंजाब, मद्रास, कर्नाटक आदि-आदि भारत के सभी भागों की वह यात्रा किया करता था। उसके पास अपनी सवारी गाड़ी थी। बैलगाड़ी और बैलों की जोड़ी के लिए उसने ६०० रुपये व्यय किए थे। 'वे बैल दो मास तक लगातार एक दिन में ४० मील तक की यात्रा कर लिया करते थे। सूरत से आगरा या

---

१. पृष्ठ ३-४, महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, सम्पादक—डॉ. एस. वी. केतकर तथा सहयोगी, प्रकाशक—महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश लि., ८४१, सदाशिव पेठ, पूना-२, २२ भागों में, प्रकाशन-वर्ष १९२५।

गोलकुण्डा पहुँचने के लिए ४ दिन पर्याप्त होते थे और व्यय ४० से ५० रुपए तक होता था। सड़कें रोम के जनपथ के समान अच्छी थीं। हिन्दू क्षेत्रों में मांस के अभाव में, जो मुस्लिम क्षेत्र में सरलता से उपलब्ध था, योरोपीय यात्रियों को असुविधा होती थी। डाक-व्यवस्था अच्छी थी। सरकार और नागरिक दोनों ही जनपथीय लूट-पाट से सुरक्षा की व्यवस्था करते थे।' इस प्रकार की सूचना टैवर्नियर ने अपनी पुस्तक 'ट्रेवल्स इन इण्डिया' में अंकित की है। पढ़ा-लिखा न होने के कारण उसने सम्पदा और वाणिज्य विषय के अतिरिक्त और अधिक कुछ अंकित नहीं किया।''

उपरिलिखित उद्धरण जिससे हमें टैवर्नियर का परिचय प्राप्त होता है, उसमें हमें तीन बिन्दु अपने विचार-विमर्श के लिए प्राप्य हैं। पहला यह कि टैवर्नियर १६४१-१६६८ ई. के मध्य कभी भारत में था। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना होगा कि मुमताज़ की मृत्यु कभी १६२९ और १६३२ के मध्य हुई। टैवर्नियर मुमताज़ की मृत्यु के ११ वर्ष बाद भारत आया था। हम मुस्लिम इतिहास-लेखकों के उद्धरणों से सिद्ध करेंगे कि मुमताज की मृत्यु के कुछ समय बाद ही रहस्यमय ताजमहल का प्रादुर्भाव हुआ था। इसके विपरीत हम आगे टैवर्नियर के प्रमाण उद्धृत करेंगे, कि इस कार्य का आरम्भ और समापन उसकी भारत-यात्रा के दौरान ही हुआ। इसका अभिप्राय यह हुआ कि टैवर्नियर १६४१ ई. के बाद कभी भारत आया और उसके अनुसार मुमताज़ के मकबरे से सम्बन्धित कोई भी कार्य कम-से-कम उसकी मृत्यु के 11 वर्ष बाद ही आरम्भ किया गया। कुछ मुस्लिम उद्धरणों के आधार पर, जिन्हें हम बाद में उद्धृत करेंगे, ताजमहल आधारशिला से आरम्भ कर १६४३ में पूर्ण भी हो गया था। पाठक देख सकते हैं कि टैवर्नियर और मुस्लिम कथन में स्पष्ट विरोधाभास है। कुछ पूर्ववर्ती मुसलमान लेखक कहते हैं कि ताजमहल १६४३ तक पूर्ण हो चुका था जबकि टैवर्नियर हमें बताता है कि मकबरे से सम्बन्धित कार्य १६४१ तक भी आरम्भ नहीं हुआ था। हम इन संगत कथनों को बाद में उद्धृत करेंगे। उपरि-उद्धृत सारांश में दूसरा बिन्दु यह है कि क्योंकि टैवर्नियर कोई विद्वान् नहीं था इसलिए उसका ध्यान केवल सम्पदा और वाणिज्य पर ही मुख्यतया केन्द्रित था।

तीसरा बिन्दु यह है कि यद्यपि टैवर्नियर पारी-पारी से १६६८ तक भारत में रहा किन्तु शाहजहाँ को १६५८ में ही उसके पुत्र औरंगजेब ने पदच्युत कर बन्दी बना लिया था। यदि हम टैवर्नियर के कथन को प्रमाण मानें तो कहना होगा कि मुमताज़ के मकबरे से सम्बन्धित कार्य १६४१ के बाद किसी समय प्रारम्भ होकर १६५८ तक,

जबकि शाहजहाँ असहाय और पुत्र द्वारा बन्दी बनाया गया था, पूर्ण हो गया होगा। किन्तु हम दिखाएँगे कि टैवर्नियर भी लिखता है कि इस कार्य को सम्पन्न होने में २२ वर्ष लगे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि कार्य सन् १६४१ में भी आरम्भ हो गया था तो वह १६६३ में ही पूर्ण हुआ। किन्तु यह असम्भव था क्योंकि १६५८ के बाद शाहजहाँ राज्यसिंहासन पर रहा ही नहीं।

ताजमहल सम्बन्धी प्रचलित कथाओं में विद्यमान इस प्रकार की प्रचण्ड असंगतियों ने इससे पूर्व किसी का ध्यान आकर्षित नहीं किया। इससे यह सिद्ध होता है कि ताजमहल की मौलिकता के विषय में वास्तविक अन्वेषण किया ही नहीं गया। बहुसंख्य विद्वानों ने परस्पर विरोधी विवरणों को व्यवस्थित तथा एक समान रखने का यत्न किए बिना ही मात्र उन असंगत कथनों को ही उद्धृत करने में सन्तोष का सुख समझा।

टैवर्नियर से और अधिक परिचित होने के लिए अब हम एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका को उद्धृत करेंगे।[१]

"टैवर्नियर, जीन बैपटिस्ट (१६०५-१६८९), फ्रांसीसी भ्रमणकारी और भारत के साथ व्यापार में अग्रणी, का जन्म सन् १६०५ में पेरिस में हुआ जहाँ उसके पिता गैबरियल और चाचा मैलचाइन्स, जो प्रोटेस्टैंट क्रिश्चियन थे, उन्होंने भूगोल और नक्काशी का कार्य अपनाया था। अपनी प्रथम यात्रा में वह अधिकाधिक इस्फाहान तक आया था, वह बगदाद, अलेप्पो, अलेक्जांड्रिया, माल्टा और इटली होता हुआ १६३३ में पेरिस पहुँच गया था। सितम्बर १६३८ में उसने अलेप्पो से फारस होते हुए दूसरी यात्रा आरम्भ की और तब भारत में वह आगरा तथा गोलकुण्डा तक पहुँचा। मुगल दरबार तथा रत्नों की खानों से सम्बन्धित उसकी यात्राएँ पूर्णतया उस समय फलीभूत हुईं जब अपनी भावी यात्राओं में उसने भारत के पूर्वी प्रदेशों के राजकुमारों के साथ मूल्यवान रत्नों तथा अन्य अमूल्य द्रव्यों का व्यापार किया। उसी दूसरी यात्रा का चार अन्य व्यक्तियों ने अनुसरण किया। अपनी तीसरी यात्रा (१६४३-४९) में वह सुदूर जावा तक जाकर प्रायद्वीप के मार्ग से वापस लौटा। अपनी अन्तिम तीन यात्राओं (१६५१-५५, १६५७-६२, १६६४-६८) में वह भारत से आगे नहीं बढ़ा। १६६९ में उसे सम्भ्रान्त नागरिक की उपाधि मिली और सन् १६७० में उसने जनेवा के समीप औबोन की ताल्लुकेदारी खरीदी।

१. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग २१, पृष्ठ ८३६, १९६४ संस्करण।

"टैवर्नियर के जीवन के अन्तिम दिनों का विवरण अस्पष्ट है। सन् १६८७ में पेरिस छोड़कर वह स्विट्ज़रलैंड चला गया। सन् १६८९ में वह कोपेनहागेन से गुजरता हुआ मास्को के मार्ग से फारस को जा रहा था। उसी वर्ष मास्को में उसकी मृत्यु हो गई।"

इसके बाद हम ताजमहल के सम्बन्ध में टैवर्नियर के लेखों का यह दिखाने के लिए विश्लेषण करेंगे कि यदि उसको ठीक ढंग से समझा जाए और व्याख्या की जाए तो उससे हमारे इस निष्कर्ष की पुष्टि होगी कि शाहजहाँ ने ताजमहल को बनवाया नहीं था अपितु केवल अपनी पत्नी मुमताज को दफनाने के लिए उसने प्राचीन हिन्दू भवन पर अधिकार कर लिया था।

तदपि हम यहाँ पर यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि इतिहासज्ञों ने टैवर्नियर के परीक्षण पर जो अनुपयुक्त बल दिया है वह न्यायसंगत नहीं है। इस सन्दर्भ में हम इतिहासज्ञों को साक्ष्य संविधान के सूक्ष्म प्रावधानों से सचेत करना चाहते हैं। एक स्पष्ट गलती इतिहास के अनुसन्धाताओं की यह रही है कि तर्क के नियमों और साक्ष्य के न्यायिक विकास से वे या तो नितान्त अनभिज्ञ रहे या फिर उन्होंने उनका पूर्ण निरादर कर दिया। साक्ष्य का संविधान स्वयं सुदृढ़ तर्क पर आधारित है।

यदि कोई व्यक्ति टैवर्नियर के साक्ष्य के आधार पर किसी न्यायालय में यह घोषित करने जाय कि ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ ने किया था, तो आवेदक और उसका आवेदन दोनों न्यायालय से बाहर फेंक दिए जाएँगे।

न्यायालय के लिए यह पूछना उपयुक्त ही होगा कि उस समय की भारत सरकार का, जिसका प्रतिनिधित्व शाहजहाँ कर रहा था, के पास प्रमाण के रूप में कागज का कोई एक ऐसा टुकड़ा भी नहीं, (जैसे कि भवन का नक्शा, व्यय का विवरण अथवा कोई अभिलेख) जो ताजमहल के विषय में उसके अधिकार की पुष्टि करे, इसलिए टैवर्नियर जैसे विदेशी फ्रांसीसी व्यक्ति, जो घटनावश शाहजहाँ के शासनकाल में भारत-भ्रमण के लिए आ गया था, उसके द्वारा अस्पष्ट उल्लेखों के आधार पर ताज के विषय में कुछ अधिकार जताना आवेदक का अधिकार नहीं है। इसलिए, टैवर्नियर के जिस प्रमाण को इतिहासज्ञों ने उच्च स्तर का साक्ष्य माना है, न्यायालय उसको निम्न स्तर का साक्ष्य स्वीकार करेगा। इतिहासज्ञों ने स्वयं के अधिकारी अनुसन्धाता होने का जो तूफान खड़ा किया है उसका यह साधारण-सा स्पष्टीकरण है।

तदपि हम सिद्ध करने का यत्न करेंगे कि स्वयं टैवर्नियर ने अपने लेखों में शाहजहाँ के कथानकों के बुदबुदों को किस प्रभावी रूप से उखेड़ा है। यह स्वाभाविक

है कि सभी अस्तव्यस्त विवरण अनिवार्यरूपेण सत्य से सम्बन्धित किए जाएँ।

यह है वह जो टैवर्नियर ने लिखा है[१] :

"आगरा के सभी मकबरों में, जिन्हें देखने के लिए दर्शक आते हैं, शाहजहाँ की पत्नी का मकबरा सर्वाधिक सुन्दर है। उसने इसे जानबूझकर तासी मकान, जहाँ कि सभी विदेशी आते हैं, उसके निकट बनवाया, जिससे कि सारा संसार इसे देखे और इसकी प्रशंसा करे। तासी मकान छः बड़े-बड़े आँगनोंवाला वृहदाकर बाजार है। सभी आँगन ड्योढ़ियों से घिरे हैं जिनके अन्दर व्यापारियों के उपयोग के लिए कक्ष बने हैं और वहाँ प्रचुर मात्रा में रुई का व्यापार होता है।...मैंने स्वयं इस वृहद् निर्माण-कार्य को जिसे २२ वर्षों में २० सहस्र श्रमिकों ने निरन्तर कार्य करके पूर्ण किया, आरम्भ और समाप्त होते देखा है। किसी व्यक्ति को इसकी वास्तविकता जानने के लिए कि इस पर अपार धन व्यय हुआ है, इतना पर्याप्त है। ऐसा कहा जाता है कि मात्र मचान बाँधने का खर्चा सारे खर्च से अधिक था, क्योंकि लकड़ी के अभाव में सभी मचानों के साथ ही मेहराबों के अवलम्ब भी ईंटों के बनवाने पड़े। इस कार्य में अत्यधिक श्रम और व्यय करना पड़ा।....शाहजहाँ ने अपने लिए भी नदी के दूसरी ओर एक मकबरा बनवाना आरम्भ किया, किन्तु उस लड़ाई के कारण जो उसके अपने ही लड़कों के साथ हुई, उसी योजना में बाधा उपस्थित हो गई।"

हमें उपरिलिखित उद्धरण का बड़ी ही समालोचनात्मक दृष्टि से परीक्षण करना चाहिए। इसका परीक्षण करते समय हमें यह ध्यान में रखना होगा कि पूर्व अध्याय में उद्धृत महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश में कहा गया है कि टैवर्नियर के किसी प्रकार के विद्वान् न होने के कारण उसका ध्यान केवल सम्पदा एवं वाणिज्य की ओर ही आकृष्ट हुआ था।

जैसा कि पूर्ववर्ती अध्याय में उल्लेख किया गया है कि मुमताज की मृत्यु १६२९ अथवा १६३२ में होने से उसका शव पहले बुरहानपुर के एक खुले उद्यान में दफनाया गया। लगभग छः मास बाद (जैसा वे कहते हैं) उसे आगरा ले जाया गया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि १६३२ के अन्त से पूर्व मुमताज़ का शव आगरा पहुँच

१. ट्रैवल्स इन इंडिया, भाग १, पृ. १०९-१११, लेखक जीन बैपटिस्ट टैवर्नियर, औबोन का ताल्लुकेदार, १९७६ के फ्रैंच संस्करण से लेखक के जीवन-वृत्त, नोट्स, परिशिष्ट इत्यादि सहित डॉ. बी. बाल, एल. एल. डी., एफ. आर. एस., एम. जी. एस. द्वारा अनुवादित तथा मैकमिलन एण्ड कं. लन्दन द्वारा १८८९ में दो भागों में प्रकाशित।

गया था। अब यदि हम टैवर्नियर के इस कथन पर विश्वास करें कि उसने 'निर्माण-कार्य आरम्भ होते देखा था' (१६४१ में उसके भारत आने के बाद) तो निश्चय ही मुमताज का शव लगभग एक दशक तक धूप तथा वर्षा आदि में खुला पड़ा रहा होगा। यहाँ पर हमें एक अन्य कठिनाई का भी सामना करना पड़ रहा है कि टैवर्नियर के विवरण और मुसलमानी विवरणों में पर्याप्त विरोधाभास है। मुसलमानी वृत्तान्त के अनुसार जल्दी-से-जल्दी ताजमहल का निर्माण १६४३ में पूर्ण हुआ।

हम पाठकों को बतलाना चाहते हैं कि इस पुस्तक में हम ताजमहल से सम्बन्धित कोई भी विवरण अथवा सूचना, चाहे वह कल्पित हो अथवा विश्वसनीय, उसकी उपेक्षा नहीं करेंगे। अपने पूर्ववर्ती इतिहासकारों की भाँति हम अनेक परस्पर विरोधी विवरणों को भी यों ही नहीं छोड़ देंगे। वास्तव में उन कथानकों का यह दिखाने के लिए हम स्वागत करेंगे कि झूठे और कल्पित विवरणों की तर्कसंगत व्याख्या तथा सत्य की सहायता से उनमें किस प्रकार सन्धि स्थापित की जा सकती है।

मुस्लिम वृत्तान्त यह मानने पर सही हो सकते थे कि मुमताज का शव उसकी मृत्यु के कुछ ही मास बाद आगरा लाया गया था। उसे तभी लाया जा सकता था जब यदि कोई मकबरा तैयार हो और उपलब्ध हो। यदि शाहजहाँ को नए मकबरे की नींव ही खुदवानी पड़ी होती तो कब्र में शान्ति से पड़े हुए शव को नहीं लाया जाता। यदि उसको नया मकबरा ही बनवाना होता तो उसमें दफनाने के लिए मुमताज का शव १२ या १३ वर्ष बाद ही आगरा लाया जाता जैसाकि कुछ लोगों द्वारा यह कहा गया कि ताजमहल को तैयार होने में इतना समय लगा था।

अधिकृत हिन्दू प्रासाद के रूप में मकबरा पहले ही तैयार था, यह हम शाहजहाँ के अपने दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद को उद्धृत करके पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं।

छः मास की अवधि जो मुमताज़ के शव को बुरहानपुर से आगरा लाने में बीती उसके विषय में यह कहा जा सकता है कि वह समय राजप्रासाद को उसके वास्तविक वैधानिक स्वामी जयसिंह से खाली करवाने तथा मुमताज को दफनाने के लिए उसके गर्भगृह में कब्र खोदने में लगा।

आगरा पहुँचने पर, जैसा कि शाहजहाँ का दरबारी इतिहास-लेखक हमें बताता है, मुमताज़ को मानसिंह के ऊँचे गुम्बदवाले प्रासाद में दफनाया गया, जो उस समय उसके पौत्र जयसिंह के अधिकार में था। इस विवरण के अनुसार शव के आगरा

पहुँचने और ऊँचे गुम्बदवाले हिन्दू भवन में उसको दफनाने में कुछ भी समय नहीं खोया गया अतः इससे स्पष्ट है कि ताजमहल के निर्माण से सम्बन्धित सभी मुस्लिम-वृत्तान्त कल्पित हैं। हम उनका विस्तारपूर्वक विश्लेषण करते हुए इसको सिद्ध करेंगे।

मुमताज़ के कब्र से निकाले हुए शव को आगरे के हिन्दू प्रासाद में दफनाकर शाहजहाँ को आगामी परिवर्तन शीघ्रता से करवाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। कारीगर, जिनके नाम मुस्लिम-वृत्तान्तों में उपलब्ध हैं, वे उनके नाम हैं जिन्होंने भूगर्भ में कब्र की खुदाई की, उसे बनाया और ताजमहल के मेहराबों तथा दीवारों पर कुरान की आयतें खोदीं। इस सीमा तक तो शिल्पकारों और कारीगरों के जो नाम विभिन्न विवरणों में उपलब्ध होते हैं, वे सत्य हो सकते हैं।

जहाँ तक टैवर्नियर का यह कथन कि उसने "वृहद् कार्य का आरम्भ और समापन देखा था" इसका प्रश्न है, उसने स्पष्टतया संकेत किया है कि वह कार्य विशाल प्रासाद के भीतर और बाहर मचान बँधवाने, दीवारों पर कुरान की आयतें अंकित करने और फिर उस मचान को तुड़वाने के अतिरिक्त अधिक कुछ नहीं था। यह बात उसके इस स्पष्ट कथन से साफ हो जाती है कि "मचान बाँधने पर हुआ व्यय ही सारे कार्य के व्यय से अधिक था।" जैसा कि आज हम इसे देखते हैं यदि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया था तो टैवर्नियर जैसे किसी भी यात्री का यह कहना निरर्थक हो जाता है कि समूचे कार्य की अपेक्षा मचान बाँधने का व्यय अधिक हुआ। वह भवन जिसके निर्माण के लिए मचान बनवाई जाए उसके सम्पूर्ण व्यय से मचान बाँधने का व्यय वास्तव में बहुत कम हुआ करता है। विपरीत इसके टैवर्नियर कहता है कि मचान बाँधना महँगा पड़ा। यह एक ठोस प्रमाण है कि यह 'सम्पूर्ण कार्य' कुरान की आयतें खुदवाने, दफन के लिए कब्र खुदवाने और एक गुम्बद बनवाने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं था। इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी असंगतियों तथा कपिल्पत गल्पों की व्याख्या सत्य की सहायता लेकर किस प्रकार की जा सकती है।

जहाँ तक मुस्लिम विवरण के कल्पित होने का प्रश्न है हमें सर एच. एम. इलियट[१], डॉ. टेसीटोरी और डॉ. एस. एम. सेन[२] जैसे लब्धप्रतिष्ठ इतिहासकारों ने बताया है कि उन पर कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता।

---

१. इलियट एण्ड डौसन का इतिहास, भाग ८। प्राक्कथन में सर एच. एम. इलियट लिखते हैं कि भारत में मुस्लिम काल का इतिहास ढीठ और रोचक धोखा है।

२. इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के १९३८ के इलाहाबाद अधिवेशन की कार्यवाही में डॉ. एस. एम. सेन

यदि शाहजहाँ ने "जानबूझकर तासी मकान, जहाँ सभी विदेशी आते हैं, के निकट मकबरा बनवाया जिससे कि सम्पूर्ण विश्व इसे देखे और इसकी प्रशंसा करे", तो प्रश्न यह उठता है कि क्या शोकाकुल और दुःख से पीड़ित शाहजहाँ को यदि उसने वास्तव में मकबरा बनवाया था तो, अपनी बीवी के लिए एक निर्जन और शान्त स्थान की खोज होती अथवा वह किसी भ्रमणशील निम्नस्तरीय विनोदक की भाँति व्यवहार करता? क्या वह अपनी पत्नी की मृत्यु को सार्वजनिक मनोरंजन का उद्देश्य बनाना चाहता था?

यह भी कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपहृत हिन्दू प्रासाद की निरर्थक पच्चीकारी में १०, १२, १३, १७ या २२ वर्ष का समय लग गया हो जैसा कि विभिन्न विवरणों में बताया गया है, क्योंकि अपव्ययी मुगलों की अपेक्षा शाहजहाँ महाकंजूस, घमण्डी तथा हठीला बादशाह था। इसके अतिरिक्त कोई भी मुगल बादशाह अपने हरम की पाँच हजार बेगमों और रखेलों में से प्रत्येक की मृत्यु पर इस प्रकार इतनी अधिक राशि व्यय नहीं कर सकता था।

इसके अतिरिक्त यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि एक बार जब मुमताज़ का शव हथियाये गए विशाल हिन्दू प्रासाद के गुम्बद के नीचे दफना दिया गया तो फिर इसका क्या महत्त्व कि पच्चीकारी में १९ से २२ वर्ष तक लग गए? असंख्य कथनों में उद्धृत समय की अनिश्चितता स्वयं में एक ऐसा साक्ष्य है। क्योंकि हम अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि जब बलात् ग्रहण किए गए भवन को अपनी इच्छानुसार बनवाया जाता है तो ऐसे परिवर्तन बड़े संकोच से किन्तु निश्चित अवधि में, नवागन्तुक के मिजाज का ध्यान रखते हुए, किए जाते हैं। इस प्रकार हम कहते हैं कि विभिन्न इतिहासकारों ने १० से २२ वर्ष तक के समय का जो उल्लेख किया है उसे सत्य समझना चाहिए। इन कथनों पर सन्तोष कर लेने पर हम कह सकते हैं कि मुमताज़ का मकबरा तथा मेहराब बनाने में १० वर्ष लगे होंगे। (क्योंकि किसी इतिहासकार ने यही न्यूनातिन्यून समय लिखा है)। कुरान की आयतें खुदवाने में २२ वर्ष लगे हैं। मुस्लिम अक्षरों द्वारा हिन्दू भवनों को कला के नाम पर विकृत करना

ने अपने अध्यक्षीय भाषण में इटालियन विद्वान् डॉ. टेसीटोरी के इस उद्धरण से अपनी सहमति व्यक्त की कि मुस्लिम इतिहास-लेखक बहुत ही अविश्वसनीय हैं और बिना संगति के उनके शब्दों पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए।

केवल शाहजहाँ की ही प्रवृत्ति नहीं थी बल्कि यह मुसलमानों की पुरानी प्रवृत्ति रही है। अजमेर में 'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा' जो विग्रहराज विशालदेव के प्रासाद का एक भाग था, उस पर भी मुसलमानी लिखावट अंकित है। तथाकथित कुतुबमीनार जो प्राचीन हिन्दू वेधशाला का दिशा-स्तम्भ है, उसको भी इस्लामी नक्काशी का पुंज बताया जाता है। इसी प्रकार तथाकथित हुमायूँ, सफदरजंग और अकबर के मकबरे के विषय में भी कहा जाता है, यद्यपि ये सब राजपूती प्रासाद थे। इसमें आश्चर्य नहीं कि शाहजहाँ ने अपने पूर्वजों की इस जीर्ण परम्परा को आगे बढ़ाया हो तथा शासकीय अत्याचार की पराकाष्ठा के साथ जयसिंह के वैभवपूर्ण पैतृक राजप्रासाद, जो कि शाहजहाँ की ननिहाल था, उस पर डाका डाल दिया हो। भव्य हिन्दू-प्रासाद को मायावी मुस्लिम मकबरे में परिवर्तित करने के दो उद्देश्य थे। पहला तो यह है कि भव्य हिन्दू राजभवन को साधनहीन बनाकर उसका मानमर्दन करना तथा दूसरा राजभवन की अपार सम्पत्ति, मौक्तिक झूमर, स्वर्णयुक्त सिंहासन तथा रेलिंग, रजत-द्वार तथा विश्वविख्यात मयूर-सिंहासन। (जो इस प्रासाद में रखा हुआ था) आदि सहित सम्पूर्ण प्रासाद को अपनाकर अपना कोष बढ़ाना था।

हम पाठकों का ध्यान टैवर्नियर के इन शब्दों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं, "शाहजहाँ ने तासी मकान (जिसमें छः बड़े-बड़े दालान थे) के निकट जान-बूझकर मकबरा बनवाया, जहाँ सभी विदेशी आते हैं, जिससे कि समस्त विश्व इसे देखे और प्रशंसा करे।" तासी मकान शब्द, ताज-ए-मकान अर्थात् राजकीय प्रासाद है जो ताजमहल का समानार्थक है। टैवर्नियर के अनुसार इसका अभिप्राय यह हुआ कि मुमताज़ को दफनाने से पूर्व भी वह हिन्दू प्रासाद, तासी मकान अथवा ताजमहल के नाम से प्रख्यात था। वह हमको यह भी बताता है कि विदेशी यात्री उस भव्य प्रासाद को देखने को एकत्रित हुआ करते थे और वहाँ मुमताज़ को दफनाने का शाहजहाँ का उद्देश्य यह था कि विदेशी यात्री उसके उस स्वप्नलोकीय प्रासाद के भव्य शिल्प की प्रशंसा करें।

शाहजहाँ को प्रायः भारतीय इतिहासों में अत्यधिक धनी मुगल बताकर भ्रामक रूप से चित्रित किया जाता है। उसका यह रूप इस वृथा विश्वास पर बना कि उसने अनेक मूल्यवान भवनों का निर्माण कराया जबकि वास्तव में उसने एक भी ऐसा भवन नहीं बनवाया। विपरीत इसके कि शाहजहाँ अपार सम्पत्ति का स्वामी था, उसके पास कदाचित् ही सम्पत्ति रही हो। क्योंकि उसके अपने लगभग ३० वर्ष के शासनकाल

को ४८ सैनिक आन्दोलनों ने मृतप्राय कर दिया था। शाहजहाँ की उक्त दरिद्रता की टैवर्नियर के उपरि उल्लिखित इस कथन से पुष्ट हो जाती है कि 'लकड़ी के अभाव में' मेहराबों के आश्रय—आधार सहित सम्पूर्ण मचान ईंटों की बँधवानी पड़ी। पाठक भलीभाँति विचार कर सकते हैं कि जो बादशाह भारत जैसे देश में, जो विशाल, विस्तृत एवं घने जंगलों से भरपूर हो, मचान बँधवाने के लिए आवश्यक लकड़ी की व्यवस्था नहीं कर सकता, वह क्या कभी ताजमहल जैसे भव्य एवं विशाल भवन-निर्माण के आदेश की आशा कर सकता है अथवा स्वप्न भी देख सकता है ?

टैवर्नियर का यह कथन कि मेहराबों को आश्रय देने के लिए भी शाहजहाँ को ईंटों का प्रयोग करना पड़ा था, विशेष प्रयोजनयुक्त है। इसका अभिप्राय यह होता है कि मेहराबें पहले ही विद्यमान थीं। यह ध्यान देने योग्य है कि ताजमहल पर कुरान की आयतों की खुदाई मेहराबों के चारों ओर हुई। जब प्रस्तर की मूल शिलाएँ शाहजहाँ द्वारा उखड़वाई गईं और नक्काशी के बाद पुनः प्रस्थापित की गईं अथवा मुस्लिम अक्षरोंवाली दूसरी शिलाएँ रखी गईं तो मेहराब इस प्रकार उखड़ने से इतनी कमजोर हो गई थीं कि शिलाओं में ईंटों का सहारा देना पड़ा। इस प्रकार टैवर्नियर के निरूपण का यह भाग भी यही सिद्ध करता है कि ताजमहल मेहराबदार प्रवेश-द्वारों सहित मुमताज़ की मृत्यु के पूर्व ही विद्यमान था।

टैवर्नियर जब कहता है कि तासी मकान (अर्थात् ताज-ए-मकान ताजमहल) छः बड़े दालानोंवाला बड़ा बाजार है तो वह स्पष्ट रूप से चारों ओर के लाल पत्थर के विस्तृत दालान का संगमरमर के भवन को छोड़कर, उल्लेख करता है, क्योंकि उसे तो मुमताज़ को दफनाने के लिए पहले ही हथिया लिया गया था। वास्तव में टैवर्नियर का विवरण भ्रामक लगता है, क्योंकि जबकि समस्त संसार संगमरमर के भवन को 'ताजमहल' मानता है, टैवर्नियर लाल पत्थर के भवन को 'ताज-ए-मकान' कहता है, तथ्य यह है कि संगमरमर का भवन और लाल पत्थरों के भवनों से घिरा 'ताज-ए-मकान' अर्थात् 'राज्य-सम्पत्ति' दोनों ही जयसिंह की सम्पत्ति थे। यह वह समस्त सम्पत्ति—सभी उपवनों सहित राजकीय भव्य प्रासाद—थी जिसे शाहजहाँ ने हथिया लिया था। परिसर के मध्यवर्ती संगमरमर के भवन के बिना लाल पत्थर के दालानों की कोई मान्य स्थिति न होती, क्योंकि वे तो राजप्रासाद से जुड़े हुए भाग मात्र थे।

जो भी हो, इस अध्याय को पूर्ण करने से पूर्व हम अपने पाठकों को पाश्चात्य

विद्वानों और दर्शकों के परीक्षण की उपादेयता से सावधान कर देना चाहते हैं। भारत में ब्रिटिश शासनकाल में यह प्रवृत्ति प्रबल थी कि पाश्चात्य दर्शकों के लेखों आदि को सँजोया जाय। अभी तक भी जबकि हम स्वतन्त्र हो गए हैं, वह प्रवत्ति प्रचलित है। किन्तु कीन, जो स्वयं अंग्रेज विद्वान् था, उसने कुछ महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले हैं जो कि भ्रान्त मस्तिष्क का उत्तम उदाहरण है।

अपनी पुस्तक के पृष्ठ १५४ की टिप्पणी (फुटनोट) में कीन लिखता है—"टैवर्नियर ने अपनी प्रथम समुद्र-यात्रा सन् १६३१ में आरम्भ की और कौन्सटैन्टीनोपल से फारस में इस्फहान तक यात्रा कर लेने के बाद १६३३ में वह फ्रांस लौटा। इसलिए उसने ताजमहल का निर्माण होते नहीं देखा, किन्तु हो सकता है उसने इस विषय में इस्फहान में सुना हो। उसकी चौथी समुद्र-यात्रा १६५१ से १६५५ तक भारत की थी, और यह तब था जब उसने ताज को पूर्ण होते देखा।"

प्रथमतः हमें कीन को बताने दीजिए कि टैवर्नियर का कथन किस प्रकार उचित है। कीन यह नहीं जानता कि ताजमहल हिन्दू भवन था, शाहजहाँ को उसमें यह करने के अतिरिक्त कुछ नहीं था कि इसके भूगर्भ के मध्यवर्ती कक्ष में गड्ढा खोदकर उसमें मुमताज़ को दफनाए। अतः टैवर्नियर द्वारा भवन का निर्माण आरम्भ होते देखने के लिए १६३०-३१ में भारत में होने की आवश्यकता नहीं थी। टैवर्नियर के इस कथन का कि 'उसने भवन का निर्माणारम्भ तथा समापन-कार्य देखा' अभिप्राय, जैसाकि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं, कि उसने ताजमहल की विभिन्न ऊँचाइयों पर शाहजहाँ के श्रमिकों को कुरान की आयतें खोदने के लिए मचान बाँधते देखा, यह कार्य किसी भी समय आरम्भ और पूर्ण हो सकता था, और इसका आरम्भ और समापन उस समय हुआ जब टैवर्नियर भारत में था तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अतः टैवर्नियर का कथन उचित है।

परन्तु कीन की टिप्पणी से जो एक रोचक तथ्य उभरता है वह यह कि कोई भी निश्चित रूप से यह नहीं जान सकता कि टैवर्नियर कब भारत आया और कितने समय के लिए आया? जबकि हमने महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोष का उद्धरण देते हुए बताया है कि टैवर्नियर १६४१ से १६६८ तक भारत में रहा। तब कीन उल्लेख करता है कि टैवर्नियर केवल १६५१-१६५५ में कभी भारत में रहा होगा। दूसरी ओर एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में उल्लेख है कि टैवर्नियर कई बार भारत में क्रमशः रहा है। इससे यह संकेत मिलता है कि टैवर्नियर कुछ भी प्रामाणिक नहीं है। जो

कुछ उसने उल्लेख किया है वह सत्य अथवा पूर्ण सत्य नहीं है। यदि वह भारत में चार वर्ष से भी कम रहा (१६५१-१६५५ के मध्य, इसमें समुद्र-यात्रा में आवागमन के मास भी सम्मिलित हैं) तो उसका यह कथन सत्य है कि "१० हजार श्रमिकों ने २२ वर्ष की अवधि में निरन्तर कार्य किया और उसकी उपस्थिति में कार्यारम्भ और समापन हुआ?" यह कथन इंगित करता है कि टैवर्नियर ने भी ताजमहल के सम्बन्ध में इतिहास-जगत् को धोखा दिया है। मुस्लिम धोखे को जिसे उसने केवल सुना ही था किन्तु उसने तो उसे 'नूतन समाचार' के रूप में भावी पीढ़ी के लिए लिख दिया।

टैवर्नियर के लेख में चार बातें विचारणीय हैं : क्रमशः (१) शाहजहाँ ने तासी मकान (अर्थात् ताजमहल) के निकट मुमताज़ को सप्रयोजन दफनाया था। (२) मचान बँधवाने के लिए उसे लकड़ी बिल्कुल नहीं मिली। (३) समस्त कार्य की अपेक्षा मचान बाँधने में अधिक लागत आई। (४) बीस सहस्र श्रमिकों ने निरन्तर बाईस वर्ष तक कार्य किया।

उपरिलिखित कथनों में पहले तीन बातों से स्पष्ट हो जाता है कि मुमताज़ को दफनाने के लिए शाहजहाँ ने पूर्वनिर्मित ताजमहल हथियाया था। चौथी बात जिस पर पारम्परिक इतिहास-लेखक बल देते हैं इसलिए भी महत्त्वहीन है। जब हम विचार करते हैं कि टैवर्नियर जो भारत में केवल चार वर्ष (१६५१-१६५५) रहा यह नहीं कह सकता कि जो कार्य उसके सम्मुख प्रारम्भ होकर सम्पन्न हुआ उसमें २२ वर्ष लगे।

किन्तु टैवर्नियर के भद्दा लगनेवाले कथन का जब उचित रूप से विश्लेषण किया जाता है तो उससे कुछ बुद्धिमत्ता झलकने लगती है। जब वह १६५१ में भारत आया तो मुमताज़ को दफन किए बीस वर्ष बीत गए थे। ताज के चारों ओर मचान बाँधने और दीवारों पर कुरान की आयतें खुदवाने का कार्य तब आरम्भ हुआ होगा और उस समय पूर्ण हुआ होगा जब टैवर्नियर भारत में था। यदि इस कार्य में दो वर्ष लगे तब टैवर्नियर का कथन कि उस समय तक मुमताज़ के मकबरे को २२ वर्ष हो गए थे और कार्य (मचान बाँधने और आयत खुदवाने) का उसकी उपस्थिति में आरम्भ और अन्त हुआ था, सत्य सिद्ध होता है। इस प्रकार टैवर्नियर की वह चौथी बात, जिससे ताज के स्वामित्व के विषय में शाहजहाँ का संदेह होता था, हमारी इस बात को सिद्ध कर देती है कि शाहजहाँ ने केवल ताजमहल पर अनधिकृत अधिकार किया था।

टैवर्नियर का यह लिखना कि लकड़ी के अभाव में शाहजहाँ ने ताज के चारों

ओर ईंटों का मचान बँधवाया और यह कार्य २२ वर्ष में सम्पन्न हुआ, इस बात की ओर इंगित है कि सारा संगमरमर का ताजमहल जो आज हमें दिखाई देता है, ईंटों के मचान के पीछे २२ वर्ष तक जनता की नजरों से ओझल रहा। यह कहा जा सकता है कि ताजमहल पूरी एक पीढ़ी तक संसार की आँखों से छिपा ही रहा। यह स्वाभाविक ही है कि २२ वर्ष बाद जब ईंटों के मचान को ढाया गया और ताजमहल एक बार पुनः दिखाई देने लगा तो नई पीढ़ी ने यह विश्वास करना आरम्भ कर दिया कि यह शाहजहाँ ही था कि जिसने उसे बनवाया।

यह ईंटों से बने मचान के ढकने से कारण ही है कि पीटर मुण्डी और टैवर्नियर जैसे भ्रमित पाश्चात्य दर्शकों ने असत्य, भ्रामक तथा अस्पष्ट लेख लिख डाले कि मुमताज़ के लिए मकबरा बनवाने और बहुत-से लोगों, मुख्यतया सुलेखकों को उस कार्य में लगवाने और बाहर ऊबड़-खाबड़ जमीन को समतल करने के लिए श्रमिकों को लगवाने में शाहजहाँ व्यस्त था। अपराध-शोधक के श्रम की ही भाँति इतिहास के शोधक का श्रम भी उलझी-पुलझी बातों के ढेर में से सत्य को निकालने के समान ही है। सौभाग्य से ताजमहल के सम्बन्ध में अनेक समकालीन अन्वेषक हमारे लिए अनेक स्रोत छोड़ गए हैं जो हमें निर्भ्रम यह बताने में सहायक होते हैं कि शाहजहाँ ने संगमरमर के ताजमहल को अनधिकृत रूप से ग्रहण कर मकबरे के रूप में उसका दुरुपयोग किया।

औरंगजेब का पत्र तथा सद्यःसम्पन्न उत्खनन

बादशाहनामे में उल्लिखित तथ्य कि 'ताजमहल हथियाया गया हिन्दू भवन है' तथा टैवर्नियर का यह कहना कि 'शाहजहाँ ने मुमताज़ को दफनाने के लिए ताजमहल को सप्रयोजन चुना' इसके अतिरिक्त हमारे पास दो अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं जो इनसे संगत हैं : एक है शाहजादा औरंगजेब का अपने पिता शाहजहाँ को लिखा गया पत्र, दूसरा, ताजमहल की सीमा में सद्यःसम्पन्न खोज।

विश्वविद्यालय, शिक्षाविद् तथा जनसाधरण जो बड़े जोर-शोर से यह घोषणा करते फिर रहे हैं कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया, वे इस तथ्य से अनभिज्ञ हैं कि वे सब इस कहानी के अनेक प्रकरणों के सम्बन्ध में परस्पर विभिन्न विचारवाले हैं। उदाहरणार्थ, इस कथानक की नायिका मुमताज़ की मृत्यु अनिश्चिततया कभी १६२९ तथा १६३२ के मध्य हुई होगी। इसी प्रकार शाहजहाँ द्वारा ताजमहल के निर्माण (?) में १० से २२ वर्ष लगे होंगे, यह तथ्य भी अनेक भागों में विभक्त है। भारत में अंग्रेजों के शासनकाल में यह प्रवृत्ति अधिक प्रचलित रही है कि जहाँ रिकार्ड में विभिन्नता है, वहाँ पाश्चात्य लेखक अधिक विश्वसनीय हैं। इसी प्रकार भारत में अंग्रेजी शासन ने टैवर्नियर के ऊल-जलूल गल्प कि मुमताज़ के दफ़नाने में २२ वर्ष लगे, मुस्लिम विवरणों पर वरीयता देकर इसे सर्वसम्मत स्वीकार कर लिया। उनके दिमाग में यह बात आई ही नहीं कि टैवर्नियर और मुस्लिम-वृत्तान्त परस्पर नितान्त विरोधी हैं और न उन्होंने कोई दरबारी साक्ष्य प्रस्तुत किया है, इसलिए वे निश्चित ही असत्य हैं। इसलिए अंग्रेजों ने ताजमहल के सम्बन्ध में योरोपियन और मुसलमानों द्वारा लिखित अनर्गल, अतर्क्य तथा कपोल-कल्पित वृत्तान्त को स्वीकार कर लिया। ऐसी ही एक दोगली रचना, साधारण दर्शक को ठगने के लिए यह घोषित करते हुए कि ताजमहल का निर्माण २२ वर्ष में पूर्ण हुआ, ताजमहल के उद्यान के द्वार पर

सज्जित संगमरमर पर खुदवाई गई है। भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग, जिसने तथाकथित इतिहासकारों के परामर्श से यह संगमरमर पर खुदवाया है, सारे संसार को विश्व-विख्यात स्मारक ताजमहल के स्वामित्व के सम्बन्ध में भ्रमित कर रहा है, जो बहुत ही खेद का विषय है।

यदि मुमताज़ १६३० के लगभग दिवंगत हुई हो, जैसाकि लगभग विश्वास किया जाता है, तब २२ वर्ष की अवधि, जब ताजमहल अपनी भव्यता एवं दिव्यता के साथ पूर्ण होता है वह वर्ष सन् १६५२ बैठता है। किन्तु पुरातत्त्व विभाग और पारम्परिक इतिहासकारों के दुर्भाग्य से हमारे पास शाहजादा औरंगजेब का लगभग १६५२ का एक पत्र है जो उक्त तथ्य को झुठलाता है। उस पत्र को कम-से-कम समकालीन दो फारसी इतिहासकारों ने अदाह-ए-आलमगीरी (राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली में सुरक्षित पाण्डुलिपि की पृष्ठ सं. ८२) और यादगार-ए-आलमगीरी में उद्धृत किया है। उस पत्र में औरंगजेब बादशाह शाहजहाँ को सूचित करता है कि जब १६५२ में वह सूबेदारी ग्रहण कर दिल्ली से दक्षिण की ओर जा रहा था तो मार्ग में आगरा में अपनी माँ मुमताज़ की दफ्नगाह में गया था।

अपने पिता बादशाह शाहजहाँ के प्रति पूर्ण आदर और सम्मान व्यक्त करते हुए औरंगजेब अपने पत्र में लिखता है—"मैं गुरुवार मुहर्रम मुकराम की तीसरी तिथि को (अकबराबाद अर्थात् आगरा) पहुँचा। पहुँचने पर मैं बादशाहजादा जहाँबानी (अर्थात् बड़े राजकुमार दारा को) जहाँनारा के बाग में मिला, उस भव्य भवन में जिसमें बसन्त की बहार छाई हुई थी, मैंने उनके सम्पर्क में आनन्द उठाया और सब की कुशल पूछी। मैं महावत खाँ के बाग में ठहरा।

"अगले दिन शुक्रवार होने से, मैं पवित्र कब्र पर जिसे बादशाह सलामत की उपस्थिति में बनाया गया था, श्रद्धांजलि अपर्ति करने के लिए गया। वे (अर्थात् मकबरा, कब्र आदि) ठीक-ठाक हैं किन्तु कब्र के ऊपर के गुम्बद का उत्तरी भाग वर्षा ऋतु में दो-तीन स्थान पर टपकता है, इसी प्रकार दूसरी मंजिल पर बने अनेक राजकीय कक्ष, चार छोटे गुम्बद और चार उत्तरी भाग तथा गुप्त कक्ष एवं सतमंजिली छतें तथा बड़े गुम्बद को इस बरसात में अनेक स्थानों पर पानी लग गया है। उन सबकी मैंने अस्थायी तौर पर मरम्मत करवा दी है।

"किन्तु मैं सोचता हूँ कि अनेक मकबरों, मस्जिदों, सामुदायिक कमरों आदि की आनेवाली वर्षा ऋतु में क्या दशा होगी। उन सबकी विस्तार से मरम्मत की

आवश्यकता है, मेरा विचार है कि दूसरी मंजिल की छत उखाड़कर उसे पुनः गारे-चूने, ईंट और पत्थरों से बनाने की आवश्यकता है। सभी छोटे-बड़े गुम्बदों की मरम्मत हो जाने से यह भव्य भवन गलने से बचाया जा सकता है। ऐसी आशा की जाती है कि बादशाह सलामत इस विषय पर विचारकर आवश्यक कार्यवाही का निर्देश करेंगे।

"महताब बाग में बाढ़ का पानी भरा होने के कारण वह उजाड़ लगता है। उसकी दर्शनीय सुन्दरता तभी वापस आएगी जब बाढ़ का पानी सूख या बह जाएगा।

"भवन परिसर के पृष्ठभाग का सुरक्षित रहना बड़ा आश्चर्यकारक है। पिछली दीवार से नाले के दूर रहने से उसका बचाव हो गया है।

"शनिवार को भी उस स्थान पर गया और फिर मैं राजकुमार (दारा) के पास भी गया, बाद में वे भी मेरे पास आए। उसके बाद मैंने सबसे विदाई ली और रविवार को अपनी यात्रा (दक्षिण की सूबेदारी लेने के लिए) आरम्भ की। आज आठवीं तिथि को मैं धौलपुर के आस-पास हूँ।...."

इस प्रकार औरंगजेब के लेख से यह स्पष्ट है कि १६५२ में ही ताजमहल ऐसा प्राचीन हो गया था कि उसकी अच्छी मरम्मत करने की आवश्यकता पड़ गई थी। अतः जो कुछ १६५२ में हुआ वह किसी नये भवन की निर्माण की सम्पन्नता नहीं अपितु जीर्ण भवन का पुनरुद्धार था। यदि ताजमहल वह भवन होता जिसका निर्माण कार्य १६५२ में पूर्ण हुआ था तो वह इतना उपेक्षित नहीं होता कि औरंगजेब जैसा एकाकी दर्शक आकर उसकी यह दशा देखकर उसकी मरम्मत के आदेश देता। वे कमियाँ उन सहस्रों श्रमिकों और सैकड़ों दरबारी निरीक्षकों की नजरों में आतीं जो ताजमहल के निर्माण कार्य में लगे हुए माने जाते हैं। और ऐसी गम्भीर खामियाँ उसके पूर्ण किये जानेवाले वर्ष में ही यदि दिखाई देने लगतीं तो ताज को बनानेवाले 'दक्ष शिल्पियों' की जो प्रशंसा के पुल बाँधे गए हैं वे नितान्त अयुक्त हो जाते। इसमें सन्देह नहीं कि ताज का निर्माण करनेवाले दक्ष शिल्पी थे किन्तु वे शाहजहाँ के समकालीन नहीं अपितु शताब्दियों पूर्व के हिन्दू शिल्पी थे। इसी प्रकार ताज का अस्तित्व किसी मुस्लिम स्मृति भवन के रूप में नहीं अपितु हिन्दू मन्दिर प्रासाद के रूप में प्रकट हुआ था।

अन्य एक बड़ा ही उल्लेखनीय बिन्दु जो औरंगजेब के पत्र से उभरता है, वह यह कि यदि ताज का निर्माण वास्तव में १६५२ में ही पूर्ण हुआ होता तो कम-से-

कम उसका प्रमुख वास्तुकार वहीं किसी निकट के वृक्ष पर ही फाँसी पर लटका दिया गया होता क्योंकि उसने मुगल कोष के करोड़ों रुपयों का अपव्यय कराया तथा मृत महारानी की स्मृति का अपमान किया ऐसा भवन बनाकर जो अपने पूर्ण (फर्जी) होने के वर्ष ही फट गया और टपकने लगा। औरंगजेब जिसे क्रूरता और निर्दयता का दूसरा नाम माना जाता है, बादशाह शाहजहाँ को लिखे गए अपने पत्र में उन शिल्पियों पर अवश्य कहर ढाता। विपरीत हम उसको मैना की भाँति कूकते और यह संकेत करते हुए पाते हैं कि उसे आवश्यक मरम्मत कराते हुए खेद का अनुभव हो रहा था। ताज की मौलिकता के सम्बन्ध में इतिहासकारों की जो अशुद्ध धारणा है कम-से-कम औरंगजेब के इस पत्र से उन्हें शुद्ध करने में सहायता मिलनी चाहिए।

अपने पत्र में औरंगजेब ताजमहल के उद्यान को महताब उद्यान अर्थात् चन्द्रोद्यान के नाम से लिखता है, इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उद्यान जो ताजमहल अर्थात् तेज-महा-आलय के चारों ओर था, का मूल संस्कृत नाम चन्द्र-उद्यान रहा हो। हम इस निष्कर्ष पर इस आधार पर पहुँचे हैं कि अपने अनुसन्धान की अवधि में हमने पाया कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने जिस स्थान अथवा व्यक्ति पर भी अधिकार किया उसके संस्कृत नाम को उन्होंने उसके समकक्ष परशियन नाम में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार ताज को चन्द्रमा की चन्द्रिका में देखने की परम्परा स्पष्टतया शाहजहाँ से पूर्व की हिन्दू परम्परा है।

औरंगजेब के पत्र में दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब वह देखता है कि उद्यान में बाढ़ का पानी भर गया है और यमुना नदी में भरपूर बाढ़ आई हुई थी फिर भी उसका नाला जो उद्यान के पृष्ठभाग में था, अपनी सामान्य स्थिति में बह रहा था। उसे बड़ा विचित्र आश्चर्य हुआ था। हमने अपनी आँखों से स्वयं देखा है कि भरपूर वर्षा ऋतु में जब चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है यमुना फिर भी ताजमहल की दीवार से सौ फीट दूर ही बहती है।

यदि औरंगजेब के पिता शाहजहाँ ने ताजमहल की दीवार के पीछे गुप्त जलमार्ग बनवाया था तो औरंगजेब के लिए यह रहस्य की बात न होती क्योंकि दरबारी कारीगर, यदि कोई था तो, औरंगजेब को सरलता से वह रहस्य समझा सकता था। किन्तु औरंगजेब को जिस प्रकार आश्चर्य हुआ वैसा ही समस्त मुगल दरबार को भी हुआ था। वे सभी आश्चर्यचकित थे कि किस प्रकार ताज के निकट यमुना एक यंत्रचालित नाले की भाँति बह रही थी। यह रहस्य ताजमहल अर्थात् तेज-महा-

आलय मन्दिर प्रासाद के हिन्दू निर्माताओं की दूरदृष्टि और तकनीकी कुशलता का प्रमाण था, जो यह भली भाँति जानते थे कि वे बहुत बड़ी नदी के किनारे पर निर्माण-कार्य का भार ले रहे हैं। अतः उन्होंने यमुना के दोनों किनारों पर स्थान-स्थान पर इस प्रकार के कूप खुदवा दिए थे कि जिससे बाढ़ आने पर यमुना अपनी सामान्य गति से ही प्रवहमान हो। इससे भी अधिक यमुना का पानी केवल ताज के निकट ही नियन्त्रित नहीं किया गया था अपितु आगरा में ही लाल किला तथा अन्यान्य हिन्दू राजकीय भवन जो अब एतमाद-उद्दौला आदि के नाम पर मुस्लिम मकबरे बन गए हैं, होने के कारण इसे आगरा नगर के एक छोर से दूसरे छोर तक नियंत्रित कर दिया गया था।

वास्तव में समस्त भारत में हिन्दुओं में यह कथा प्रचलित थी कि दुर्ग, प्रासाद, भवन तथा मन्दिर समुद्र अथवा नदी के तट पर निर्माण किए जाएँ। कच्छ के समुद्र के किनारे प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर और वाराणसी में गंगा नदी के किनारे अनेक भव्य स्नान-स्थल तथा मंदिर एवं भवन, ये सब इसके उदाहरण हैं। हिन्दुओं की नदी अथवा समुद्र-तट पर मन्दिर आदि बनवाने की इस परम्परा के आधार पर हिन्दू निर्माता उन भवनों के रिसने तथा बाढ़ से भरने से बचाने की कला में निपुण हो गए थे। मुसलमान अत्याचार और लूट में व्यस्त रहने के साथ-साथ अधिकांशतया अशिक्षित थे और वे मूलतया रेगिस्तानी परम्परा के अनुयायी होने के कारण जलयुक्त स्थान अथवा किसी नदी के तट पर भवन बनाने के अभ्यस्त नहीं थे। वे तो हिन्दू ही थे, जो भवन-निर्माण करने से पूर्व जहाँ कहीं जल की समुचित व्यवस्था न हो वहाँ जलाशय का अवश्य निर्माण कर लिया करते थे। उदाहरणार्थ हम अजमेर (अर्थात् अन्ना सागर) और फतेहपुर सीकरी में हिन्दुओं द्वारा बनाए गए विशाल सरोवरों का उल्लेख कर सकते हैं। बाद में, अकबर के शासनकाल में, फतेहपुर सीकरी पर अधिकार करनेवाले मुसलमान यह जानते नहीं थे कि विशाल सरोवरों के बन्धों की व्यवस्था किस प्रकार की जाती है, इसलिए वे सूखते गए। सरोवर के सूख जाने के कारण ही १५ वर्ष उस फतेहपुर सीकरी में, जिसे अकबर ने हिन्दुओं से छीना था, रहने के उपरान्त उसे यह छोड़नी पड़ गई। जो पाठक इस बात पर विश्वास करते आए हैं कि वह अकबर ही था कि जिसने फतेहपुर सीकरी को बसाया था वे हमारी 'फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है' नामक पुस्तक पढ़ें।

दूसरा महत्त्वपूर्ण साक्ष्य सहसा १९७३ के आरम्भ में संगमरमर भवन के

सम्मुख स्थित उद्यान की खुदाई करने से उभर आया है। यह इस प्रकार हुआ कि फव्वारों में कुछ गड़बड़ हो गई। तब यह उचित समझा गया कि धरती के नीचे लगी मुख्य नली का परीक्षण किया जाय। जब इस नली के स्तर तक धरती खोदी गई तो पता चला कि उससे पाँच फुट नीचे कुछ गड्ढे बने हुए हैं। इसलिए उतनी गहराई तक खुदाई की गई। और वहाँ उपस्थित सब लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ वैसे ही फव्वारे बने हुए हैं, जिनके विषय में तब तक कुछ ज्ञात ही नहीं था। विशेष महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन फव्वारों को ताजमहल से जोड़ा हुआ था। इससे यह निश्चित है कि वर्तमान भवन शाहजहाँ से पूर्व भी विद्यमान था। वे छिपे हुए फव्वारे न तो शाहजहाँ ने बनवाए थे और न उसके उत्तराधिकारी अंग्रेजों ने ही। अत: वे शाहजहाँ-पूर्व के युग के थे, क्योंकि वे ताजमहल से जुड़े हुए थे, अत: यह स्वाभाविक है कि वह भवन भी शाहजहाँ के पूर्व का ही था। यह साक्ष्य भी, इसलिए हमारे उस निष्कर्ष की ही पुष्टि करता है कि शाहजहाँ ने मुमताज़ को दफनाने के लिए हिन्दू मन्दिर प्रासाद को हथिया लिया था। पुरातत्त्व विभाग के जिस अधिकारी की देख-रेख में खुदाई का यह कार्य हुआ उसका नाम श्री आर. एस. वर्मा है, जो अपने विभाग में सुरक्षा सहायक हैं। इसी अधिकारी को एक अन्य खोज का भी अवसर सुलभ हो गया। एक बार जब वे छड़ी लेकर तथाकथित मस्जिद और गोलाकार वराण्डे के निकट संगमरमर-भवन के पश्चिमी छोर पर घूम रहे थे तो उनको लगा कि जिस स्थान पर वराण्डे में उनकी छड़ी लगी है वहाँ नीचे से कुछ विचित्र ध्वनि आ रही है। उन्हें लगा कि पत्थर को हटाना चाहिए। और उनको आश्चर्य हुआ जब पत्थर हटाकर उन्होंने देखा कि वह प्राचीन द्वार है जिसे स्पष्टतया शाहजहाँ ने बन्द करा दिया था। उसके नीचे पचास सीढ़ियाँ थीं जिनसे उतरकर नीचे गलियारा था। वराण्डे के नीचे की बड़ी दीवार खोखली थी। इससे यह स्पष्ट है कि इसके पूर्वी छोर पर भी इसी प्रकार का द्वार तथा सीढ़ियाँ होंगी। और यह तो केवल ईश्वर ही जानता होगा कि इस प्रकार की कितनी दीवारें, कक्ष और मंजिलें बन्द करवाई गई होंगी, जो कि संसार के ज्ञान में नहीं आईं। ताजमहल के सम्बन्ध में जो खोज हुई है, इससे उसकी अपूर्णता अथवा दयनीयता का आभास मिलता है। लगता है कि न तो किसी ने ताजमहल की भूमि पर पुरातत्त्व-सम्बन्धी कोई खोज की है और न इस सारे विषय पर किसी ने परिश्रमपूर्वक कोई अध्ययन ही किया है। किन्तु बाहरी राजनीतिक, साम्प्रदायिक तत्त्व, इतिहासकारों एवं पुरातत्त्वविदों को ताज की

मौलिकता के सम्बन्ध में कोई ठोस प्रमाण प्राप्त करने में बाधा अवश्य पहुँचाते हैं। इस प्रकार की शैक्षिक कायरता की प्रबल रूप में भर्त्सना होनी चाहिए।

ई. वी. हावेल के समान वास्तुशिल्प एवं इतिहास के प्रमुख विद्वान् यह घोषणा कर चुके हैं कि आकार-प्रकार में ताजमहल नितान्तरूपेण हिन्दू प्रासाद है। हमारी खोज ने प्रमाणित कर दिया है कि यह सर्वात्मना हिन्दू प्रासाद है और इसका निर्माण हिन्दुओं द्वारा मन्दिर प्रासाद परिसर के रूप में बादशाह शाहजहाँ से शताब्दियों पूर्व कर लिया गया है। ताजमहल जैसे भवन के निर्माण और इसके रख-रखाव का कार्य हिन्दू मस्तिष्क ही कर सकता है, इस बात की पुष्टि अभी हाल की एक घटना से भी हो चुकी है। श्री गुलाबराव जगदीश ने २७ मई, १९७३ के लोकप्रिय मराठी दैनिक 'लोकसत्ता' (बम्बई से प्रकाशित) में प्रकाशित अपने लेख में उस घटना का उल्लेख किया है।

उस लेख के लेखक श्री जगदीश के अनुसार १९३९ के प्रारम्भ में ताजमहल की देख-रेख के लिए नियुक्त ब्रिटिश इंजीनियर ने ताजमहल के गुम्बद में एक दरार देखी। उसने उस दरार की मरम्मत करनी चाही किन्तु असफल रहा। तब उसने अपने उच्च अधिकारियों का ध्यान उस ओर आकर्षित किया किन्तु वे भी असफल रहे। ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए वह दरार चौड़ी और लम्बी होती गई। इंजीनियरों की एक समिति उसकी मरम्मत के लिए नियुक्त की गई किन्तु, उसको भी कोई सफलता नहीं मिली। जब तक कि दरार और बढ़कर गुम्बद गिर न जाय उससे पूर्व ही कार्य सम्पन्न होने की आवश्यकता अनुभव की गई।

अधिकारी किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे कि एक देहाती-सा हिन्दू उनके पास गया। उसका नाम पूरनचन्द था। उसने अधिकारी इंजीनियर को बताया कि वह उस दरार को भरने की तकनीक जानता है और उसने इच्छा व्यक्त की कि उसको एक अवसर प्रदान किया जाय। क्योंकि तथाकथित आधुनिक और किताबी विशेषज्ञ इंजीनियर इस कार्य में असफल सिद्ध हो चुके थे, अतः ब्रिटिश इंजीनियर ने उस देहाती को बेमन से अपनी स्वीकृति प्रदान की। इसमें उसकी अपनी ही रुकावटें थीं। वह अन्तिम प्रयास करके देख लेना चाहता था।

कुछ राजगीरों को अपनी सहायता के लिए लगाकर पूरनचन्द ने कार्य आरम्भ किया। उसने एक किसी प्रकार का गारा-चूना बनाया और स्वयं अपने हाथों से दरार में भर दिया। गारा-चूना सूखने के बाद मूल गुम्बद से इस प्रकार जुड़ गया कि थोड़े

दिन बाद वहाँ दरार का कोई नाम-निशान भी दिखाई नहीं दिया।

उस हिन्दू राजगीर का परिश्रम, जिसने सुशिक्षित ब्रिटिश इंजीनियरों को पराजित कर दिया था, भारत में ब्रिटिश नौकरशाही की चर्चा का विषय बनने के बाद तत्कालीन वाइसराय के कानों में पहुँच गया।

वाइसराय को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सर्वथा अशिक्षित हिन्दू राजगीर ने उनके शिक्षित इंजीनियरों को पराजित कर दिया था। इससे उन विभागीय अधिकारियों के आत्मसम्मान को ठेस लगी जो अब तक सोच रहे थे कि पूरनचन्द को पुरातत्त्व-विभाग में रख-रखाव का अधीक्षक नियुक्त कर दिया जाए। वाइसराय की प्रशंसा ने इंजीनियरों में पूरनचन्द के प्रति ईर्ष्या भर दी। अब तो वे इस निश्चय पर अटल थे कि पूरनचन्द को उस विभाग से दूर कर दिया जाए। उसको किसी प्रकार की नौकरी नहीं दी गई। सितम्बर १९३९ में द्वितीय विश्व-युद्ध प्रारम्भ हो गया और तब ताजमहल और उसके रख-रखाव की बात पृष्ठभूमि में विलीन हो गई।

१९४२ में डॉक्टर भीमराव अम्बेदकर को वाइसराय की कार्य-समिति का सदस्य बनाया गया और उन्हें श्रम-विभाग सौंपा गया। इस नियुक्ति से पूरनचन्द में आशा का संचार हुआ। टूटी-फूटी हिन्दी में पूरनचन्द ने अपनी कुंठा के विषय में डॉ. अम्बेदकर को एक पत्र लिखा। पत्र में उसने स्पष्ट लिखा कि उनके सम्मुख वेतन का प्रश्न उतना नहीं जितना कि राष्ट्रीय धरोहर को सुरक्षित रखना था जिससे कि भावी पीढ़ी उससे वंचित न हो जाए। इसी भावना से प्रेरित होकर ताजमहल के रख-रखाव के लिए उसने नौकरी के लिए प्रार्थना की थी।

पूरनचन्द की ईमानदारी से डॉ. अम्बेदकर प्रभावित हुए। उन्होंने तत्कालीन वाइसराय लार्ड लिनलिथगो से पूरनचन्द का परिचय करा दिया। डॉ. अम्बेदकर ने वाइसराय को यह सूचना देते हुए लिखा कि वे ऐतिहासिक भवन के रख-रखाव के लिए पूरनचन्द को सहायक इंजीनियर नियुक्त करना चाहते हैं। उसके साथ ही उसको राष्ट्रीय सम्मान प्रदान करने का भी परामर्श दिया। वाइसराय ने उसे स्वीकार कर पूरनचन्द को 'राय साहब' की उपाधि प्रदान कर दी।

यह सब रिकॉर्ड में अंकित है और उस लेख के लेखक गुलाबराव जगदीश की मान्यता की पुष्टि करता है।

पीटर मुण्डी का साक्ष्य

अंग्रेज यात्री पीटर मुण्डी १६२८ से १६३३ तक भारत में था। उसने अपनी दैनिकी में जो अब 'योरोप और एशिया में भ्रमण—१६०८-१६६७' शीर्षक से प्रकाशित हुई है, (आर. सी. टैंपल द्वारा सम्पादित, हैथ लुइट सोसाइटी, ५ भाग, १९०७-१९३९, भाग २ के पृष्ठ २१३ पर) मुण्डी लिखता है—"उसके मकबरे के चारों ओर पहले ही स्वर्ण की रेलिंग है, भवन प्रारम्भ हो गया है और अत्यधिक लागत, परिश्रम, अनोखे उद्योग के साथ आगे बढ़ रहा है। सोना, चाँदी और संगमरमर तो उसमें मानो कोई साधारण वस्तु हों। शाहजहाँ चाहता है, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं, कि सारा शहर इस ओर कर दिया जाए, छोटी-छोटी पहाड़ियाँ समतल कर दी जाएँ जिससे कि वे इसकी भव्यता में रुकावट न बन पाएँ…"

यह बहुत ही विशिष्ट उद्धरण होने पर भी नितान्त भ्रामक है। अंग्रेज यात्री पीटर मुण्डी और फ्रैंच यात्री टैवर्नियर जैसे समकालीन पाश्चात्य यात्रियों ने ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र में अपने लेखों द्वारा जो विप्लव मचाया है वह इस तथ्य से स्पष्ट है कि वे लेख बड़ी असावधानी से समानरूपेण व्यक्त किए गए हैं कि जो अदण्डनीय रूप से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ ने करवाया है।

हम मुण्डी के उपरिलिखित उद्धरण का विश्लेषण यह प्रकट करने के लिए करना चाहते हैं कि वह किस प्रकार हमारी खोज का समर्थन करता है कि ताजमहल प्राचीन मन्दिर प्रासाद है, जिसे शाहजहाँ ने मकबरे के रूप में दुरुपयोग करने के लिए हथिया लिया था।

घटनावश हमारा विश्लेषण यह भी व्यक्त करेगा कि अनुसन्धाता के साधारण

सावधानी और परिश्रम करने से ही कितनी सफलता से ऐसे फुसलानेवालों को सन्मार्ग दिखाया जा सकता है।

पहले तो हम यह ध्यान कर लें कि मुण्डी भारत में केवल १६३३ तक ही था। मुमताज़ का मृत्युकाल १६२९ और १६३२ के मध्य बताया जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि मुण्डी भारत में मुमताज़ की मृत्यु के बाद एक-दो वर्ष ही रहा। इतने बड़े ताजमहल परिसर के लिए नींव खोदने का कार्य भी उस अवधि में बहुत कम समझा जाता है। नदी के इतने निकट होने के कारण जब तक कि पानी को भवन की ओर आने से रोकने के लिए सुदृढ़ गारे-चूने की दीवार और प्रवाह-नली जो कि पिछली दीवार और नदी-तट के मध्य बनाई जाए और भूमि भली प्रकार सूख न जाए तब तक ताजमहल (हिन्दू प्रासाद परिसर) के प्राचीन निर्माताओं द्वारा नींव भी खोदना सम्भव नहीं था।

और उन दो वर्षों के अल्प समय में भी मुण्डी लगभग छः सौ हजार रुपए का एक सोने का कठघरा जिसमें रत्न जड़े हुए थे, का उल्लेख करता है।

पाठक और अनुसन्धाता इस तथ्य पर विचार कर सकते हैं कि क्या हजारों साधारण श्रमिकों के मध्य जो कि धरती को खोदने, भरने में सारे वायुमण्डल को धूल-धक्कड़ से भर रहे हों इतनी अपार सम्पत्ति उस प्रकार खुले में रखी जा सकती है ? क्या इस प्रकार की मूल्यवान् एवं भव्य वस्तुएँ जो कि भवन पूर्ण होने के उपरान्त सजावट के लिए लगाई जाती हैं, नींव खोदने के समय लगाई जा सकती हैं ? इस प्रकार की मूल्यवान् वस्तुएँ मुण्डी ने मुमताज़ की मृत्यु के एक-दो वर्ष बाद उसकी कब्र के चारों ओर देखीं, इससे यह सिद्ध होता है कि मुण्डी ने गुम्बद और ताज के भीतर उसी अवस्था में प्रवेश किया होगा जिस अवस्था में आज हम उसको देखते हैं। यह भी कि मुमताज़ की मृत्यु के एक-दो वर्ष बाद ही ऐसा विशाल भवन बन गया था, यह इस बात की ओर संकेत करता है कि शाहजहाँ ने प्राचीन हिन्दू मन्दिर प्रासाद का अधिग्रहण किया था जैसा कि उसके अपने दरबारी इतिहास-लेखक ने बादशाहनामे के प्रथम भाग के पृष्ठ ४०३ पर अंकित किया है।

तब प्रश्न उठता है कि मुण्डी ने जिस भवन-निर्माण-कार्य का उल्लेख किया है, वह क्या है ? इसके लिए भी मुण्डी विशुद्ध स्रोत प्रस्तुत करता है क्योंकि शाहजहाँ ने प्राचीन हिन्दू भवन परिसर को हथियाया है अतः उसको इस्लामिक मकबरा जैसा बनाना था। इस प्रकार की वास्तुशिल्प-सम्बन्धी धोखाधड़ी के लिए संस्कृत के

शिलालेख एवं हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियाँ उखाड़कर उनके स्थान पर कुरान की आयतें खुदवाई गईं। औरंगजेब के पत्र से भी हमें यह विदित हुआ था कि परिसर के सारे भवन पुराने और टूटे-फूटे होने के कारण टपकते थे, उनकी मरम्मत भी करनी थी। संगमरमर भवन के तथा केन्द्रीय गुम्बद के पूर्वी तथा पश्चिमी छोर पर अरबी भाषा एवं लिपि का 'अल्लाह' शब्द भी अंकित करना था। इस सबके लिए भवन के चारों ओर ऊँचाई तक बहुत बड़े मचान की भी आवश्यकता थी। इसीलिए टैवर्नियर ने प्रसंगानुकूल ही लिखा है कि "समस्त कार्य की अपेक्षा मचान बँधवाने की लागत कहीं अधिक थी।"

स्वाभाविक ही जब पीटर मुण्डी जैसे उदासीन यात्री ऐसे स्थानों को देखें जहाँ कि व्यर्थ का परिवर्तन किया जा रहा हो तो उनका यह कहना कि "भवन शुरू हो गया है····(और) उस पर असामान्य परिश्रम किया जा रहा है।" असंगत नहीं है। वह इस बात का अनुमान नहीं लगा सकता था कि उसके कुछ पीढ़ियों बाद भावी पीढ़ी को यह कहकर धोखे में रखा जाएगा कि ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ ने स्वयं करवाया था। टैवर्नियर और मुण्डी सम्भवतया इतिहास-सम्बन्धी इस धोखे का अनुमान नहीं लगा सके और इसी कारण वे अधिक स्पष्टता से कुछ नहीं लिख पाए। हम स्वयं ही यदि भवन को यों ही देखने के लिए जाएँ तो हम भी उतना स्पष्ट नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ, यदि हम बम्बई अथवा लन्दन उस समय जाएँ जब किसी व्यक्ति ने किसी अन्य व्यक्ति का भवन लिया हो और उसको अपनी इच्छानुसार सजाने के लिए भवन के चारों ओर उसने मचान बँधवाए हों, ऐसी स्थिति में न तो उससे यह पूछने का साहस ही हो सकता है और न आवश्यकता कि उसने उस भवन को किस प्रकार ग्रहण किया, कितने में लिया, किससे लिया, वह क्या-क्या परिवर्तन करना चाहता है और इस पर कितना व्यय करना चाहता है। हम तो सीधे ही उस भवन को उसका भवन ही कह देंगे। इस प्रकार की छानबीन तब और भी असम्भव हो जाती है जब भाषा, जाति, संस्कृति, अधिकार और सम्पदा का बहुत बड़ा भेद दोनों को विभक्त करता हो।

सर्वप्रथम यह ध्यान में रखने की बात है कि पीटर मुण्डी, टैवर्नियर अथवा इस प्रकार के अन्य भी पाश्चात्य आगन्तुक जो प्राचीन या मध्यकालीन भारत में आए, वे अनुसन्धानकर्ता नहीं थे। वे तो आपाधापी में आनेवाले यात्री थे। वे तो निर्धन यात्री थे जो मुगल बादशाहों और दरबारियों से विस्तारपूर्वक, समानता के

आधार पर वार्तालाप कर ही नहीं सकते थे। ऐसे यात्री तो अपने निवास, भ्रमण, राजकीय स्थलों को देखने, जो सूचना वे चाहते थे उसे प्राप्त करने के लिए और परसियन भाषा में जो सूचना और विवरण उन्हें प्राप्त हुआ है उसके स्पष्टीकरण आदि-आदि के लिए पूर्णतया निर्दयी मुगल दरबारियों की कृपा पर निर्भर थे।

इन परिस्थितियों में यह आधुनिक अनुसन्धानकर्ताओं के लिए है कि प्राचीन अथवा मध्यकालीन भारत में आनेवाले सामान्य यात्रियों के विवरण पर वे अपनी अनुसन्धात्री बुद्धि का प्रयोग कर उसका उचित निराकरण करें। आधुनिक अनुसन्धाताओं ने अपने इस प्राथमिक कर्तव्य के साथ भी धोखा किया है। बड़े मूर्ख-से सिद्ध होते हुए, उन विदेशी यात्रियों के समय और परिस्थिति को ध्यान में रखे बिना कि जिनमें उन्होंने वह सब लिखा है, आधुनिक अनुसन्धाताओं ने विवादास्पद अनुमानों का आश्रय लिया। उदाहरणार्थ, पीटर मुण्डी के विषय में मुख्य बात यह है कि मुमताज़ की मृत्यु के बाद कुछ ही वर्ष के लिए भारत में था, इस अल्प समय की अवधि में वह मकबरे के चारों ओर बहुमूल्य कठघरे की बात करता है।

पीटर मुण्डी का दूसरा मुख्य कथन शाहजहाँ द्वारा ताज के इर्द-गिर्द की छोटी-छोटी पहाड़ियों को समतल कराना है। शाहजहाँ द्वारा उन पहाड़ियों को समतल कराने के बाद भी ताज को देखने जाने वाले देखेंगे कि ताज के पास पहुँचने पर अभी भी उनके सड़क के दोनों ओर छोटी-छोटी पहाड़ियाँ दिखाई देती हैं। वे सब नकली पहाड़ियाँ हैं और प्राचीन हिन्दुओं द्वारा मन्दिर प्रासाद की नींव की खुदाई से निकले मलबे पत्थर के वहीं पड़े रहने से बन गई हैं। यह सामान्य बात थी। उदाहरणार्थ, भरतपुर नगर के चारों ओर खाई बनी हुई है और उस खाई खोदने से जो मलबा निकला वह भीतरी भाग में एकत्रित होकर अवरोधक के रूप में खड़ा सुरक्षा का साधन बन गया है। वही बात हिन्दू मन्दिर प्रासाद ताज की भी है। ताज की नींव खोदने से निकले मलबे को उसके चारों ओर डालने से बनी पहाड़ियों के तीन प्रयोजन हो सकते हैं। एक तो यह कि वही निकटस्थ मलबा फेंकने का स्थान हो सकता था, दूसरे पहाड़ीनुमा छोटा-सा उद्यान शोभादायक होता है, तीसरे पहाड़ी के अवरोधक रूप से खड़े रहने से शत्रु सीधा ताज पर आक्रमण नहीं कर सकता था।

पीटर मुण्डी का उन पहाड़ियों के समतल किए जाने के बारे में लिखना और अन्य बातों की उपेक्षा करना इस बात का स्पष्ट संकेत है कि यही एक बात थी जो

शाहजहाँ ने मुख्य रूप से उस समय की, जबकि समकालीन दर्शक वहाँ पर विद्यमान थे। अन्यथा ताज के सम्बन्ध में पीटर मुण्डी द्वारा उल्लिखित संक्षिप्त विवरण में इस साधारण बात का उल्लेख मुख्य रूप से क्यों आता? यदि शाहजहाँ ने वास्तव में ताजमहल बनवाया ही था तो खाइयों की खुदाई, कुएँ तथा नाले बनवाना जिससे कि यमुना की बाढ़ का पानी ताजमहल की पिछली दीवार को हानि न पहुँचा सके और जिस प्रकार बड़े-बड़े शिलाखण्ड बड़ी-बड़ी ऊँचाइयों पर लगाए गए—ये सब टैवर्नियर और बर्नियर जैसे यात्रियों की दृष्टि में क्यों नहीं आए? ताजमहल सात मंजिला भवन है जिसमें चतुर्भुजाकार आँगन तथा उसमें बने ५०० कक्ष हैं। सारी भवन-परिधि ऊँची दीवार की है जिसमें नोकीले छड़ोंवाले प्रवेश-द्वार बने हैं। इन सबकी उपेक्षा करके मुण्डी केवल पहाड़ियों के समतल करने की ही बात करता है। क्यों?

सौभाग्य से पीटर मुण्डी पहाड़ियों के समतल करने के उद्देश्य के विषय में भी उल्लेख करता है। वह लिखता है, ''क्योंकि वे कदाचित् सुन्दरता को छिपा न दें'' इसलिए पहाड़ियाँ मिटा दी गईं। यह तथ्य ही कि मुमताज़ की मृत्यु के एक-दो वर्ष बाद ही पहाड़ियाँ समतल कर दी गईं जिससे कि मकबरा सुविधा से दिखाई दे, अंकित करता है कि ताजमहल परिसर पहले से ही विद्यमान था। जो कुछ आवश्यक था वह यही कि कुछ पहाड़ियों को समतल कर दिया जाए जिससे कि वह भवन दूर से भी दिखाई दे। ताज के प्राचीन हिन्दू निर्माताओं का, उसके इर्द-गिर्द पहाड़ी बनाने का मुख्य उद्देश्य यही था। मुण्डी के उल्लेख के अनुसार, कि दुराग्रही शत्रु कहीं उसको किसी प्रकार की हानि न पहुँचा सके। अब क्योंकि शाहजहाँ उसको मकबरे के रूप में परिवर्तित कर रहा था जो कि उसके देखने के लिए खुला रहे; इसलिए उसको जन-सामान्य की दृष्टि से बचाने की आवश्यकता नहीं रही थी।

हम यहाँ पर यह भी जोड़ देना चाहते हैं कि रत्न-जटित कठघरा और चाँदी तथा सोना जो कई सौ हजार रुपए का था, वह भी हिन्दू सम्पदा थी। वास्तव में ताज को हथियाने का उद्देश्य उस सम्पदा का दुरुपयोग करना ही था। यदि शाहजहाँ ने स्वर्ण-जटित रेलिंग बनवाई होती तो इतिहास साक्षी होता कि किसने उसे निकाला और किसके आदेश से निकाला। जबकि शाहजहाँ के उत्तराधिकारियों ने उसकी मृत्यु के उपरान्त भी दो शताब्दियों तक दिल्ली और आगरा में शासन किया। ताज में मुमताज़ को दफनाना इस खेल का एक साधारण भाग था। मकबरा इसलिए

बनवाया गया था ताकि वह स्थायी रूप से धार्मिक भावना का स्थान बन जाने से हिन्दुओं के उस मंदिर प्रासाद का पुनराधिकार और उपयोग का प्रश्न ही न उठने पाए। शाहजहाँ ने जो किया वह यह था कि ताज में जहाँ पर देवमूर्ति प्रस्थापित थी उस पवित्र स्थान पर उसने मुमताज़ को दफनाया। ऐसा करने के उपरान्त पीटर मुण्डी और टैवर्नियर जैसे विदेशी यात्रियों को भीतर बुलाकर उसे दूर से दिखाया गया, शरारती मुस्लिम दरबारियों ने ऐसे विदेशी पर्यटकों को ताज के दुरुपयोग के सम्बन्ध में पूर्णतया अन्धकार में रखा। इसके अतिरिक्त भी मध्यकालीन मुस्लिम विजेताओं में यह साधारण-सी बात थी कि दूसरे लोगों की सम्पत्ति तथा स्त्रियों को लूटकर उन्हें अपने अधिकार में कर लिया करते थे। यही कारण है कि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास में वाराणसी, दिल्ली तथा आगरा जैसे नगरों का दुराग्रहपूर्ण उल्लेख क्रमशः मुहम्मदाबाद, शाहजहाँनाबाद और अकबराबाद के नाम से किया गया है। मध्यकालीन मुगल दरबारियों की यह प्रवृत्ति थी कि हिन्दुस्तान को अफगानिस्तान, परसिया और अरब का उपद्वीप-सा मानकर सबकुछ मुस्लिम रंग में रँग दें जिससे कि इसके हिन्दू मूल का पता ही न चल सके। ताजमहल का अधिग्रहण और उसका परिवर्तन उसी दौर्मनस्यपूर्ण कड़ी का एक अंग था।

वाल्डिमर हानसेन अपनी पुस्तक 'दि पीकौक थ्रोन' (होल्ट, रिचार्ड एण्ड विंस्टन द्वारा प्रकाशित) के पृष्ठ १८१-१८२ पर लिखता है कि "यहाँ तक शीघ्रातिशीघ्र १६३२ में मुमताज़ की मृत्यु की पहली वर्षगाँठ पर, मकबरे का आँगन, जो अभी बन ही रहा था, शामियाने से ढका हुआ था जिसमें श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए शाही खानदान के साहबजादे, बुजुर्गवार और शेख, उलेमा तथा हाफिज जैसे धार्मिक जन जिन्हें सारी कुरान कंठस्थ थी, वहाँ एकत्रित हो सकें। शाहजहाँ ने अपनी उपस्थिति से उस अवसर की शोभा बढ़ाई थी और बेगम का पिता आसिफखान शाही दरबार के विशेष निमन्त्रण पर उपस्थित था। मकबरे पर एक बहुत बड़ा हार चढ़ाया हुआ और आमन्त्रितों का मिष्ठान्न और फलों से स्वागत किया गया, कुरान की आयतें वातावरण को गुंजरित कर रही थीं और मृतात्मा के लिए प्रार्थना की जा रही थी। सैकड़ों सहस्र रुपए दान किए। बाद के वर्षों में अन्य पुण्य तिथियों पर जब कभी भी शाहजहाँ आगरा में होता जहानआरा तथा हरम की अन्य महिलाओं के साथ उस अपूर्व भवन में उपस्थित रहता था। महिलाएँ ऐसे अवसर के लिए बने हुए केन्द्रीय मंच पर बैठती थीं और जन-सामान्य की नजरों से बचे रहने

के लिए लाल कपड़े की कनात तथा परदे से उस मंच को ढक दिया जाता था। दरबारीगण टैंट के नीचे बैठते थे।''

उपरिलिखित उद्धरण पर हम अनेक प्रकार से टिप्पणी करना चाहते हैं। प्रथमत: हानसेन तथा अन्य भी जब उस महिला को मुमताज़ महल कहते हैं तो वह गलत है। उसका नाम जैसा कि बादशाहनामे में उल्लिखित है वह है मुमताज़-उल-ज़मानी। उसके नाम के साथ महल प्रत्यय धोखे से बाद में जोड़ा गया जिससे कि प्राचीन हिन्दू शब्द तेज-महा-आलय उपनाम ताजमहल से उसकी समता की जा सके।

द्वितीयत: यह तथ्य कि प्रथम वर्ष से ही मुमताज़ की पुण्यतिथि उस स्थान पर बड़ी धूमधाम से मनाई जानी लगी, इससे यह स्पष्ट होता है कि यदि शाहजहाँ ने उसे बनाया होता तो वह स्थान खुदा हुआ होता जो कि वह नहीं था। यहाँ तक कि आज भी यदि वहाँ पर अधिक लोगों को इकट्ठा होना हो तो कड़कती धूप अथवा कड़ाके की सर्दी से बचने के लिए टैंट और कनातों का प्रबन्ध करना पड़ता है।

हानसेन तथा अन्य लेखकों के उल्लेख, कि मकबरा निर्माणाधीन था, संगत सिद्ध होते हैं यदि उन्हें उचित प्रकार से ग्रहण किया जाए। वह इस प्रकार कि जो जमीयतखाना कहा जाता है, उसके सामने जिसे धोखे से मस्जिद बताया जाता है और केन्द्रीय भवन-सहित जिस पर संगमरमर का गुम्बद है, परिसर के सभी भवन, मरम्मत तथा अरबी के अक्षर खुदवाकर विकृत करने के लिए मचानों से घेरे गए थे। केन्द्रीय अष्टभुजीय हिन्दुओं के पवित्र कक्ष को तोड़ा गया और उसके मध्य भाग की खाई में मुमताज़ को तिरछा दफनाया गया। ऊपरी मंजिलों पर मकबरे बनाए जा रहे थे जिससे कि वह भवन यदि फिर से हिन्दुओं के अधिकार में चला गया तो कोई भी मंजिल उनके लिए उपयोगी न रह सके। बहुत सारी मंजिलों पर दीवार बनाई जा रही थी, क्योंकि इस कार्य में काफी कुछ उखाड़ना-तोड़ना चल रहा था इसलिए दूसरी मंजिलों से उखाड़े गए संगमरमर को कब्रों और गुम्बदों में लगा दिया गया। हमने 'कब्रों' शब्द बहुवचनान्त रूप में जानबूझकर प्रयोग किया है, क्योंकि जब तक शाहजहाँ जीवित था तब तक केवल वहाँ के केन्द्रीय कक्ष में मुमताज़ को ही दफनाया गया था किन्तु उसके बाद मुगल दरबार के जो अन्य लोग भी मरते गए उन सबको ताज में ही दफनाने के लिए लाया जाता रहा। जिससे कि सारा ताज कब्रिस्तान में परिवर्तित हो जाए और भविष्य में इस प्रकार की कोई सम्भावना ही न

रह जाए कि उसका उपयोग कोई हिन्दू कर सके। सामान्य पर्यटक की दृष्टि से तो यह तथ्य छिपा ही रहा और यहाँ तक कि इतिहास के विद्वान् भी इससे अनभिज्ञ हैं। यदि उनके पास समस्त ताज परिसर के सूक्ष्म अध्ययन का समय हो तो वे देखेंगे कि सातुन्निसा खानम (मुमताज़ की नौकरानी) की कब्र भी वहीं एक कक्ष में है, और सरहन्दी बेगम (शाहजहाँ के हरम की एक रानी) दूसरे कक्ष में दफन है। इसी प्रकार अन्य अनेक सैकड़ों जाने-अनजाने मृतकों की कब्रें पूर्व से पश्चिम तक वहाँ बनी हुई हैं। यह आश्चर्य का विषय है कि वे सभी कक्ष, हिन्दू वास्तुकला के प्रतीक, जैसाकि स्वयं ताज भी है, अष्टभुजाकार हैं।

जब इतना बड़ा विशाल भवन परिसर ऊपर से नीचे तक वर्षों तक तोड़-फोड़ करके मुसलमानी इमारत के रूप में परिवर्तित किया जा रहा हो तो मुण्डी और टैवर्नियर जैसे विदेशी पर्यटक तो निश्चितरूपेण यही कहेंगे कि कोई मुस्लिम मकबरा बनाया जा रहा था। किन्तु यह तो आधुनिक अनुसन्धाताओं को चाहिए कि वे उनके उल्लेख को पूर्ण सत्य स्वीकार न करें और जो कुछ उन पर्यटकों ने लिखा है, समुचित सन्दर्भ में जाँचें और परखें तथा उसके परिणाम पर विचार करें। अनुसन्धाता यह भी न भूलें कि शाहजहाँ का अपनी ओर से इस प्रकार का कहीं कोई उल्लेख नहीं है कि जहाँ उसने यह कहा हो कि उसने ताज को बनवाया। विपरीत इसके उसका बादशाहनामा स्वीकार करता है कि वह राजा मानसिंह का महल था। यह भी ध्यान देने की बात है कि शाहजहाँ कालीन रिकॉर्ड में भी ऐसा कोई कागज का टुकड़ा तक भी उपलब्ध नहीं है जिसमें ताजमहल के विषय में कोई संकेत भी हो और न कोई नक्शा ही, पूर्ण परिसर का या किसी एक भाग का, उपलब्ध है। जो भी छुटपुट निर्माण-कार्य का उल्लेख उपलब्ध है वह कब्र बनाना, मचान बाँधना, दीवार पर कुरान की आयतें खोदना तक ही सीमित है। यदि ताजमहल देखने वाले इतिहास के विद्यार्थी और पर्यटक इस बात को भली प्रकार समझ लें तो ताजमहल-निर्माण के सम्बन्ध में शाहजहाँ का एक शब्द भी न कहना और दूसरे विदेशी पर्यटकों का बार-बार भवन-निर्माण के विषय में उल्लेख करना क्षणभर में ही स्पष्ट हो जाता है।

विश्व ज्ञान-कोश के उदाहरण

यद्यपि पूर्ववर्ती अध्यायों में शाहजहाँ के अपने इतिहास-लेखक अब्दुल हमीद और फ्रांसीसी पर्यटक टैवर्नियर का उल्लेख करके हम सप्रमाण यह सिद्ध कर चुके हैं कि ताजमहल अधिग्रहीत हिन्दू प्रासाद है तदपि अपने पाठकों को उस सबसे परिचित कराना चाहते हैं जो तर्क ताजमहल को लेकर विगत ३०० वर्षों से चले आ रहे भ्रमपूर्ण कथानकों के प्रत्येक पक्ष पर पृथक्-पृथक् विचार करने पर उभरते हैं।

इस प्रकार के विचार-विमर्श का अंग होने के कारण परवर्ती कुछ अध्यायों में अपने पाठकों को हम स्पष्ट करेंगे कि ताजमहल के सम्बन्ध में किस प्रकार परस्पर विरोधी एवं असंगत तथ्य प्रस्तुत किये गए हैं। सर्वप्रथम हम देखें कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका[१] क्या कहता है :

"भारत में आगरा नगर के बाहर यमुना नदी के दक्षिण तट पर मुगल बादशाह शाहजहाँ ने अपनी प्रिय पत्नी अर्जुमन्द बानू बेगम की स्मृति में जिसे मुमताज़-ए-महल पुकारा जाता था (जिसका अपभ्रंश ताजमहल है), एक मकबरा ताजमहल के नाम से बनवाया। १६१२ में दोनों के विवाह के उपरान्त मुमताज़ शाहजहाँ की जीवन-संगिनी बनने पर १६३१ में प्रसव के समय बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई। भारत, फारस, मध्य एशिया तथा दूर-दूर के वास्तुकारों की परिषद् द्वारा योजना बनाए जाने पर १६३२ में भवन-निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ। अन्तिम योजना का प्रारूप उस्ताद ईसा, जो या तो तुर्की था या पारसी, ने बनाया। यद्यपि मुख्य निर्माता, राजगीर पच्चीकारी करनेवाले तथा अन्यान्य कलाकार उस निर्माण-सामग्री, जिससे कि भवन बनाया गया, की तरह भारत तथा मध्य एशिया के ही थे। यद्यपि सारा ताज परिसर पूर्ण होने से २२

---

१. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका संस्करण १९६४, भाग २१, पृ० १५८

वर्ष का समय लगा और उस पर ४०० लाख रुपया व्यय हुआ तदपि १६४३ तक मकबरा तैयार करने के लिए २० हजार से अधिक श्रमिक दैनिक कार्य करते रहे।

"परिसर का उत्तर से दक्षिण की ओर चतुर्भुजाकार क्षेत्रफल ६३४×३३४ गज है। मध्यवर्ती चौकोर उद्यान का क्षेत्रफल ३३४ गज है। हर छोर पर अन्त्यस्थल में एक आयताकार क्षेत्र छोड़ा गया है दक्षिण का क्षेत्र लाल बालूदार पत्थरों से बने प्रवेश-द्वार को उसके अधीनस्थ भवनों से संग्लन है। दूसरी ओर उत्तर (नदी की ओर) की ओर स्वयं मकबरा स्थापित है। मकबरा पश्चिमी तथा पूर्वी दीवारों पर दो समताकार भवनों, मस्जिद तथा उसका 'जवाब' (उत्तर) से सम्बद्ध है। ये सब लाल बालूदार पत्थरों से बनी भित्ति के अन्तर्गत समाहित हैं तथा इनके कोनों पर अष्टभुजाकार मण्डप तथा कंगूरे बने हैं जबकि बाहरी क्षेत्र में-परिधि के भीतर दक्षिण की ओर अनेक उपभवन, अश्वशाला तथा आरक्षण गृह हैं। सारा परिसर बेगम का स्मारक है। क्योंकि मुगल भवनों की विधि के अनुसार भवन बन जाने के बाद उसमें कुछ भी संशोधन एवं परिवर्द्धन नहीं किया जा सकता। इसलिए यह अस्तित्ववान रूप में अभियोजित एवं अवधारित किया गया। मस्जिद तथा जवाब, जो कि मकबरे की ओर अभिमुख हैं, सहित इस स्मारक का उत्तरी द्वारा वास्तुकला की दृष्टि से नितान्त महत्त्वपूर्ण है। मस्जिद और जवाब दोनों का निर्माण लाल सीकरी के बलुआ पत्थरों से किया गया है जिनमें संगमरमर के कुंडलदार गुम्बद और द्वार हैं तथा कुछ के धरातल बन्धित चित्रांकन से सज्जित हैं। जो विशुद्ध मकराना के संगमरमर के पत्थर से बने मकबरे के भेद को स्पष्ट करता है। मकबरा १८६ वर्गाकार है। यह २३ फुट ऊँचे तथा ३१२ वर्ग फुट स्तम्भ पीठ पर स्थित है। स्तम्भ पीठ के कोने मुड़े हुए हैं और प्रत्येक कोने के अग्रभाग में एक स्थूल महराब है, यह महराब १०८ फीट ऊँचे हैं। सभी के ऊपर दो कुप्पी के आकार के गुम्बद बने हैं जो उच्च मृदंगाकृति के आश्रय हैं तथा उद्यान के धरातल से २४३ फीट की ऊँचाई पर बुर्ज स्थित हैं। प्रत्येक महराब के ऊपर भित्ति के अवरोध से क्षितिजाकृतियाँ आगे बढ़ी हुई हैं। इसी प्रकार बुर्ज तथा गुम्बद प्रत्येक कोने पर आगे उठे हुए हैं। स्तम्भपीठ के प्रत्येक कोने पर तीन मंजिलों से युक्त मुकुटाकार गुम्बद शीर्ष की १३८ फीट की ऊँचाई तक चार मीनारें बनी हैं। मकबरे के भीतर अष्टभुजाकार कक्ष है जिसमें सुन्दर नक्काशी और चित्राकृति अंकित हैं। वहीं बेगम और शाहजहाँ की नकली कब्रें हैं। संगमरमर से बनी नकली कब्रों पर चित्रकृतियाँ अंकित हैं, इन पर बहुमूल्य रत्न जड़े हुए थे।

उद्यान से धरातल पर भूगर्भ में वास्तविक कब्रें हैं। ऐसा कहा जाता है कि 'मुगलों ने इसे दानवों की भाँति आरम्भ किया था और स्वर्णकारों की भाँति समाप्त किया।' निश्चित ही ताजमहल उनकी उपलब्धि का भव्य रत्न है।''

पाठक उपरिलिखित उद्धरण के प्रारम्भ में देख सकते हैं, अर्जुमन्द बानू को दी गई उपाधि मुमताज़ महल का क्या स्पष्टीकरण दिया गया है। इस उपाधि का अर्थ होता है प्रासाद की एक चुनी हुई महारानी (ताजमहल जिसका अपभ्रंश है)। यह उपाधि स्पष्टतया सिद्ध करती है कि रानी को यह उपाधि उसकी मृत्यु के उपरान्त दी गई थी, क्योंकि उसको दफनाने के लिए (हिन्दू) प्रासाद चुना गया था। हमने शाहजहाँ के दरबारी इतिहास का उल्लेख यह दिखाने के लिए किया है कि जब तक मुमताज़ जीवित थी उसका नाम 'मुमताज़ महल' नहीं अपितु 'मुमताज़-उल-ज़मानी' था। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के '' 'ताजमहल' नाम 'मुमताज़ महल' से लिया गया है'' जैसे विवरण सर्वथा गलत हैं। उस महिला का नाम कदापि मुमताज़ महल नहीं था; मुस्लिम उच्चारकों ने उसकी मृत्यु के बाद उसे प्रासाद में दफनाने के उपरान्त उसको दिया। इस प्रकार भवन का नाम महिला के नाम पर रखने की अपेक्षा वह महिला ही थी जिसने कि अधिग्रहीत हिन्दू राजप्रासाद से अपना वह नाम पाया। उस अधिकृत हिन्दू प्रासाद की असीम सुन्दरता, शोभनीयता, भव्यता और प्रसिद्धि इतनी थी कि शाहजहाँ की महारानी ने उस जगमगाते प्रासाद से अपनी मृत्यु के उपरान्त नया नाम प्राप्त किया।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में मुमताज़ की मृत्यु का वर्ष १६३१ है जबकि हम आगे के विवरणों से सिद्ध करेंगे कि उसकी मृत्यु १६२९ से १६३२ के मध्य हुई। इस प्रकार मुमताज़ की मृत्यु की तिथि भी अनिश्चित है। इसलिए स्वाभाविक ही उसकी कब्र से उखाड़े गए मृत शरीर के आगरा लाए जाने तथा रहस्यमय ताजमहल आदि सम्बन्धी सभी तिथियाँ कपोल-कल्पित हैं। इससे पाठकों को महत्त्वपूर्ण तिथि सम्बन्धी साधारण किन्तु निश्चित विषय के सम्बन्ध में भी मुसलमान इतिहासकारों की अविश्वसनीयता का विश्वास हो जाएगा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि ताजमहल की कल्पित कहानी का प्रत्येक पहलू किस प्रकार सन्देहास्पद है।

एन्साइक्लोपीडिया में ताजमहल के निर्माणारम्भ का वर्ष १६३२ अंकित किया गया है। किन्तु महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश (एन्साइक्लोपीडिया), जिसका उद्धरण हम परवर्ती अध्याय में प्रस्तुत करेंगे, में ताजमहल के निर्माणारम्भ का वर्ष १६३१ है।

जब मुमताज़ की मृत्यु की तिथि ही अज्ञात है तो फिर इस प्रकार की असंगतियाँ अपरिहार्य हैं।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका बल देता है कि "भारत, फारस, मध्य एशिया तथा सुदूर देशों के वास्तुकारों की एक परिषद् द्वारा अभियोजना तैयार की गई।" यह भी उतना ही शिथिल तर्क है।

उपरलिखित उद्धरण के सूक्ष्म परीक्षण की आवश्यकता है। यह मान लेने पर कि मुमताज़ की मृत्यु १६३१ में हुई, तब हम यह पूछना चाहेंगे कि बैलगाड़ी और ऊँटों द्वारा परिवहन के उन दिनों में क्या यह विश्वसनीय प्रतीत होता है कि संसार के दूरस्थ देशों में वास्तुकारों का चयन, सम्बन्ध-स्थापन, बादशाह द्वारा व्यय-साध्य मकबरे के निर्माण-विचार के बारे में उनको बताना, योजना को अंतिम रूप देने के लिए परिषद् का गठन, निर्माण के लिए विपुल सामग्री एवं श्रमिकों का एकत्रीकरण और निर्माण कार्यारम्भ, यह एक वर्ष में अथवा उससे भी कम समय में यह सब सम्पन्न हो गया? किसी भी विद्वान् अथवा लेखक ने ताजमहल-सम्बन्धी विरोधी विवरणों का सूक्ष्म परीक्षण नहीं किया।

हम इससे आगे भी संकेत करना चाहते हैं कि महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश (एन्साइक्लोपीडिया) जिसे हम परवर्ती अध्याय में उद्धृत करेंगे, वास्तुकारों की परिषद् का उल्लेख नहीं करता, किन्तु कहता है कि विभिन्न वास्तुकारों को अनेक योजनाओं के लिए आदेश दिया गया था और उनमें एक को चुन लिया गया।

दूसरा तथ्य बादशाह शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार का जो उद्धरण पूर्ववर्ती अध्यायों में उद्धृत किया गया है, उसमें नक्शे और वास्तुकार का उल्लेख नहीं है। वह सही है, और एन्साइक्लोपीडिया का विवरण गलत है, क्योंकि जैसाकि उसने कहा, "मुमताज़ को पूर्व निर्मित प्रासाद में दफनाया गया।" यदि वास्तव में कोई योजना बनाई गई होती तो शाहजहाँ के दरबारी कागजों में उसका उल्लेख तो पाया जाता, किन्तु वहाँ ऐसा कोई उल्लेख नहीं पाया गया। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में ४ करोड़ का उल्लेख है किन्तु यह राशि शाहजहाँ के अपने दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहोरी द्वारा बताई गई, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, ४० लाख की लागत से दस गुणा अधिक है। पाठक इसे एक उदाहरण के रूप में ध्यान में रखें कि ताजमहल की लागत विभिन्न विवरणों में किस प्रकार बढ़ा-चढ़ाकर लिखी गई है।

एन्साइक्लोपीडिया का यह प्रसंग 'अश्वशाला, बाह्य कक्ष तथा आरक्षक-कक्ष' जैसे सहायक कक्ष उल्लेखनीय हैं। ऐसे कक्षों की मृतक को कभी आवश्यकता नहीं होती, विपरीत इसके हिन्दू प्रासाद अथवा मन्दिर में इनकी सदा आवश्यकता रहती है।

एन्साइक्लोपीडिया में उल्लिखित अष्टभुजी दालान हिन्दू राजकीय परम्परा है जो रामायण से ली गई है। हिन्दू राज्य का राम आदर्श है, जैसा कि वाल्मीकि की रामायण में उल्लेख है। उनकी राजधानी अयोध्या अष्टकोण वाली थी। हिन्दू, संस्कृत परम्परा में ही केवल आठों दिशाओं के नाम-विशेष उपलब्ध हैं। सभी आठों दिशाओं के संरक्षक पृथक्-पृथक् देवता हैं, किसी भी हिन्दू राजा से दशों दिशाओं में अपना प्रताप स्थिर करने की अपेक्षा की जाती थी। इन दशों दिशाओं में स्वर-लोक और द्यु-लोक भी सम्मिलित हैं। किसी भी भवन की अटारी आकाश की ओर तथा नींव पाताल की ओर संकेत करती है। इस प्रकार अटारी और नींव सहित कोई भी अष्टकोणीय भवन राजा अथवा ईश्वर के दशों दिशाओं में प्रताप का प्रतीक है। इसीलिए सभी रूढ़िवादी हिन्दू भवन अष्टकोणीय ही बनाए जाते हैं। इस ताजमहल का अष्टकोणीय आकार और इसके दालान तथा बुर्जियाँ इसका हिन्दू नमूना होना सिद्ध करते हैं। मुसलमानी परम्परा में अष्टकोण का कोई महत्त्व नहीं है।

एन्साइक्लोपीडिया का ताजमहल के चारों ओर संगमरमर के चार स्तम्भों को 'मीनार' बताना गलत है। मुस्लिम मीनारें तो सदा ही भवन का अंग होती हैं। ये स्तम्भ जो संगमरमर के मुख्य भवन से अलग किए गए हैं, ये हिन्दू स्तम्भ अथवा अटारी हैं, उन्हें मीनार नहीं कहा जा सकता। हिन्दू परम्परा के अनुसार प्रत्येक पवित्र पीठ निश्चितरूपेण कोनोंवाली होनी चाहिए अन्यथा उसके समाधि होने का भ्रम हो जाएगा।

अब हम महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश (एन्साइक्लोपीडिया) में उल्लिखित विवरण की तुलना करते हैं।

महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश कहता है[१]—

"ताजमहल की गणना संसार के सुन्दरतम भवन के रूप में होती है। यह आगरा नगर से तीन मील की दूरी पर यमुना नदी के पश्चिमी तट पर अवस्थित है।

१. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, खंड १५, पृष्ठ ३५-३६

इसको बनाने के लिए २० सहस्र श्रमिकों ने श्रम किया। यह भवन तत्कालीन भारतीय वास्तुकला के चरमोत्कर्ष को सिद्ध करता है।

"सन् १६०७ में जब शाहजहाँ १५ वर्ष की आयु का था जहाँगीर (उसके पिता बादशाह) ने अर्जुमन्द बानो उर्फ मुमताज़ महल के साथ उसकी सगाई कर दी। पाँच वर्ष बाद दोनों का विवाह कर दिया गया, १६३१ में बुरहानपुर में उसकी मृत्यु हो गई। शाहजहाँ को इससे इतना प्रबल शोकाघात लगा कि वह आठ दिन तक दरबार में उपस्थित न हो सका। वह अपनी पत्नी के मकबरे के समीप बैठकर सुबकियाँ लिया करता था। उसे पहले बुरहानपुर में दफनाया गया किन्तु फिर उसका शव उखाड़कर आगरा पहुँचाया गया। आगरा के दक्षिण में राजा जयसिंह की कुछ भू-सम्पत्ति थी। बादशाह ने इसे उससे खरीदा और प्रमुख वास्तुकारों को भवन-निर्माण की योजनाओं के लिए आदेश दिया। उनमें से एक को पसन्द किया गया और तदनुरूप एक काष्ठ का नमूना तैयार किया गया। उस नमूने के आधार पर १६३१ के आरम्भ में भवन-निर्माण-कार्य आरम्भ हुआ और जनवरी १६४३ में समाप्त हुआ। मखमल खाँ और अब्दुल करीम ये दो प्रमुख निरीक्षक थे। इस भवन के निर्माण में ५० लाख की लागत आई। आफरीदी के अनुसार इसमें नौ करोड़ सत्रह लाख रुपए व्यय हुए। अमानत खाँ शीराजी, ईसा राजगीर, पीरा बढ़ई, बन्नूहट, जटमुल्ला तथा जोरावर, इस्माइल खाँ सभी ने गुम्बद आदि बनाए और रामलाल कश्मीरी, भगवान आदि ने कार्य किया। भवन में २० प्रकार के उत्तम पत्थरों का प्रयोग किया गया। बादशाह सन् १६४३ में ताजमहल में प्रविष्ट हुआ और आसपास के ३० नगरों को सराय, दुकानें तथा उद्यान बनाने तथा उसके रख-रखाव के लिए एक लाख रुपए राजस्व देने के लिए बाध्य हुआ।"

इन दो विश्व ज्ञान-कोश के विवरणों की तुलना करने पर, जोकि गल्प पर आधारित उनके लेखकों को सरलता से उपलब्ध हैं, हमें विदित होता है कि वे दोनों परस्पर भिन्न हैं।

ऊपर जिस भू-सम्पत्ति का उल्लेख हुआ है, वह भ्रान्त है, क्योंकि शाहजहाँ का दरबारी इतिहास-लेखक लिखता है कि मानसिंह का विशाल प्रासाद जो भव्य उद्यान के मध्य स्थित था उसे मुमताज़ के दफनाने के लिए चुना गया।

महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश इस बात पर बल देता है कि शाहजहाँ ने विभिन्न प्रमुख वास्तुकारों को बुलाकर उनको अभियोजना तैयार करने का आदेश दिया और

उनमें से एक को पसन्द कर लिया गया, इसके विपरीत एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका हमें यह विश्वास करने के लिए कहता है कि वास्तुकारों की परिषद् ने सम्मिलित रूप से मकबरे की अभियोजना की।

यहाँ पर हम यह पूछना चाहेंगे कि वे वास्तुकला के विद्यालय कौन से थे जहाँ इन वास्तुकारों ने अध्ययन किया अथवा शिक्षा ग्रहण की ? वे मध्यकालीन मुस्लिम साहित्य की वास्तुविद्या की पाठ्य-पुस्तकें कहाँ हैं ? इसके विपरीत हम प्राचीन हिन्दू वास्तुशिल्प और नागरिक अभियान्त्रिकी की पुस्तकों की वृहद् सूची प्रस्तुत कर सकते हैं। हम यह भी सिद्ध करेंगे कि किस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से ताजमहल का हिन्दू पद्धति से निर्माण किया गया है।

दूसरा प्रश्न, जो सच्चे शोधकर्ता को स्वयं से पूछना चाहिए कि क्या शाहजहाँ के दरबारी कागजों में, जो कि दर्जनों की संख्या में प्रस्तुत किए गए हैं, क्या कोई एक भी कागज ऐसा मिला कि जिसमें ताजमहल की कोई अभियोजना अंकित हो ? उन अभियोजना-पत्रकों के अतिरिक्त जो भवन सामग्री प्रयुक्त हुई है उसकी पावतियाँ, प्रतिदिन व्यय की जानेवाली राशि का विवरण और श्रमिकों का उपस्थिति रजिस्टर भी तो होना चाहिए, किन्तु यह कैसे सम्भव है कि उपरिवर्णित किसी भी प्रकार के कागज का कोई भी पर्चा प्राप्त नहीं है।

जब कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका केवल एक नाम, उस्ताद ईसा का उल्लेख करता है, वहाँ महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, इस तरह का कोई उल्लेख करने की अपेक्षा, मखमल खाँ, अब्दुल करीम और कुछ अन्यों का उल्लेख करता है।

यह विशेष ध्यान देने योग्य बात है कि बादशाहनामे की भाँति महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश किसी वास्तुकार का उल्लेख नहीं करता।

एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में निर्माण-अवधि २२ वर्ष उल्लिखित है जबकि महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश में यह अवधि केवल १२ वर्ष है। स्पष्ट है कि एन्साइक्लोपीडिया टैवर्नियर पर आधारित है और ज्ञानकोष अनेक काल्पनिक मुस्लिम विवरणों पर आधारित है।

जहाँ तक लागत का सम्बन्ध है एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका किसी प्रकार ४ करोड़ रुपए बताता है जबकि महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश उन अनेक कल्पित विवरणों में से निश्चित नहीं कर पाता है कि वह लागत ५० लाख से नौ करोड़ सत्रह लाख के बीच में हो सकती है। हम यह नहीं जान पाए कि किस आधार पर वे शाहजहाँ

के दरबारी लेखक द्वारा लिखित चालीस लाख की राशि को अस्वीकार करते हैं अथवा उस पर विश्वास नहीं करते और वे क्यों उसका उल्लेख तक करने से झिझकते हैं ?

यह ध्यान देने योग्य है कि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका और महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश दोनों ही २० सहस्र श्रमिकों की संख्या को बार-बार दोहराते हैं। जैसा कि हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि वह टैवर्नियर था जिसने २० सहस्र श्रमिकों की नियुक्ति का दावा किया है और एन्साइक्लोपीडिया को उस पर आश्रित रहना पड़ा, क्योंकि शाहजहाँ के दरबारी कागजों में श्रमिकों आदि के विषय में किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है। यह अति स्पष्ट विसंगति है। शाहजहाँ के दरबारी कागजों में ताजमहल-निर्माण-कार्य में वर्षों तक जिन श्रमिकों ने कार्य किया उन अगणित श्रमिकों का उपस्थिति-रजिस्टर अवश्य होना चाहिए था। इस प्रकार के किसी भी रिकॉर्ड का अभाव इस ओर संकेत करता है कि ताजमहल शाहजहाँ ने नहीं बनवाया। उसने केवल एक अधिग्रहीत राजभवन में मुमताज़ को दफनाया। टैवर्नियर विदेशी पर्यटक था। उसने शाहजहाँ के उन दरबारी मुसलमान पिट्ठुओं के गल्पों की सुनी-सुनाई बातों का ही संग्रह किया है जो मुस्लिम उपलब्धियों को बढ़ा-चढ़ाकर बताते थे।

शाहजहाँ-सम्बन्धी गल्पों का ताजा उदाहरण

ताजमहल के सम्बन्ध में किस प्रकार लेखकों ने 'अपनी ढपली अपना राग अलापा' और आज भी वह प्रवृत्ति प्रचलित है, इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण 'इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया'[१] ने प्रस्तुत किया है।

प्रथमत: हम पूर्ण लेख प्रस्तुत करेंगे, तदनन्तर उस पर अपनी टिप्पणी। लेख जिसकी टाइप की हुई प्रतिलिपि हमें एक मित्र से प्राप्त हुई थी, वह इस प्रकार है :

"ताजमहल के निर्माता"

प्राचीन रहस्य उद्घाटित

"सारे संसार के लोग ताज देखने के लिए आगरा आते हैं और वे सभी उन वास्तुकारों की कुशलता और बुद्धिचातुर्य पर आश्चर्य व्यक्त करते हैं जो सुन्दर 'संगमरमर में स्वप्न' की सिद्धि अभियोजित करने में समर्थ हो सके थे। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने उन्हें अपनी पत्नी मुमताज़ के प्रति अपने प्रेम का उपयुक्त प्रतीक रूप में स्मृतिस्वरूप एक ऐसा मकबरा बनाने के लिए नियुक्त किया था कि जो संसार का आश्चर्य हो और उन्होंने संसार के इस आश्चर्य का निर्माण किया।

"तदपि, उनकी खोज-परिश्रमपूर्ण प्रयासों के अनन्तर उनका परिचय अभी तक रहस्य ही बना हुआ है, विचित्र अनुमान लगाए गए जैसेकि वे विदेशी मूल के हों। यहाँ तक कि बर्नियर (१६४२) ने भी एक जनश्रुति का उल्लेख करते हुए यह लिखा है कि वास्तुकार की इसलिए हत्या करवा दी गई कि जिससे उसकी कला का रहस्य उद्घाटित न हो जाए और ताज का प्रतिस्पर्द्धी न बनाया जा सके।

---

१. दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया, बम्बई, दि. ४-४-१९६५ के अंक में 'ताजमहल के निर्माता—प्राचीन रहस्य उद्घाटित', शीर्षक से मुहम्मद खाँ का एक लेख प्रकाशित हुआ।

"किन्तु अन्ततः बंगलौर-निवासी मियाँ महमूद खाँ के पुस्तकालय में प्राप्त एक पुस्तक की पाण्डुलिपि से उस रहस्य का उद्घाटन हो ही गया। ताजमहल के निर्माण का गौरव निश्चितरूपेण भारत को ही प्राप्त है। उसका निर्माण लाहौर-निवासी वास्तुकार परिवार के अहमद और उसके तीन पुत्रों ने किया। फारसी लिपि में लिखी गई फारसी गद्य की उस पुस्तक का लेखक है लत्फुल्ला महंदिस जो स्वयं वास्तुकार के तीन पुत्रों में से एक था, पाण्डुलिपि लगभग ३०० वर्ष पुरानी अर्थात् शाहजहाँ के शासनकाल के अन्तिम वर्षों की है।

"इन विषयों के अधिकारी विद्वान्, शिबले अकादमी आजमगढ़ के प्रधानाचार्य सैयद सुलेमान नदवी ने घोषणा की है कि संसार में यही एकमात्र प्रति उपलब्ध है।

"पुस्तक स्वयं महंदिस के अपने हाथों से लिखी है। जैसा कि विभिन्न पद्यों से परिलक्षित होता है, लेखक शाहजहाँ के बड़े लड़के दाराशिकोह का प्रबल अनुसरणकर्ता था। और अब दाराशिकोह को पराजित कर औरंगजेब बादशाह बन गया तो लेखक एवं उसके परिवार को बहुत हानि उठानी पड़ी। उसने बादशाह के समक्ष अपनी याचिका (पृष्ठ ६७) प्रस्तुत की किन्तु जब उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया तो उसके परिवार को लुक-छिपकर दरिद्रतापूर्ण (पृष्ठ ६८) जीवन व्यतीत करना पड़ा।

"ऐसा प्रतीत होता है कि औरंगजेब के भय के कारण उस परिवार ने पुस्तक को बड़ी सावधानी से छिपाकर रखा था, क्योंकि उसमें दाराशिकोह की प्रशंसा में पद्य थे। कालान्तर की तिथियों तथा पुस्तक के आखिरी पृष्ठ से विदित होता है कि उसे ऐतिहासिक व्यक्ति नवाब इब्राहीम खाँ हजबर जंग, प्रसिद्ध मुसलमान सैनिक अधिकारी जो 'गर्दी' उपनाम से विख्यात थे तथा १७६१ के पानीपत के युद्ध में जिन्होंने अहमदशाह अब्दाली के विरुद्ध मराठों का साथ दिया था, उनके निजी पुस्तकालय में लाकर रखा गया था। वह पुस्तक वंशानुक्रम से वर्तमान परिवार के अधिकार में आई, किन्तु उसकी ओर तब तक किसी का ध्यान नहीं गया, जब तक विख्यात इतिहासकार, लेखक एवं मुआरिफ (लेखक-संघ तथा शिबली अकादमी, आजमगढ़, उ. प्र. का मासिक मुखपत्र) के सम्पादक सैयद सुलेमान नदवी ने इसकी खोज न की और उससे प्राप्त सामग्री एकत्रित कर ताजमहल के निर्माता शीर्षक से एक बड़ा लेख तैयार करके उसे पंजाब यूनिवर्सिटी में पढ़ न लिया।

"लेख में वर्णित पुस्तिक के दो पृष्ठों के पदों में लेखक शाहजहाँ की संस्तुति

करता है और अपने पिता अहमद को 'नदर-उल-असर' (संसार में विलक्षण) सर्वोच्च शिल्पी, रेखाओं का ज्ञाता, खगोलशास्त्री तथा महान् कलाकार कहता है, उसे शाहजहाँ के राजकीय आदेशानुसार राजकीय वास्तुकार के रूप में नियुक्त किया और वह आगरा में ताजमहल तथा दिल्ली में लाल किला का निर्माता था। ताज के निर्माण के दो वर्ष बाद १६४९ में उसकी मृत्यु हो गई। लेखक, उसके पुत्र तथा ताजमहल के सहनिर्माता ने उसके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण की।''

उपरिलिखित विवरण के अनुसार ताजमहल का निर्माण-कार्य अर्जुमन्द बानू बेगम की मृत्यु के १६ से १७ वर्ष की अवधि में पूर्ण हो गया था न कि १२, १३ या २२ वर्ष में जैसा कि पूर्ववर्ती विवरणों में उल्लिखित है।

हम लेखक मियाँ मुहम्मदखान से सहमत हैं कि ''वास्तुकारों की खोज में परिश्रमपूर्वक किए गए प्रयत्नों के बावजूद, जिन्होंने उसकी योजना बनाकर 'संगमरमर के स्वप्न' को मूर्तरूप दिया, उनका परिचय अभी भी रहस्य ही बना हुआ है।''

इसका अभिप्राय यह हुआ कि उपरि उद्धृत विश्व ज्ञान-कोश में जो नाम दिए गए हैं, उन्हें किसी ने भी विश्वसनीय नहीं माना। यदि वे नाम विश्वसनीय मान लिये जाते तो फिर कोई भी व्यक्ति 'वास्तविक' नाम की खोज करने का कष्ट नहीं उठाता। यह खोज कभी भी समाप्त नहीं होगी, क्योंकि यह गलत दिशा में की जा रही है। यह कभी न समाप्त होनेवाली खोज स्वयं इस बात का प्रमाण है कि शाहजहाँ ने ताजमहल नहीं बनवाया। यदि उसने वास्तव में ताजमहल बनवाया होता तो वास्तुकारों के नाम तथा अन्य वैध तथ्य उसके दरबारी इतिहास में स्थान अवश्य पाते।

यद्यपि विश्व ज्ञान-कोशों में ताजमहल का वर्णन करते हुए अनधिकृत तथा विभिन्न नाम दिए गए हैं, किन्तु हम उन विश्व ज्ञान-कोशों को दोष नहीं देते। क्योंकि उनके विवरण उन असंख्य काल्पनिक एवं परस्पर विरोधी मुस्लिम विवरणों पर आधारित हैं जिनका मुहम्मद अमीन कजविनी के बादशाहनामे, अब्दुल हमीद लाहौरी के बादशाहनामे, इनायत खाँ के शाहजहाँनामे, मुहम्मद वारिश के बादशाहनामे, मुहम्मद सलीह कम्बू के अमल-ए-सलीह, मुहम्मद सादिक खान के शाहजहाँनामे, मुहम्मद शरीफ हनीफ के मजलिस-उस-सलातिन, मुफज्जल खाँ के तारीख-ए-मुफज्जली, बख्तावर खाँ के मीरात्-ए-आलम तथा उसी के मिरातां-ए-जहाँनामे, अजीजुल्ला के जीनात-उल-तवारीख और राय भरत मुल्ला के लुब्बत-

तवारीख-ए-हिन्द और दीवान-ए-अफरीदी में उल्लेख है।

सर एव. एम. इलियट और प्राय: सभी पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार उपरलिखित सभी मुस्लिम इतिहास 'अविवेक एवं स्वार्थपूर्ण धोखा' है।

विश्व ज्ञान-कोशों के रचयिता इन 'घोखों' के आश्रित थे। अत: इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि वे तथा उनसे प्रभावित उनके पाठक भी, न केवल की ताजमहल की मौलिकता अपितु सम्पूर्ण मध्ययुगीन इतिहास के सम्बन्ध में बुरी तरह छले गए हैं।

मियाँ मोहम्मद खाँ, जिसके लेखक पर हम इस अध्याय में टिप्पणी कर रहे हैं, उस पर आने पर हम उसको यह उल्लेख करते हुए पाए जाते हैं कि ''वास्तुकारों के सम्बन्ध में असंगत अनुमान लगाए गए जैसे कि उनका मूल बाहर होने के कारण वे विदेशी थे।'' इसमें हम थोड़ा-सा संशोधन करना चाहेंगे। 'असंगत अनुमान' का प्रयोग न केवल विदेशी नामों के लिए अपितु शाहजहाँ कालीन—उनमें स्वदेशी भी सम्मिलित हैं, सभी के लिए किया गया है। इस प्रकार, स्थानीय मुसलमान (या इस विषय में हिन्दू भी) जिनके नाम उल्लिखित हैं, वे सभी मिथ्या अनुमानों की उपज हैं।

हम पूछते हैं कि जब शाहजहाँ का अपना दरबारी इतिहास-लेखक किसी भी शिल्पकार का उल्लेख नहीं करता है तो किसी को क्या अधिकार है कि वह मिथ्या अनुमान लगाए?

मियाँ मुहम्मद खाँ लिखते हैं, ''यहाँ तक कि बर्नियर भी एक जनश्रुति का उल्लेख करता है कि वास्तुकार की इसलिए हत्या करवा दी गई ताकि इसकी कला उद्घाटित न हो जाए और ताज का कोई प्रतिस्पर्द्धी न बना दिया जाए।''

यहाँ हम इतिहास के सभी पाठकों एवं छात्रों को बताना चाहते हैं कि भारत में मुस्लिम शासन के समय पाश्चात्य पर्यटकों की एक कठिनाई को वे स्मरण रखें। मुस्लिम दरबार, षड्यन्त्र, लूट-खसोट, हत्या के केन्द्र होने के कारण वहाँ झूठ और अफवाहों के अतिरिक्त अन्य कुछ होता ही नहीं था। यहाँ तक कि साधारण वार्तालाप में भी धोखा और झूठ ही होता था। पाश्चात्य पर्यटक जो मुस्लिम दरबारों में आते थे, वे उन चाटुकार दरबारी उपजीवियों के मुख से सुने अपने प्रश्नों के असत्य और कल्पित उत्तर ही लिखने पर विवश थे।

इसलिए जब बेचारे बर्नियर ने ताजमहल के मुख्य निर्माता को दिखाने के

लिए कहा तो उसे यह कहकर प्रभावी ढंग से चुप करा दिया गया कि कहीं वह शाहजहाँ के किसी प्रतिद्वंद्वी के लिए वैसा ही कोई ताजमहल न बना दे, इसलिए उसकी हत्या करवा दी गई। इस भद्दे तर्क को पढ़कर सहस्रों प्रश्न हमारे मस्तिष्क में उभर आते हैं।

निःसन्देह ऐसी स्थिति में हम स्वीकार करते हैं कि जिस प्रकार ताजमहल का काल्पनिक निर्माता जिस सुविधा के लिए घड़ लिया गया उसी के लिए उसकी हत्या भी करवा दी गई। लेखकगण अपनी रचनाओं में विचित्रता और विविधता उत्पन्न करने के लिए अपनी लेखनी की नोक से अपने कुछ पात्रों को जन्म देते हैं, और फिर मरवा भी देते हैं। इसलिए कोई कारण नहीं कि शाहजहाँ के दरबारी चापलूस लेखक इस कला में क्यों पिछड़े रहते?

एक प्रश्न यह भी उठता है कि बर्नियर क्या कम-से-कम मारे गए वास्तुकार का नाम ही क्यों नहीं बता दिया गया जिससे कि वह भावी पीढ़ी के लिए कम-से-कम उल्लेख तो कर जाता? या कहीं ऐसा तो नहीं कि उसके नाम तक की हत्या करवा दी गई थी?

दूसरा प्रश्न है, ताजमहल का निर्माण का मखौल है कि कोई भी व्यक्ति निश्चय करे और उसी वास्तुकार को दूसरा ताजमहल बनाने पर नियुक्त कर ले? शाहजहाँ ऐसी सम्भावना से क्यों भयभीत था? किसके पास पैसा था जो दूसरा ताजमहल बना ले? परवर्ती पृष्ठों में हम यह सिद्ध करेंगे कि स्वयं शाहजहाँ के पास भी इतना पैसा नहीं था कि उसका आधा भी सुन्दर, भव्य एवं विशाल प्राचीन हिन्दू मन्दिर-प्रासाद जो कि आज हमको ताजमहल बताया जाता है, बनवा सके।

तीसरा प्रश्न है कि क्या शाहजहाँ गलियारे में कोई खेल खेल रहा था या एक घटिया, केवल मात्र वास्तुकृति के नमूने के विशेषाधिकार की इच्छा करता था कि जिससे कि कोई अन्य दूसरा ताजमहल बनाने का अधिकार न जता सके, और क्या वह वास्तव में अतीवरूपेण शोकातुर भी था? एक बार तो हमें बताया गया (टैवर्नियर द्वारा) कि शाहजहाँ ने जनता का मन जीतने के लिए मुमताज़ को बाजार के निकट दफनाया। उसके बाद हमें बताया गया कि उसने वास्तुकार की इसलिए हत्या कर दी कि वह कहीं किसी वैसे ही बड़े मुगल को उपकृत करने के लिए प्रतिस्पर्द्धी स्मारक न बना दे। यह सब हमें आश्चर्यचकित कर देता है कि शाहजहाँ कोई प्रतिष्ठित बादशाह था या कि शेक्सपियर के नाटकों में विवेचित कोई विदूषक,

जिसका एक हाथ तो (मरणासन्न) मुमताज़ की नाड़ी पर हो और आँखें प्रशंसा प्राप्त करने के लिए जनता की ओर।

तदपि एक अन्य प्रश्न है कि शाहजहाँ इतना सुकोमल हृदय था कि अपनी सारी सम्पत्ति अपनी पत्नी का स्वप्निल मकबरा बनवाने में व्यय कर दे और फिर वह सहसा ऐसा वन्य और क्रूर बन जाए कि जिस वास्तुकार ने उसके स्वप्न को साकार किया उसी की हत्या करवा दे?

अन्य संदेह जो उठता है वह है जब शाहजहाँ ने अपनी सारी सम्पत्ति एक शव को अनश्वर बनाने के लिए व्यय कर दी तो फिर क्या उसने अपने मन में यह पहले ही ठान लिया था कि वह आजीवन फटे-पुराने कपड़े पहनता रहेगा?

ये इस प्रकार की असीम असंगतियाँ हैं जिनका यथार्थ शोध विश्वविख्यात इतिहासकारों को करना चाहिए।

भारतीय इतिहास-लेखन में जिस मात्रा में छलना का प्रवेश हुआ है वह बड़ी ही आश्चर्यकारक है।

गुप्तचरीय अन्वीक्षा, विधिवेत्ता सदृश प्रश्न पद्धति, तार्किक संगतियाँ और ऐसे अन्य सब निदेशक सिद्धान्त जो रीतिशास्त्र रेनियर वाल्श तथा कौलिंगवुड सदृश सुविख्यात जनों ने सुझाए हैं उनकी पूर्णतया उपेक्षा कर दी गई है और हमें ऐसा इतिहास पढ़ने के लिए दिया गया जिसको साधारण सूक्ष्म प्रश्न के आधार पर टुकड़े-टुकड़े किया जा सकता है।

उक्त लेखक मियाँ मुहम्मद खान दावा करता है कि 'अन्ततः रहस्य उद्घाटित हो गया।' हम चाहते हैं कि वास्तव में उसे वह रहस्य प्राप्त हो गया होता। हम उसके दावे के इस भाग को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं कि ताजमहल के निर्माण के सम्बन्ध में अब तक जो विवरण अथवा लेख किसी अन्य वास्तुकार की ओर संकेत करते हैं वे मिथ्या हैं; किन्तु उसके दावे का दूसरा भाग कि उसका कथन इस सम्बन्ध में अन्तिम है, हमें भय है कि यह स्वीकार्य नहीं हो सकता।

तदपि बंगलौर-निवासी मुहम्मद खाँ के पुस्तकालय में प्राप्त पाण्डुलिपि की खोज को हम विशेष महत्त्व देते हैं, क्योंकि इससे हमारी खोज जो बहुत पहले की थी, को सुदृढ़ समर्थन प्राप्त होता है। हमारा दृढ़ मत है कि अब तक किसी इतिहासकार अथवा विश्वविद्यालय ने यह साहस नहीं किया कि ताजमहल के निर्माण से सम्बन्धित शाहजहाँ की अधिकृति पर समस्त भ्रान्त कथनों अथवा

उल्लेखों को एक स्थान पर संगृहीत कर सके। कोई भी इस कार्य की सफलता की आशा नहीं कर सकता। यह तो ठीक वैसा होगा जैसा कि जालसाजी के गम्भीर गर्त को नापने अथवा किसी गल्प सागर को सीमित करने का दुष्प्रयास।

अत: जो मियाँ मोहम्मद खान ने खोज की है वह और कुछ नहीं अपितु एक अन्य कपोल-कल्पित विवरण है। इस प्रकार के कितने ही विवरण संसार के किसी भी भाग में खोजे जा सकते हैं, क्योंकि कौन जानता है कि पिछले ३०० सालों के मध्य ताजमहल के निर्माण पर शाहजहाँ की अधिकृति के सम्बन्ध में कितने ही लोगों ने अपनी कलम चलाई किन्तु वे भी मात्र मन-गढ़न्त विचार ही प्रकट करके रह गए।

उक्त लेख में स्वयं इस प्रकार के संकेत हैं कि जिससे उसके असत्य होने का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। उक्त पाण्डुलिपि में झूठे और उलझनपूर्ण विवरणों का ऐसा समूह है कि जिससे एक मुगल राजकुमार की प्रशंसा करना तथा लेखक के पिता और दो भाइयों सहित स्वयं ताजमहल के प्रमुख निर्माता का झूठा श्रेय अर्जित करना है। और यह तथ्य कि औरंगजेब के भय से उस पाण्डुलिपि को किसी गुप्त स्थान पर छिपाने आदि की बात से यह सिद्ध होता है कि लतफुल्ला खाँ ने तोता-मैना के किस्सों की भाँति, जो कि अन्य मुसलमानी विवरणों से किंचित भी रोचक नहीं, उसने भी एक षड्यन्त्र रचा।

औरंगजेब इतना काँइया, निर्मम और निर्बुद्धि बादशाह था कि वह किसी प्रकार की कल्पना और गल्पयुक्त दावे को सहन कर ही नहीं सकता था। जब वह अपने वैयक्तिक अनुभव से (आधुनिक इतिहासकारों की भाँति नहीं) जानता था कि ताजमहल एक अधिकृत हिन्दू प्रासाद है तो कौन मुसलमान शिल्पकार या वास्तुकार यह कहने का साहस कर सकता था कि वह उसका निर्माता है? यही कारण है कि लतफुल्ला ने अपनी बेगारी के क्षणों में कुछ परसियन पद्य लिखे और उन्हें किसी स्थान पर छिपा दिया जिससे कि भावी पीढ़ी धोखे में आ जाए। वह कोई बहुत गलत था ऐसा प्रतीत नहीं होता, क्योंकि जब हमने उसके विवरण देखे तो हमें उस पर विश्वास करने के लिए कहा गया कि ताजमहल के सम्बन्ध में यही अन्तिम एवं निर्णायक है। परन्तु खेद है कि उसका यह सद्य:प्राप्त कथन भी भावी पीढ़ी ने बड़े बेमन से देखा और गरम ईंट की भाँति परे फेंक दिया। यह कोई भी प्रभाव उत्पन्न करने में असफल रहा। फिर दूसरी प्रकार की वह आशा ही क्या कर सकता था? शाहजहाँ द्वारा ताजमहल बनाए जाने से सम्बन्धित किसी भी कथन को प्रश्नों की

बौछार सहनी पड़ेगी, इस प्रकार लतफुल्ला महंदिस का दावा भी अप्रभावित भावी पीढ़ी ने बिना उस पर किसी प्रकार का विचार-विमर्श किए ही, चुपचाप इतिहास की नाली में डाल दिया है।

तदपि लतफुल्ला के विवरण की उपयोगिता पर दो दृष्टियों से विचार करने को तत्पर हैं। उसके अधिकारपूर्ण दावे को हम उसी के समान अन्य काल्पनिक विवरण के साथ इतिहास के क्षेत्र से बाहर खदेड़ने के लिए लगुड़ रूप में प्रयोग कर सकते हैं।

उसका कोई दूसरा उपयोग है कि उसके इस दावे को स्वीकार करने में हमें कोई हानि नहीं कि वह, उसके दो भाई तथा उनका पिता शाहजहाँ द्वारा नियुक्त वे श्रमिक होंगे जिन्होंने अधिग्रहीत हिन्दू प्रासाद को कब्रगाह में परिवर्तित करने के लिए कब्र की खुदाई, पत्थरों की नक्काशी, मचान की बँधवाई या दीवारों पर कुरान की आयतें खोदने का कार्य किया हो।

यहाँ हम यह भी स्वीकार करते हैं कि ताजमहल के निर्माण पर विभिन्न विवरणों एवं पुस्तकों में जो अनेक नाम प्राप्त होते हैं वे इस अर्थ में सत्य अथवा यथार्थ हो सकते हैं कि उन्होंने उस हिन्दू प्रासाद को मकबरे में परिवर्तित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही हो, क्योंकि उपरिलिखित विकृतीकरण की प्रक्रिया में हजारों व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ सकती थी जिसमें से कुछ सौ नाम ही प्रकाश में आए, इसलिए कोई कारण नहीं कि वे नाम असत्य हों।

किन्तु उन पर जो क्रिया थोपी जा रही है वह कल्पित है। यही कारण है कि विगत ३०० वर्षों से ताजमहल के वास्तविक निर्माता को लेकर कभी एक नाम और फिर दूसरे नाम का नकाब पहनाकर सफल खेल खेला जा रहा है।

विभिन्न विवरणों में उल्लिखित सभी नामों को उन लोगों के स्वीकार करते हुए कि जिन्होंने प्रासाद को मकबरे में परिवर्तित करने में सहयोग दिया है, हम एक बार फिर कहना चाहेंगे कि किस प्रकार सर्वोपरि सत्य विभिन्न गल्पों और कल्पनाओं में तारतम्य बिठलाने में सक्षम है। किसी भी अभिनव ऐतिहासिक अन्वेषण की यह एक परीक्षा है। नई खोज, यदि वही वास्तविक उत्तर है तो, पूर्ववर्ती विभिन्न विवरणों में प्राप्त बिखरे सूत्रों में परस्पर साम्य स्थापित करे।

एक अन्य भ्रान्त विवरण

अपनी योजनानुसार, पाठकों को ताजमहल के मौलिक निर्माण से सम्बद्ध अनेक पारम्परिक एवं भ्रामक विवरणों के नमूने के रूप में उदाहरणों में परिचित कराने के लिए हम यहाँ 'दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया' में प्रकाशित एक अन्य लेख[1] के उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं। लेख इस प्रकार आरम्भ होता है :

"जब ताजमहल का निर्माण हुआ था तो जो बहुत से यांत्रिक उपकरण आज उपलब्ध हैं वे तब नहीं थे। तो भी इसके निर्माण-कार्य में जिस असाधारण बुद्धिकौशल तथा उच्चकोटि के अभियांत्रिकी श्रम का परिचय दिया है वह मस्तिष्क को चकित करता है।

"जो कारीगर नियुक्त किए गए उनकी बुद्धि और श्रम भी कम सराहनीय नहीं। इस महान् शिल्प स्वप्न को ईंट और गारे से उतारने के लिए ९६७ फीट लम्बे और ३७३ फीट चौड़े क्षेत्र में ४४ फीट गहरा खोदा गया, जहाँ भूगर्भ-स्थित पानी की सतह थी। खोदे गए सारे क्षेत्र को तरल चूने में पत्थर के टुकड़ों को डालकर भरा गया जिससे कि ताजमहल, जामा-यत-खाना और एक मस्जिद, जो सब एक-दूसरे से सटे हुए थे, उनकी नींव को एकसार किया जा सके। लगभग २० हजार व्यक्ति इस कार्य पर नियुक्त किए गए।

"इस नींव पर ३१३ फीट वर्गाकार और 6 फीट ऊँचा, ताजमहल का स्तम्भ-पीठ जिसका बाहरी आवरण संगमरमर के पत्थर और गारे-चूने का बनाया गया था, इस आवरण को टूटे-फूटे पत्थर का आधार तैयार करने के बाद उसकी आकृति के

१. दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया के ३०-१२-१९५१ के अंक में 'ताज़महल के सम्बन्ध में कुछ तथ्य' शीर्षक से प्रकाशित मुहम्मद दीन का लेख।

अनुरूप ऊँचाई तक रखा गया···तब वह संगमरमर का आधार स्थिर किया गया।

"मुख्य अभियांत्रिकी की समस्या थी, उस कार्यकाल में आवश्यक निर्माण-सामग्री को उस ऊँचाई तक पहुँचाना, यह कार्य वर्गाकार लकड़ी के खम्भों को एक साथ बाँधकर अत्यन्त परिश्रम से शीर्ष ऊँचाइयों तक कसकर किया गया। सामान से लदे खच्चर और खच्चरगाड़ियों के आवागमन के लिए ४० फीट चौड़ा घुमावदार चबूतरेनुमा मार्ग बनाया गया जो १×२० के अनुपात में ढलवाँ था। यह घुमावदार मार्ग गुम्बद के चारों ओर घूमता था और यह तब तक स्थिर रहा जब तक कि भूतल से २४० फीट की ऊँचाई तक निर्माण-कार्य सम्पन्न नहीं हो गया। मचान और घुमावदार मार्ग बनाने के लिए विशिष्ट अभियन्ता नियुक्त किए गए तथा ५०० बढ़ई और ३०० लोहार भी इस कार्य पर नियुक्त किए गए। उस घुमावदार मार्ग की लम्बाई ४,८०० फीट थी। संगमरमर के भारी पत्थर चरखियों द्वारा जो कि उस मार्ग में गाड़ी गई थीं, ऊपर ले जाए जाते थे। उनको बैल और खच्चर खींचते थे।

"इस विशाल कार्य के लिए निर्माण-सामग्री अनेक दूरस्थ स्थानों से मँगाई गई थी। संगमरमर का पत्थर राजस्थान के मकराना से प्राप्त किया गया था, जिसके लिए लगभग एक सहस्र हाथी लगाए गए। पत्थर के एक टुकड़े का अधिकतम भार लगभग ढाई टन होता था जिसे एक हाथी सरलतापूर्वक ढो सकता था। चरखियों को चलाने के लिए भी बहुत हाथी लगाए गए थे।

"मचान के लिए लकड़ी काश्मीर और नैनीताल के वनों से लाई गई थी। ईंट तथा अन्य हलकी सामग्री को निर्माण-स्थल तक ले जाने के लिए २,००० ऊँटों और १,००० बैलगाड़ियों की व्यवस्था थी और लगभग १,००० खच्चर उस सामग्री को उठाकर घुमावदार मार्ग से ऊपर ले जाते थे।

"गुम्बद आदि के लिए वांछित संगमरमर को भूतल पर ही साँचे में ढाला जाता था और फिर उसको चरखियों द्वारा ऊपर पहुँचाकर अपेक्षित स्थान पर स्थिर किया जाता था।

"जब मुख्य गुम्बद का कार्य सम्पन्न हो गया उसके बाद संलग्न भवनों तथा सहायक भवनों का कार्य हाथ में लिया गया और उसे भी उसी प्रकार पूर्ण किया गया···

"ताजमहल के चार कोनों पर चार मीनारें हैं···

"यमुना नदी उस ढाँचे से आधा मील दूर थी। जब भवन-निर्माण-कार्य

सम्पूर्ण हो गया तो फिर कृत्रिम रूप से यमुना को ताज के बराबर से बहाया गया जिससे कि उस स्थान की सुन्दरता में वृद्धि हो"

"तत्कालीन मुसलमान लेखकों ने ताजमहल के आयोजकों और निर्माताओं के नामों तथा उसमें प्रयुक्त मूल्यवान पत्थरों के नामों तथा उनकी मात्रा का भी उल्लेख किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मोहम्मद ईसा अफन्दी जो तुर्किस्तान का था, उसका प्रमुख प्रारूपकर्ता एवं शिल्पकार था। निर्माण-कार्य पर जिन अन्य विदेशी लोगों को लगाया गया वे अरब, फारस, सीरिया, बगदाद तथा समरकन्द के थे, और कम-से-कम एक फ्रांसीसी सुनार औस्टीन डी बोरडोक्स था।

"जो बहुमूल्य रत्न इसमें लगाए गए उनमें बगदाद से लाए गए ५४० लाल मणि, ऊपरी तिब्बत से लाए गए ६७० नील मणि, रूस से लाए गए ६१४ हरित मणि, दक्षिण से लाए गए ५५९ गोमेदक मणि तथा मध्य भारत से लाए गए ६२५ हीरे थे। ताज का निर्माण-कार्य १६३२ में प्रारम्भ हुआ था और १६५० तक भी पूर्ण नहीं हुआ था। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ताजमहल की लागत १ करोड़ ५० लाख से अधिक थी जो आज के मूल्य-सूची अंक के आधार पर उसकी दस गुनी होती है। उसमें से दो-तिहाई तो राज्य-कोष से दिया गया था और एक-तिहाई विभिन्न प्रान्तों के राज्य-कोष से दिया गया था। विभिन्न भागों में व्यय किए गए धनराशि के आँकड़े उनसे सम्बन्धित कागज-पत्रों में सावधानी से अंकित किए गए हैं जो आज भी उपलब्ध हैं"

"शाहजहाँ जो अपनी बादशाहत में भव्य था, अपने शौक में भी यह उतना ही भव्य था। अपनी अतिप्रिय प्रेयसी की स्मृति को स्थायी रखने के लिए शाहजहाँ ने यह स्मारक बनवाया। इतिहास में अपने नाम तथा प्रशस्ति के लिए इसके निर्माण का निश्चय किया। ३०० वर्ष बाद आज भी यह शिल्पकला की चरम उपलब्धि के रूप में प्रतिष्ठित है।"

अब हम उपरि उद्धृत लेख का सूक्ष्म परीक्षण करते हैं। जो माप के परिमाण प्रस्तुत किए गए हैं, वे पूर्ववर्ती हिन्दू राजप्रासाद से जो आज हमारे सम्मुख ताजमहल के रूप में स्थित हैं, कभी भी लेकर किसी भी रचना के कलेवर में ठूँसे जा सकते थे।

यह विवरण कि किस प्रकार भव्य भवन बनाया गया, वह स्पष्ट तथा उन समकालीन वास्तुकारों से, जो यह सब देख सकने का दावा करते थे, लिया गया प्रतीत होता है।

जहाँ तक ५०० बढ़ई, ३०० लोहार तथा ऐसे ही अन्य श्रमिकों की नियुक्ति की बात है, उसमें हमारा कोई विशेष आक्षेप नहीं है, क्योंकि विशाल हिन्दू राजप्रासाद को जो कि आजकल ताजमहल है, मुसलमानी मकबरे में बदलने के लिए मचान लगाने में ही इतने श्रमिकों की आवश्यकता पड़ सकती थी।

जब वह वास्तुकारों के परिचय पर आता है, लेख में इस विषय पर कोई नया प्रकाश नहीं डाला गया है। उसमें केवल कुछ पुराने नामों की ही पुनरावृत्ति की गई है और जैसाकि हमने पहले उल्लेख किया है कि वे सब नाम सत्य हो सकते हैं, क्योंकि कम-से-कम उन नामों के व्यक्ति तो रहे ही होंगे जिन्होंने हिन्दू प्रासाद को एक मुस्लिम मकबरे के रूप में परिवर्तित करने में सहयोग दिया था।

और जहाँ तक दूरस्थ यमुना नदी के कृत्रिम रूप से ताजमहल के पार्श्व में बहने की बात है, इस सम्बन्ध में जितना कहा जाय वह कम है। क्योंकि मुस्लिम शासन में इस प्रकार की कला का सर्वथा अभाव था। निरन्तर लूट-खसोट और नरसंहार में संलग्न मुसलमानों के शासनकाल में जो थोड़ी पाठशालाएँ थीं भी तो उनमें केवल कुछ अशिक्षित हठधर्मियों को कुरान की शिक्षा ही दी जाती थी। हम पुनः यही स्पष्ट रूप से कहना चाहते हैं कि प्राचीन अथवा मध्ययुगीन मुस्लिम साहित्य में वास्तुकला पर एक भी पुस्तक उपलब्ध नहीं है जिससे यह दावा सिद्ध हो सके कि वे वास्तुविद्या या नागरिक अभियान्त्रिकी के विषय में भी कुछ जानते थे। इसके विपरीत हम भारतीय हिन्दू शिल्पकला की अपने ग्रन्थों की ऐसी सूची प्रस्तुत कर सकते हैं जिसमें न केवल इस विद्या के सभी पहलुओं पर विचार किया गया है अपितु जो आज के युग में भी उस समय की हिन्दू शिल्पकला की श्रेष्ठता सिद्ध करती है। आश्चर्य नहीं कि प्राचीन हिन्दू शिल्पकला तथा अभियान्त्रिकी-कौशल का ही यह सुपरिणाम है कि अजमेर, जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर के पहाड़ी दुर्गों तथा कोणार्क, खजुराहो, सोमनाथ, अजन्ता, एलोरा, मदुरा, मार्तण्ड और मोधेरा आदि जैसे कुछ की विस्मयजनक भव्यता आज भी उसी रूप में विद्यमान है।

हिन्दू राजप्रासाद और दुर्ग सदा ही दो कारणों से नदियों के किनारे बसाए जाते थे। प्रथमतः नदी कम-से-कम एक ओर तो स्वाभाविक खाई का कार्य करती ही थी और दूसरे वह कभी न समाप्त होनेवाले पानी का स्रोत होती है। राजा मानसिंह का प्रासाद (जो उन्हें उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था और यह आवश्यक नहीं कि उन्होंने ही बनवाया था) इसी विचार से नदी के किनारे बनवाया गया था। वही राजप्रासाद वर्तमान ताजमहल

है। इसलिए नदी के प्रवाह को बदलने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता।

एक हजार बैलगाड़ियों, एक हजार खच्चरों और दो हजार ऊँटों की संख्या ऐसी गोलमोल है कि जिस पर विश्वास किया जा सके। तदपि कुछ काल्पनिक अतिशयोक्तियों को छोड़कर हम उन्हें इस रूप में स्वीकार कर सकते हैं कि वे सभी पशु और गाड़ियाँ उतने बड़े प्रासाद को तोड़-फोड़कर मकबरे के रूप में बदलने के लिए प्रयुक्त किए गए होंगे।

जो हो, लेखक द्वारा प्रयुक्त मीनार शब्द पर हमें आपत्ति है। ताजमहल में स्तम्भ तो हैं किन्तु मीनार नहीं। इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। मुस्लिम मीनारें भवन के कन्धों से आरम्भ होती हैं। हिन्दू स्तम्भ भवन की सतह से ही प्रारम्भ होते हैं जैसे कि तथाकथित कुतुबमीनार (दिल्ली), तथाकथित हिरनमीनार (फतेहपुर सीकरी), ताजमहल के संगमरमरी स्तम्भ और चित्तौड़ दुर्ग में राणा कुम्भा की मीनार हैं।

मियाँ मोहम्मद दीन दावा करता है कि "भवन आज भी अपने निर्माण की समाप्ति के दिन जैसा ही सुन्दर और नवीन दिखाई देता है।" हम लेख के विद्वान् लेखक से पूर्णतया सहमत हैं। चूँकि वह संकेत करता है कि ताजमहल का निर्माण शाहजहाँ के काल में हुआ, हम इससे असहमत हैं और कहते हैं ताजमहल के नाम से प्रासाद का अस्तित्व भारत में मुसलमानों की घुसपैठ से शताब्दियों-पूर्व से ही विद्यमान था।

लेख के अन्तिम भाग में लेखक हमें बताता है कि ताजमहल में प्रयुक्त बहुमूल्य रत्न जिनमें बगदाद से लाए गए ५४० लाल मणि, ऊपरी तिब्बत से लाए गए ६७० नील मणि आदि-आदि हैं। इस सन्दर्भ में हम केवल इतिहास के मेधावी विद्वान् सर एच. एम. इलियट को उद्धृत करना चाहेंगे। इलियट कहता है[१]—"स्वर्ण, रजत तथा बहुमूल्य रत्नों के सम्बन्ध में जिस बनावटी सूक्ष्मता और सफाई के साथ विवरण दिया गया है तथा जिस आश्चर्यमय ढंग से अतिशयोक्तियों के साथ राशि की यथाक्रम गणना की जाती है उससे उनके मस्तिष्क में समाविष्ट षड्यन्त्र-रचना के सुदृढ़ प्रमाण का आभास होता है।"

यद्यपि सर एच. एम. इलियट के उत्तम विचार जहाँगीरनामे के कतिपय तथ्यों

१. इलियट तथा डौसन का इतिहास, खण्ड ६, पृष्ठ २५७

के प्रति व्यक्त किए गए हैं, तदपि सभी मुस्लिम इतिहासों पर लागू होते हैं।

इसलिए हम लेख के लेखक मियाँ मोहम्मद दीन और अन्य पाठकों को कहना चाहते हैं कि ताजमहल में प्रयुक्त बहुमूल्य रत्नों के सम्बन्ध में जिन सूत्रों से आँकड़ों की कल्पना की गई है उनसे उनके मन में सन्देह उत्पन्न होना चाहिए। सर एच. एम. इलियट जैसे विवेकशील और विलक्षण इतिहासकार अपनी अन्तर्दृष्टि से अब उस कपोलकल्पना का पर्यवेक्षण कर सके हैं।

उक्त लेख का लेखक जिन लेख-प्रपत्रों से प्राप्त आँकड़ों के आधार पर ताजमहल पर व्यय हुई राशि का निर्देश करता है वह केवल इस तथ्य के उल्लेख से सहज ही षड्यन्त्र सिद्ध हो सकता है कि व्यय हुई राशि के सम्बन्ध में विभिन्न विवरणों से प्राप्त आँकड़े चालीस लाख रुपए से नौ करोड़ रुपए तक हैं। इन्हीं के मध्य वह स्रोत भी है जिसके आधार पर मियाँ मोहम्मद दीन ने उद्धृत किया है कि लागत लगभग एक करोड़ पचास लाख रुपए होगी।

उनका यह लिखना कि 'लकड़ी के खम्भों को परस्पर बाँधकर' दूसरा ऐसा विवरण है जो मियाँ मोहम्मद दीन के स्रोत की अनधिकृतता को धोखा देता है, क्योंकि टैवर्नियर ने पहले ही बता दिया है कि लकड़ी प्राप्त न होने के कारण सभी मचान ईंटों के बनाए गए और यही कारण है कि सम्पूर्ण कार्य की अपेक्षा मचान बाँधने का खर्च अधिक बैठा।

इन सबसे ऊपर मियाँ मोहम्मद दीन के लेख में सबसे बड़ी कमी यह है कि अपने आँकड़ों एवं तथ्यों के प्रमाणस्वरूप उसने कोई अधिकृत उद्धरण प्रस्तुत नहीं किए हैं।

बादशाहनामे का विवेचन

जो उदाहरण पिछले अध्यायों में उद्धृत किए गए हैं वे पाठकों को यह विश्वास दिलाने के लिए पर्याप्त होंगे कि ताजमहल से सम्बन्धित शाहजहाँई कथाएँ भ्रमजाल हैं। ज्यों-ज्यों आप उनकी गहराई में जाएँगे, त्यों-त्यों आप भ्रम में फँसते जाएँगे, जैसाकि पहले बताया जा चुका है वे एक ऐसा अथाह गर्त निर्माण करती हैं कि जिसकी थाह पाना किसी के लिए संभव नहीं है। अपने दैनंदिन के अनुभव से हम जानते हैं कि कोई आधारभूत असत्य बाद के असत्य द्वारा न तो छिपाया जा सकता है और न सत्य सिद्ध किया जा सकता है। ऐसा असत्य बढ़ता हुआ भ्रमजाल का निर्माण कर देता है, ताजमहल के सम्बन्ध में ऐसा ही कुछ हुआ है।

ताजमहल सम्बन्धी शाहजहाँई कथा के उन सभी विभिन्न स्रोतों का सर्वेक्षण करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि शाहजहाँ का दरबारी इतिहास-लेखक, मुल्ला अब्दुल हमीद लाहोरी, जो यह स्वीकार करता है कि ताजमहल हिन्दू प्रासाद था, ही केवल एक ईमानदार है।

अतः हमें उसके इतिहास का किंचित् सूक्ष्मरूपेण निरीक्षण करने दीजिए। ताजमहल के मूल निर्माण के सम्बन्ध में यह सारा भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ, क्योंकि इतिहासकारों ने बादशाहनामे के प्रथम भाग के पृष्ठ ४०३ पर अंकित शब्दों की पूर्णतया उपेक्षा कर दी। कदाचित् उसके शब्दों की उपेक्षा इसलिए की गई कि इतिहासकार ताजमहल को मूलतः प्रेम के स्वप्नलोक की स्मृति मानने का मोह सँजोये हुए थे। अब हम उसको अधिकाधिक ईमानदार और सत्ययुक्त मानते हैं। बादशाहनामे में ताजमहल का जो विवरण दिया गया है उस पर जरा हमें एक और सूक्ष्मता से दृष्टिपात करने दीजिए।

प्रथम प्रश्न जो ध्यान देने योग्य है वह है कि जब पारस्परिक कथन हमें यह

बताता है कि शाहजहाँ ने ताजमहल के निर्माण के लिए जयसिंह से एक खुला मैदान खरीदा और उस पर एक प्रासाद बनवाया, तब मुल्ला अब्दुल हमीद अपने बादशाहनामे के द्वारा निष्पक्षता से हमें बताता है कि वह जयसिंह था जिसे अपने भव्य (मंजिल, आल्त मंजिल, इमारतें आलीशान वा गुम्बजें) गुम्बदयुक्त पैतृक प्रासाद के विनिमय में खुली जमीन प्राप्त हुई थी। हमें यह भी बताया गया कि इस भवन के चारों ओर हरा-भरा (सब्ज जमीनी) विशाल उद्यान था।

यदि शाहजहाँ किसी नव-निर्माण का ही अभिलाषी था तो क्या वह किसी ऐसे स्थान को चुनता जिस पर भव्य प्रासाद विद्यमान था? उस राजप्रासाद को ध्वस्त करना और उसकी नींव उखाड़कर दूसरी भरना बहुत ही विशाल कार्य होता। उस मलबे को उठाना व्ययसाध्य और अत्यन्त श्रमसाध्य होता। ऐसे कार्य में शाहजहाँ अपने समय और धन का अपव्यय क्यों करता जबकि उसके पास दूसरा खुला स्थान था जो कि उसने विनिमय में दिया बताया जाता है? यह विनिमय क्या सिद्ध करता है? क्या यह, यह सिद्ध नहीं करता कि शाहजहाँ यह चाहता था कि जयसिंह अपने लिए दूसरा प्रासाद बनवा ले जबकि शाहजहाँ ने उसका पैतृक प्रासाद अपनी बेगम के लिए बने-बनाए मकबरे के लिए देने को बाध्य किया और इसके साथ ही उसने उसी तौर से एक हिन्दू राजपूत-परिवार को उसके अधिकारों से वंचित करके उसकी अपार सम्पत्ति पर अनधिकृत अधिकार कर लिया? क्या यह मुसलमानों की भारत में स्थायी परम्परा नहीं रही कि वे हिन्दुओं की सम्पत्ति पर अधिकर कर लिया करते थे और क्या शाहजहाँ स्वयं उच्छृंखल व्यवहारकर्ता नहीं था? यह तथा ऐसी अन्य सभी बातों पर हम आगामी किसी अध्याय में प्रकाश डालेंगे।

हम पाठकों का ध्यान मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी द्वारा निर्देशित उस तथ्य की ओर दिलाना चाहते हैं, जिसमें मुमताज़ के शव को बुरहानपुर की कब्र से उखाड़कर बड़ी शीघ्रता से लाया गया जबकि पृष्ठ ४०२ पर किसी के शाही कोपभाजन बनने पर उचित दण्ड प्राप्त करने का उल्लेख है। मुमताज़ का शव लाकर सीधे किसी विशाल हिन्दू प्रासाद के गुम्बद के नीचे दफना दिया गया। इसका क्या अभिप्राय है? लाहौरी कहता है कि अनुमानित लागत (उसको मुसलमानी मकबरे में बदलवाने, अर्थात् कब्र को खुदवाने और भरवाने, कब्र बनवाने, अतिरिक्त सीढ़ियाँ तथा भूमिगत कक्षों को बन्द करवाने, कुरान की आयतें खुदवाने, एक विशाल मचान बनवाने पर) ४० लाख रुपए थी। इस आँकड़े को हम स्वीकार करते हैं केवल

कतिपय अतिशयोक्तियों को छोड़कर, जिन्हें बिचौलिए बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं। उसके बाद लम्बे अन्तराल तक मौन छाया रहता है।

अपने बादशाहनामे के द्वितीय भाग के पृष्ठ ३२२ से ३३० तक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी निर्माण के सम्बन्ध में विवरण और नामों का उल्लेख करता है। वह 'नींव' से प्रारम्भ करता है जिसका सामान्यतया यह अभिप्राय समझा जाता है कि विशाल प्रासाद की नींव रखी गई होगी। कब्र की नींव तो भूमि से ही रखी जाती है, क्योंकि शव धरती में खुदे गड्ढे में ही दफनाया जाता है। उसके इन शब्दों का, कि भूमि की तह तक नींव खोदी गई, केवल यही अर्थ है कि कब्र को मिट्टी तथा गारे आदि से भरा गया।

बादशाहनामे का लेखक लिखता है[१] है कि कब्र (नकली कब्रों सहित) की खुदाई पर पाँच लाख रुपया व्यय किया गया। यह आश्चर्यजनक नहीं है। सम्पूर्ण कार्य की अनुमानित लागत ४० लाख रुपए थी, इसमें से पाँच लाख रुपया जो कब्र और नकली कब्र पर व्यय किया गया, वह निकाल दिया जाए तो कुरान की आयतें खुदवाने (जिसमें विभिन्न भित्तियों और मकबरे की ऊँचाई तक मचान बँधवाने का कार्य भी शामिल है) पर शेष ३५ लाख रुपया व्यय हुआ। इस इकतरफा व्यय के सम्बन्ध में हम टैवर्नियर के इस कथन में पूर्ण समर्थन पाते हैं कि सम्पूर्ण कार्य की अपेक्षा मचान बँधवाने का खर्च अधिक बैठा। कुरान की आयतें खुदवाने और मचान बँधवाने का खर्च कब्र और नकली कब्रों की खुदाई से सात गुणा अधिक है। जैसा कि हमने इससे पहले भी अनेक बार संकेत किया है। मचान बँधवाने में हुआ यह आनुपातिक व्यय स्वयं में पर्याप्त प्रमाण है कि उसकी तुलना में मुख्य कार्य कम महत्त्व का था।

कुछ पाठक कब्रों और नकली कब्रों पर व्यय किए गए पाँच लाख रुपयों को अस्वाभाविक समझ सकते हैं इसलिए वे इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि उस रुपए से कुछ और भी बनाया गया होगा। यह निष्कर्ष अनुपयुक्त है। पहले तो मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने स्वयं ही हमें ठीक बताया है कि राजप्रासाद पर अधिकार किया गया। दूसरे, जैसा कि हम पहले ही संकेत कर चुके हैं कि मुसलमानी आँकड़ों

१. बादशाहनामे के खण्ड २, पृष्ठ ७१४ पर लिखा है—"वा पंज लाख रुपए बर रौजाया मुनव्वरा की बिनाए मानिंद आन बर रुजे जमीन दीदे आसमान ना दीदा।"

की अतिशयोक्तियों तथा अधिक अनुमानों को कम करके ही यथानुरूप अनुमान करना चाहिए, तब शेष राशि होगी, क्योंकि निचले भाग और भूगर्भ की खुदाई तथा कब्र और नकली कब्रों में बहुमूल्य पत्थरों को लगाना और राजप्रासाद की पहले की पच्चीकारी के अनुरूप सुन्दर पच्चीकारी करवाने में अतुल राशि व्यय होना स्वाभाविक है।

शाहजहाँ के अपने दरबारी इतिहास-लेखक के उसके शासन के राजकीय इतिहास बादशाहनामा से निम्न निष्कर्ष की निष्पत्ति होती है :

१. ताजमहल हिन्दू प्रासाद है।
२. इसके चारों ओर एक भव्य और विशाल उद्यान है।
३. विशाल राजभवन-समूह प्राप्त किया गया (यदि ऐसा है तो) और विनिमय में उसे खुली भूमि दी गई।

   यह भी संदिग्ध ही प्रतीत होता है क्योंकि दी गई भूमि का परिमाप और स्थान का कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। अधिक सम्भावना यही है कि जयसिंह को उसके विशाल संपत्तिवाले पैतृक भवन से निकालकर उस पर अधिकार कर लिया हो।
४. हिन्दू प्रासाद में एक गुम्बद था।
५. मुमताज़ का शव बुरहानपुर की कब्र से उखड़वाकर आगरा मँगवाया गया और उसे, ऐसा वे कहते हैं, तुरन्त गुम्बद के नीचे दफनाया गया।
६. अनुमानित व्यय (हिन्दू प्रासाद को मुस्लिम मकबरे में परिवर्तित करने में ४० लाख रुपए था (वास्तविक व्यय अज्ञात है)।
७. उपरिलिखित राशि में से ५ लाख रुपए कब्रों और नकली कब्रों के निर्माण में तथा शेष ३५ लाख रुपए मचान बँधवाने और कुरान की आयतें खुदवाने में खर्च हुए।
८. शिल्पकार और वास्तुकारों का कोई उल्लेख नहीं है, क्योंकि शाहजहाँ द्वारा ताजमहल बनवाया ही नहीं गया था।
९. शाहजहाँ के काल में वह हिन्दू प्रासाद मानसिंह प्रासाद के रूप में जाना जाता था यद्यपि वह उस समय उसके पौत्र जयसिंह के अधिकार में था।

उपरिलिखित तथ्य पूर्णतया सत्य होने से इस सत्य के अनुरूप हैं कि

ताजमहल एक हिन्दू प्रासाद है जिसे मुस्लिम मकबरे में परिवर्तित करने के लिए बलात् अधिग्रहण किया गया।

वास्तुकारों के सम्बन्ध में अनुमान और बहुत कम धनराशि (चालीस लाख रुपए) जो ताजमहल पर व्यय की गई उसके सम्बन्ध में सन्देह आदि-आदि ये सब असंगत और अप्रामाणिक हैं।

ताजमहल की निर्माण-अवधि

इस अध्याय से प्रारम्भ कर हम यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि ताजमहल-सम्बन्धी शाहजहाँ की कथा किस प्रकार अनुमान पर आधारित है। शाहजहाँ द्वारा अपनी पत्नी मुमताज़ की स्मृति में ताजमहल के एक मकबरे के रूप में बनवाए जाने के अनधिकृत अनुमान से प्रारम्भ कर उसके सम्बन्ध में विभिन्न तथ्य विभिन्न लेखकों द्वारा अपनी इच्छानुसार कल्पित किए गए हैं। परिणामस्वरूप इतिहास काल्पनिक गल्पों के बोझ से इतना बोझिल हो गया कि ताजमहल के मूल निर्माण-सम्बन्धी तथ्य एकदम विलुप्त हो गए।

इस अध्याय में हम ताजमहल के निर्माण में लगे वास्तविक समय के प्रश्न पर विचार करना चाहते हैं। यदि शाहजहाँ ने स्वयं ताजमहल बनवाया होता तो किसी प्रकार के अनुमान के लिए कोई स्थान नहीं था क्योंकि तब हमारे पास इतने विशाल कार्य में लगे व्यक्तियों एवं कार्य का आरम्भ से अन्त तक का अधिकृत रिकॉर्ड होता। किसी भी प्रकार के अधिकृत रिकॉर्ड का अभाव सुस्पष्ट विसंगति है। कुछ कागज-पत्र तथा रिकॉर्ड का जिन किन्हीं लेखों में उल्लेख पाया जाता है वे स्पष्टतः जालसाजियाँ हैं, क्योंकि उन पर कोई भी सहजता से विश्वास नहीं कर पाता।

यदि ताजमहल का निर्माण मकबरे के रूप में हुआ होता तो इसके आरम्भ करने की तिथि का साम्य मुमताज़ की मृत्यु-तिथि से होता। किन्तु, हम यहीं से प्रारम्भ करें कि इस महिला की तो मृत्यु-तिथि ही अज्ञात है।

यह है वह, जो श्री कँवरलाल कहते हैं,[१] "मुमताज़ की मृत्यु १६३० में हुई।

---

१. पृष्ठ २९, 'दि ताज' : लेखक कँवरलाल, प्रकाशक आर. के. पब्लिशिंग हाउस, ५७ दरियागंज, दिल्ली, मूल्य ३० रुपए।

उसकी मृत्यु-तिथि ७ जून थी''किन्तु कुछ इतिहासकारों ने इस घटना को गलती से १६३१ में माना है। उसकी मृत्यु-तिथि की गणना में भी मतभेद है, कोई उसे ७ और कोई १७ मानते हैं।''

यदि मुमताज़ शाहजहाँ की अत्यन्त प्रिय रानी होती तो जैसा कि ताजमहल के मूल निर्माण के सम्बन्ध में काल्पनिक विवरण दिए गए हैं, तो क्या यह सम्भव है कि उसकी मृत्यु-तिथि के सम्बन्ध में इस प्रकार का मतभेद होता? किन्तु जैसा कि हम बाद में बताएँगे, उसकी मृत्यु का शाहजहाँ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वह शाहजहाँ के हरम की अनेक बाँदियों में से एक थी। कम-से-कम ४,९९९ में से एक वह भी थी जो शाहजहाँ की कामुकता का शिकार बनने की लालसा करती थी।

मुमताज़ शाहजहाँ की हजारों बाँदियों में से एक थी तो उसकी मृत्यु पर कोई विशेष यादगार बनाने की आवश्यकता नहीं थी।

मुमताज़ की मृत्यु-तिथि अज्ञात होने के कारण हम यह समझ पाने में असमर्थ हैं कि किस तिथि से उन छः महीनों की गणना की जाय जब मुमताज़ का शव बुरहानपुर की कब्र में दफनाया गया। यहाँ तक कि वह 'छः मास' की अवधि भी सम्भवतया अनुमानित ही है, निश्चित नहीं।

यहाँ तक कि आगरा लाए जाने पर भी, हमें बताया जाता है कि मुमताज़ को अगले वर्ष[1] हिन्दू प्रासाद के गुम्बद के नीचे दफनाया गया। इससे उसके दफनाए जाने की तिथि और भी संदिग्ध हो जाती है।

इस मूलभूत अस्पष्टता के बावजूद, यदि विभिन्न इतिहासकार ताजमहल के निर्माण-काल के विषय में एकमत होते तो हम उसे सर्वसम्मत निष्कर्ष स्वीकार कर लेते। दुर्भाग्य से वहाँ ऐसा कोई एकमत नहीं है। देखिए इस सम्बन्ध में कितने मत हैं :

१. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, लिखता है,[2] ''निर्माण कार्य १६३१ में आरम्भ हुआ और जनवरी १६४३ में पूर्ण हुआ।'' इस प्रकार यह अवधि १२ वर्ष से कुछ कम होती है।
२. दि एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका कहता है,[3] ''भवन-निर्माण १६३२ में

---

१. बादशाहनामा, खण्ड १, पृष्ठ संख्या ४०३, 'साले अयान्देह' वाली पंक्ति।
२. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, खण्ड १५, पृष्ठ ३५-३६
३. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, संस्करण, १९६४ खण्ड २१, पृष्ठ ७५८

आरम्भ हुआ···। दैनिक बीस हजार से अधिक श्रमिक नियुक्त किए गए जिससे कि १६४३ तक मकबरा तैयार हो जाय। यद्यपि सारा ताज-परिसर पूर्ण होने में २२ वर्ष लगे।" पहले ज्ञान-कोश के विपरीत यह ज्ञान-कोश दो विभिन्न अवधियों का उल्लेख करता है। एक तो १० से ११ वर्ष का और दूसरा २२ वर्ष का। इस २२ वर्ष की अवधि के विषय में हम यह भी जानना चाहेंगे कि मकबरे के लिए अश्वशाला, आरक्षण-कक्ष तथा अतिथि-गृह जैसे भवन-समूह की क्या आवश्यकता थी? क्या मरणोपरान्त भी मुमताज़ के बुर्का छोड़, बड़ी संख्या में घुड़सवार सैनिकों के संरक्षण में घुड़सवारी करने की सम्भावना थी? क्या वह अतिथियों की भी अपेक्षा करती थी?

३. टैवर्नियर का विवरण सभी मुस्लिम-विवरणों के विपरीत चलता है। जो उपरिउद्धृत ज्ञान-कोशों का आधार बनता है। एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का विवरण वास्तव में टैवर्नियर तथा मुसलमानी विवरणों का मिश्रण है। वह बीस हजार श्रमिक तथा २२ वर्ष की अवधि तो टैंवर्नियर के विवरण से तथा ११ से १२ वर्ष की काल्पनिक अवधि मुस्लिम विवरण से लेता है।

टैवर्नियर कहता है,[१] "उसने अपनी आँखों से इस कार्य को आरंभ और पूर्ण होते देखा है जिसमें २२ वर्ष की कालावधि में २० हजार श्रमिक निरन्तर कार्य करते रहे।···इसकी लागत अत्यधिक थी, केवल मचान बाँधना ही मुख्य कार्य से अधिक व्यययुक्त था···"

यदि यह भी अनुमान लगा लिया जाए कि टैवर्नियर आगरा में १६४१ में आया और निर्माण-कार्य उसके आने के तुरन्त बाद आरम्भ हो गया तो यह १६४१ से १६६३ तक चला। किन्तु शाहजहाँ को १६५८ में उसके पुत्र औरंगजेब ने गद्दी से उतारकर बन्दी बना दिया था। तब किस प्रकार मुमताज़ के मकबरे का कार्य १६६३ तक चलता रहा? अर्थात् शाहजहाँ से राज्य छिन जाने के भी पाँच वर्ष बाद तक? और यदि वास्तव में ऐसा ही हुआ भी तो उन मुसलमानी विवरणों का क्या किया जाए जो यह दावा

१. ट्रैवल्स इन इण्डिया, पृष्ठ १०९-१११

करते हैं कि निर्माण-काल १६४३ में पूर्ण हुआ? तब इस अवस्था में कार्यारम्भ की तिथि की समस्या अधर में लटकी रहती है।

४. मियाँ मोहम्मद दीन ने अपने लेख[१] जिसे हम पहले उद्धृत कर चुके हैं, में कहा है, "ताजमहल का निर्माण-कार्य १६३२ में आरम्भ हुआ था और १६५० तक पूर्ण नहीं हुआ था।" यहाँ हमें पुनः स्वाभाविक अस्पष्टता का सामना करना पड़ता है। प्रतीत होता है कि मियाँ मोहम्मद दीन कार्यारम्भ की तिथि के बारे में सुनिश्चित है। यदि हम सन् १६३२ में कार्यारम्भ स्वीकार कर लें तो टैवर्नियर के कथन का क्या करें जिससे वह दावा करता है कि कार्य उसकी उपस्थिति में आरम्भ हुआ। यदि हम कार्यारम्भ की तिथि मियाँ मोहम्मद दीन की तिथि स्वीकार कर लें तो हमें सोचना पड़ता है कि वह मकबरे की पूर्णता की तिथि के विषय में अस्पष्ट और अनाश्वस्त क्यों है? इसलिए उसका कथन हमें १८ वर्ष की कालावधि बताता है, जिसके सम्मुख बहुत बड़ा प्रश्नचिह्न अंकित है।

५. तदपि एक अन्य विवरण भी प्राप्त होता है जो ताजमहल का निर्माण-काल १७ वर्ष अनुमानित करता है। इसका उल्लेख श्री अरोड़ा की पुस्तक में है।[२] वे लिखते हैं—"शाहजहाँ ने अपने शासनारूढ़ होने के चतुर्थ वर्ष १६३१ में ताजमहल का निर्माण आरम्भ करवाया। दूरस्थ देशों के अनेक कलाविदों ने अनेक नमूने बनाए किन्तु आफंदी का ही नमूना स्वीकार किया गया। उसके आधार पर मुमताज़ के मृत्यु-वर्ष १६३० में ही एक कोष्ठ का नमूना तैयार किया गया है। भव्य मकबरा १६४८ में पूर्ण हुआ।"

यह निश्चय नहीं है कि मुमताज़ की मृत्यु १६३० में हुई। यदि यह अनुमान लगा लिया जाए कि १६३० में उसकी मृत्यु हुई तो यह लगभग वर्ष के अन्त में हुई होगी। इस स्थिति में बादशाह के लिए यह सम्भव है कि उसने अपने स्वप्नलोक के मकबरे का निर्माण सोचा हो, उसके लिए

---

१. दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इण्डिया, दि. ३०-१२-१९५१

२. सिटी ऑफ दी ताज, ले. आर. सी. अरोड़ा, मुद्रक हिबर्नियन प्रेस, १५ पुर्तगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता।

बहुत बड़ी राशि स्वीकृत की गई हो, अपनी योजना की दूर-दूर तक घोषणा की हो, कलाकारों द्वारा योजना बनवाई गई हो, उनको शाहजहाँ के पास भेजा गया हो, उनमें से जैसा कि हमें बताया गया है, उसने एक को स्वीकार किया हो, तब एक कोष्ठाकृति तैयार की गई हो, आवश्यक कर्मचारी एकत्रित किए गए हों, अनेक प्रकार की प्रचुर मात्रा में निर्माण-सामग्री एकत्रित करवाई गई हो, कार्य आरम्भ करवाया गया हो, सबकुछ १६३० में ही, क्या यह सम्भव है? यह मनघड़न्त गल्प है कि इतिहास? क्या शाहजहाँ को अपने शासनारूढ़ होने के दो वर्ष के भीतर इतनी शान्ति और सुरक्षा प्राप्त थी जो वह इस प्रकार के भावुक कार्य को सम्पन्न करा सकता? आधुनिक काल में भी, जबकि आवागमन के साधन सुलभ हैं तथा असंख्य शिल्प तथा अभियान्त्रिकी के विद्यालय विद्यमान हैं, जहाँ प्रवीण शिल्पकला-विशेषज्ञ उपलब्ध हो सकते हैं, क्या इतनी शीघ्रता से यह सब सम्भव है? दुर्भाग्य की बात है कि ऐसी विसंगतियाँ होने पर भी किसी इतिहासकार के मन में वे किसी प्रकार का सन्देह उत्पन्न नहीं करा सकीं।

६. ऐसा ही एक विवरण हमें दि कोलम्बिया लिपिंगकौट गजेटियर[१] में प्राप्त है। और कुछ नहीं तो, अन्यों की अपेक्षा इसमें कुछ निश्चितता है। वह लिखता है—"सुन्दर ताजमहल (१६३०-७८ में निर्मित) संभवतः संसार में सर्वाधिक आकर्षक मकबरा है"" आदि-आदि। जो तर्क ऊपर दिए जा चुके हैं वे सब इस गजेटियर के उल्लेख पर भी लागू होते हैं। जैसे कि यह निश्चित नहीं है कि मुमताज़ १६३० में मरी थी, तब एक ही वर्ष के भीतर मकबरे की योजना करना, उसमें से एक को चुनना, भवन-निर्माण-सामग्री मँगवाना आदि-आदि कैसे सम्भव हो सका?

उपरिलिखित उदाहरण पाठकों के विचारार्थ पर्याप्त हैं कि ताजमहल की निर्माणावधि से सम्बन्धित सभी विवरण परस्पर विरोधी, असंगत, भद्दे एवं अव्यवस्थित हैं।

हमारी अवधारणा के अनुसार वास्तविक सत्य इन सब विरोधाभासों का

---

१. पृष्ठ १९, भाग दूसरा।

भ्रमजाल तोड़कर एक सर्वसम्मत विवरण प्रस्तुत कर सकता है। हमारा स्पष्टीकरण यह है कि जब एक बार मुमताज़ को हिन्दू प्रासाद में दफना दिया गया तब सम्भव है कि उसकी कब्र को ढकने, नकली कब्र बनवाने, कुरान की आयतें खुदवाने आदि की अनियमितता एवं संकोचशीलता के कारण इसमें १०, १२, १३, १७ या २२ वर्ष लग गए हों। जब कभी भी किसी भवन में परिवर्तन, पुनर्नवीनीकरण और मरम्मत (ताजमहल की स्थिति में यह सब अनुपयुक्त हैं) होती है, तो नए मालिक की इच्छानुसार यह कार्य शनैः-शनैः होता है और वर्षों तक चलता है। जो विभिन्न विवरण हमने इससे पूर्व उद्धृत किए हैं, इस दृष्टि से उनके सत्य होने का आभास-सा होता है।

ताजमहल की लागत

ताजमहल की निर्माणावधि की ही भाँति उसकी लागत के विषय में भी अस्पष्टता से ४० लाख से ९ करोड़ तक का अनुमान लगाया जाता है।

१. मुमताज़ के मकबरे से सम्बन्धित लागत के न्यूनतम आँकड़े शाहजहाँ के अपने दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी के हैं। वह केवल प्रारम्भिक अनुमान देता है, वास्तविक खर्च जो हुआ वह नहीं। उसके आँकड़े ४० लाख हैं।[१]

२. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश का अंक शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार के अंक से १० लाख अधिक है। वह हमें बताता है कि ताजमहल पर ५० लाख रुपया व्यय हुआ।[२]

३. मियाँ मोहम्मद दीन कहता है[३]—''ऐसा विश्वास किया जाता है कि इसमें १ करोड़ ५० लाख से अधिक खर्च हुआ है।'' यह अंक १५० लाख का होता है। पाठक उत्तरोत्तर बढ़ते अनुमान पर ध्यान दे सकते हैं। ४० लाख से आरम्भ कर १५० लाख तक इस कल्पना की उड़ान ने हमें पहुँचा दिया है। यहाँ तक कि स्वयं मियाँ मोहम्मद दीन निश्चित नहीं है, वह स्वयं को १५० लाख से 'अधिक' पर सीमित कर लेता है।

४. कीन के अनुसार[४]—''ताजमहल पर हुए व्यय की यथार्थ राशि का उल्लेख

---

१. बादशाहनामा, भाग १, पृष्ठ ४०३ —अन्तिम पंक्ति।

२. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, भाग १५, पृष्ठ ३५-३६

३. दि इलस्ट्रेटेड वीकली आफ इण्डिया, दि. ३०-१२-१९५६

४. कीन्स हैण्डबुक फॉर विजिटर्स टु आगरा एण्ड इट्स नेबरहुड; इ.ए. डंकन द्वारा पुनर्लिखित तथा अद्य:पर्यन्त संशोधित, थैकर्स हैंडबुक ऑफ हिन्दुस्तान की पृष्ठ संख्या १५४

कहीं नहीं है। फिर भी जो अनुमानित आँकड़े उपलब्ध हैं वे बहुत कम और उलझनपूर्ण हैं जो पाँच लाख पौंड से पचास लाख पौंड तक हैं।''

५. स्लीमन ने लिखा है[१]—''मकबरा···और सभी भवनों की लागत रुपये ३,१७,४८,०२,७०० थी।

६. दीवान-ए-आफरीदी[२] एक अन्य इतिहास-ग्रन्थ इसका (व्यय का) अनुमान नौ करोड़ सत्रह लाख रुपए लगाता है।

७. दूसरी ओर, एक अमरीकन श्री बायार्ड टेलर, जो १८५३ में आगरा आया, उसने न्यूयार्क हेराल्ड ट्रिब्यून में लिखा—''एक शेख, जो ताज का रख-रखाव करता है, उसने मुझे बताया कि ताज और उसके साथ अन्य भवनों की लागत सात करोड़ रुपया है, यह निश्चित ही असम्भव है। मेरा विश्वास है कि जो अनुमानित लागत १७ लाख ५० हजार पौंड है उसमें अतिशयोक्ति नहीं है।''[३]

८. श्री कँवरलाल लिखते हैं[४] —''ताजमहल की लागत के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के अनुमान और आँकड़े विद्यमान हैं। एक अनुमान इसे ५० लाख रुपए बताता है। यह अनुमान अब्दुल हमीद लाहौरी के बादशाहनामे के आँकड़े के आधार पर है। इस इतिहासकार के अनुसार ''ताज का निर्माण २२ वर्षों में मकरामत खाँ और मीर अब्दुल करीम के निरीक्षण में हुआ था और इस पर ५० लाख रुपए व्यय हुए थे।'' यह, जैसाकि अनेक अधिकारी, विद्वानों ने ध्यान दिलाया है, बहुत कम है। जबकि उस समय पारिश्रमिक और वस्तुओं का मूल्य अपेक्षया कम था···कुछ अन्य भी हैं···जो साढ़े चार करोड़ रुपए कुल लागत बताते हैं।···अपनी ताज पर अधिकृत पुस्तक में मोहिनुद्दीन अहमद ने एक पाण्डुलिपि का संकेत किया है, जिसमें रुद्रदास खजांची—कोषाध्यक्ष—ने ताज पर हुए व्यय का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें

---

१. रैंबल्स एण्ड रिकलेक्शन्स ऑफ एन इण्डियन औफिशियल, भाग-२, पृष्ठ ५४; लेखक, ले. क. डब्ल्यू. एच. स्लीमन, ए. सी. मजूमदार द्वारा पुनर्प्रकाशित १८८८, मुद्रक, मुफीद-ए-आम प्रेस, लाहौर।

२. कीन की हैंडबुक, पृष्ठ १५४

३. वही।

४. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ १०

> विभागश: और पाई-पाई तक का हिसाब है। कुल लागत ४,१८,४८,८२६ रुपये ७ आने और ६ पाई है।"

उपरिलिखित उद्धरण में यह दावा किया गया है कि मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने ताजमहल निर्माण पर व्यय की राशि ५० लाख बताई है किन्तु हमने पहले ही मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी का उद्धरण देकर बताया है कि वह ४० लाख (चिहाल लाख रुपियाह) मकबरे पर व्यय हुआ बताता है। जो हो यह तो केवल एक साधारण बुद्धि की बात है।

रुद्रदास खजांची द्वारा प्रस्तुत ताजमहल की लागत का रुपए, आने, पाई तक का हिसाब सर एच. एम. इलियट की बुद्धिमत्तापूर्ण टिप्पणी का स्मरण दिलाता है जिसमें उन्होंने लिखा है कि चाटुकार लेखक अपनी उर्वरक कल्पना द्वारा आने-पाई जैसे सूक्ष्म ब्यौरे का उल्लेख इसलिए करते थे ताकि उनके झूठे और कपोल-कल्पित वर्णन भी सत्य जैसे प्रतीत हों।

कोई भी एक बात जैसे ताजमहल की लागत और उसकी निर्माण-अवधि जो इससे पूर्व विचार की गई है, वह पाठकों को यह विश्वास दिलाने में समर्थ है कि किस प्रकार शाहजहाँ की कहानी आदि से अन्त तक कपोल-कल्पित है। हमने देखा है कि बिना किसी आधार के असंख्य लेखक शाहजहाँ द्वारा व्यय की गई राशि का अनुत्तरदायित्वपूर्ण अनुमान लगाने के प्रयत्न में व्यस्त रहे। लेकिन उन सबको दु:खी होना पड़ा, क्योंकि उन सबकी कार्यविधि गलत थी। यदि वास्तव में शाहजहाँ ने ताजमहल का निर्माण कराया होता तो लागत के सम्बन्ध में सारा ब्योरा लिखित रूप में मिल जाता जिससे न अनुमान लगाते और न उसकी आवश्यकता ही पड़ती।

ताजमहल की वास्तविक लागत के अतिरिक्त एक और भी रोचक बात है। ताजमहल देखनेवाले और ताजमहल से सम्बन्धित शाहजहाँ की कहानी पढ़नेवाले अपने भोलेपन के कारण यह विश्वास कर लेते हैं कि शाहजहाँ ने अपनी पत्नी के मकबरे का व्यय-भार उठाया था। किन्तु हमारी यह धारणा कि शाहजहाँ कठोर हृदय, कृपण और निष्ठुर बादशाह था और उसके हरम की पाँच हजार बाँदियों में से एक की मृत्यु का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता था। उपरिलिखित निष्कर्ष तो 'ए गाइड टु दि ताज एट आगरा'[१] पर आधारित है। गाइड में लिखा है—"ताजमहल की लागत पर घरेलू

---

१. ए गाइड टु दि ताज एट आगरा (संकलन), अजीजुद्दीन द्वारा विक्टोरिया प्रेस, लाहौर से मुद्रित, पृष्ठ १४

विवरण ९८,५५,४२६ रुपए का है जो राजाओं और नवाबों ने दिए थे और बादशाहों के अपने कोष से ८६,०९,७६० रुपए थे···।''

उपरिलिखित विवरण में केवल एक दाना मात्र ही सत्य है। वह यह कि अपनी मृत पत्नी को दफनाने के लिए कोई नया मकबरा बनवाने की अपेक्षा शाहजहाँ ने हिन्दू राजा को उसके भव्य भवन से निकाला और इस आघात को और अपमानित करने के लिए उसने राजाओं और नवाबों पर उस प्रासाद को मकबरे का रूप देने के लिए आर्थिक दण्ड भी लगाया।

उपरिलिखित जो दो अलग-अलग लागत राशियाँ दी गई हैं उनका सूक्ष्म निरीक्षण करने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये दोनों ही कल्पित हैं। शाहजहाँ तथा अन्य शासकों द्वारा प्रदत्त राशि को सुगम रीति से प्रस्तुत करने की अपेक्षा ऐसे दो आँकड़े प्रस्तुत कर दिए गए हैं जो ऐसा लगता है कि किसी आधुनिक वाणिज्य-संस्थान के संतुलन-पत्र से उठाकर रख दिए गए हों, जहाँ विभिन्न ग्राहकों द्वारा प्रदत्त राशि को पाई-पाई अंकित किया जाता है।

दूसरी बात यह ध्यान देने योग्य है कि शाहजहाँ द्वारा प्रदत्त राशि मनगढ़ंत हो सकती है। वह बहुत अभिमानी, धृष्ट, अहंकारी, उद्धत, कृपण, निष्ठुर और निर्मम शहंशाह था कि इस प्रकार के दफनाने के कार्य के लिए व्यय करना उसके लिए कठिन था जबकि वह सम्पूर्ण लागत अपने अधीनस्थ शासकों से वसूल कर सकता था। यहाँ तक कि जो राशि अन्य शासकों द्वारा दी गई बताई जाती है वह भी जाली है, क्योंकि शाहजहाँ के अपने इतिहासकार के अनुसार जो राशि व्यय की गई वह सारी ४० लाख से अधिक नहीं थी जबकि ऊपर अन्य शासकों द्वारा दी गई राशि ही एक करोड़ के लगभग है। अत: इससे यह निष्कर्ष निष्पन्न होता है कि मुमताज़ को अधिकृत हिन्दू प्रासाद में दफनाने में यदि ४० लाख रुपया लगा भी है तो वह रुपया भी शाहजहाँ के अधीनस्थ शासकों तथा उनकी प्रजा से खींचा गया रुपया था। मुगल शासक समझते थे कि अपनी प्रजा की गाढ़े परिश्रम की कमाई पर उनका दैवी अधिकार है।

शाहजहाँ द्वारा अपने व्यय पर ताजमहल बनवाना तो दूर की बात है, वह इतना कृपण, क्रूर और निष्ठुर था कि अपहृत हिन्दू-भवन पर कुरान की आयतें खुदवाने और व्यर्थ के कक्षों को बन्द करवाने जैसे साधारण कार्य भी उसने श्रमिकों पर कोड़े बरसाकर और बिना पारिश्रमिक दिए ही करवाए।

यह तथ्य 'ए गाइड टु दि ताज एट आगरा' (अजीजुद्दीन द्वारा लाहौर से प्रकाशित)

नामक पुस्तक के पृष्ठ १४ पर इस प्रकार अंकित है—"श्रमिकों से बलात् कार्य करवाया गया और २० हजार श्रमिकों को नकद बहुत कम दिया गया जिनसे कि १७ वर्ष तक कार्य लिया गया। यहाँ तक कि भोजन-भत्ते के रूप में जो अनाज दिया जाता था उसमें भी लुटेरे अधिकारियों ने निर्ममतापूर्वक कटौती कर ली।"

निर्ममता के अतिरिक्त पाठक उपरिलिखित विवरण में एक छोटी विसंगति की ओर ध्यान दें। जबकि टैवर्नियर ने २० हजार श्रमिकों का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इस कार्य में २२ वर्ष लगे किन्तु उपरिलिखित विवरण में १७ वर्षों का उल्लेख है। यह भ्रम, झूठ और डींग का एक अन्य प्रमाण है जो यह प्रमाणित करता है कि ताजमहल सम्बन्धी विवरण निराधार है।

कीन अपनी हैंडबुक के पृष्ठ १५४ पर लिखता है—"श्रमिक बलात् काम पर लगाए गए और कर्मचारियों को नकद बहुत थोड़ा दिया जाता था जबकि उनका दैनिक भत्ता लुटेरे अधिकारियों द्वारा काट लिया जाता था। अत्यल्प भोजन और अत्यधिक परिश्रम की पीड़ा से वे कालकवलित होते रहते थे। मरणासन्न एवं निराशा की अवस्था में वे मुमताज़ की स्मृति को कोसने में यह कहकर चीखते होंगे—

दया कर हे दीनबन्धु! हम निरीहों पर।
दी जा रही है हमारी बलि बेगम के मजार पर॥

क्योंकि इस प्रकार मरनेवालों का अनुपात अत्यधिक था इसलिए कोई आश्चर्य की बात नहीं कि समय-समय पर भूखे पेट काम करने वाले मजदूरों के जत्थों की खोज की जाती रहती होगी। इसमें भी आश्चर्य नहीं कि जब आयतें खुदवाने का कार्य पूर्ण हुआ हो तब तक कुल मिलाकर काम करनेवालों की संख्या २० हजार तक पहुँच गई हो और उनमें से बहुत सारे भूख और चाबुकों की मार से मरते रहे होंगे। यह भी आश्चर्य नहीं कि इस कारण उस छोटे-से कार्य में विभिन्न विवरणों के अनुसार १० से २२ वर्ष लग गए हों। यह सब स्वाभाविक ही है कि जब वर्ष-भर प्रत्येक दिन सेना की टुकड़ी ऐसे व्यक्तियों की खोज में जाती रहती थी कि जिनसे बेगार करवाई जा सके, तब वे विलाप करते होंगे, विद्रोह करते होंगे, मर जाते होंगे या फिर भाग जाते होंगे। जो शासक दीन श्रमिकों के प्रति दयावान नहीं और उनको पारिश्रमिक न देता हो उससे क्या यह आशा की जाती है कि वह ताजमहल जैसे भव्य-भवन का निर्माण कराए?

वह क्रूर तथा अत्याचारी शासक जिसके आदेश पर उन श्रमिकों ने हिन्दू भवन को मुस्लिम मकबरे जैसा बना दिया, उसे उसके जीवन की किंचित् भी चिन्ता नहीं थी।

अपने श्रम का पारिश्रमिक माँगने पर उसने उनके हाथ कटवाकर उन्हें दण्डित कर दिया। उनके हाथ उनको यह शिक्षा देने के लिए काट दिए गए जिससे कि वे स्थायी रूप से अपनी जीविका अर्जन करने में असमर्थ हो जाएँ और अपने पूर्वजों से चली आ रही तथा उनसे सीखी उस कला का न वे स्वयं उपयोग कर सकें और न भावी पीढ़ी को ही भविष्य में सिखा सकें। अधिकांश शिल्पी हिन्दू थे अतः उन्हें मारकर अथवा अपंग बनाकर शाहजहाँ ने मुस्लिम विश्वास के आधार पर अपने मुस्लिम धर्म का पालन करने में गर्व अनुभव किया होगा।

मौलवी मोइनुद्दीन की पुस्तक (पृष्ठ १७) में भी क्रूरता का उल्लेख है। वह लिखता है—"कतिपय योरोपियन लेखकों ने ताजमहल के निर्माण के सम्बन्ध में निन्दनीय आक्षेप किए हैं। ऐसा कहा जाता है कि कर्मचारियों ने बहुत कष्ट सहे। उनको भूखा रखा गया और उनके साथ निर्दयता का व्यवहार किया गया।"

जो पाश्चात्य विद्वान् रोमियो-जूलियट जैसी ही गाथा के अनुरूप शाहजहाँ और मुमताज़ की कथित प्रेम-गाथा से प्रभावित हो गए, वे उन प्रेमालापों के साथ-साथ शाहजहाँ की निष्ठुरता का वर्णन कदापि न करते। मुस्लिम-वर्णन की जालसाजी और धोखे में आनेवाले पाश्चात्य विद्वानों ने जहाँ एक ओर मुमताज़ के वियोग में अभिभूत(?) शाहजहाँ द्वारा ताज-निर्माण की भ्रमयुक्त मान्यता स्वीकार की है वहाँ दूसरी ओर उसकी निष्ठुरता का उल्लेख करने को वे इसलिए विवश हो गए कि इसके आँखों देखे प्रमाण उन्हें उपलब्ध थे।

मुस्लिम इतिहास भी शिल्पियों के हाथ काटे जाने का उल्लेख करता है, किन्तु कुछ भिन्नता के साथ। शाहजहाँ द्वारा शिल्पियों पर की गई क्रूरता को वे रोमांटिक रूप प्रदान करते हैं। उनका सुझाव है कि शाहजहाँ ने उनके हाथ इसलिए कटवा दिए कि कोई अन्य व्यक्ति उनकी इस कला का दुरुपयोग कर ताजमहल का दूसरा प्रतिस्पर्द्धी न तैयार करवा ले। किसी ने भी इस मूर्खतापूर्ण कथानक का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया। प्रथमतः, क्या कोई भी बादशाह जो ऐसी सौंदर्य-भावना रखता हो कि ताजमहल जैसे भव्य भवन का निर्माण करा ले, कभी इतना निर्मम हो सकता है कि जिन हाथों ने उसके लिए श्रम किया हो उनको ही वह क्रूरता के साथ कटवा दे? द्वितीयतः, क्या कोई बादशाह जो पत्नी के वियोग में दुःखी हो, वह क्या इतना कठोर होगा कि जिन्होंने उसकी प्रिय पत्नी का मकबरा बनाया उन्हीं को वह पिटवाए? तृतीयतः, क्या ताजमहल जैसे भव्य भवन का निर्माण ऐसा साधारण कार्य है कि कोई भी व्यक्ति अपनी पत्नी की मृत्यु

पर उन्हीं सब कारीगरों को बुलाकर उन्हें दूसरा ताजमहल बनाने पर नियुक्त करे? किसके पास इतना धन और वैसा ही काल्पनिक प्रेम है अपनी पत्नी के लिए और यहाँ तक कि स्वप्न में भी सोच सके अपनी पत्नी के लिए ताजमहल का निर्माण? स्पष्टतया श्रमिकों को दिए गए शारीरिक कष्टों को प्रेमगाथा का अलंकरण बनाना झूठे इस्लामी इतिहासज्ञों की निर्लज्ज एवं निन्द्य प्रथा का यह ज्वलन्त उदाहरण है। हिन्दू राजभवन को मकबरे में परिवर्तित करने की वास्तविकता पर पर्दा डालने के उद्देश्य से इस प्रकार की रोमांटिक बुद्धिहीनता का उल्लेख किया गया प्रतीत होता है। बिना पारिश्रमिक के प्रतिदिन काम किए जानेवाले शिल्पियों के विद्रोह को कुचलने के लिए ही इस प्रकार की क्रूरता का व्यवहार किया गया था।

घटनावश, केवल स्वल्प भोजन के विनिमय में शाहजहाँ द्वारा बलात् कार्य करवाना यह सिद्ध करता है कि अपहृत हिन्दू भवन में साधारण परिवर्तन तथा आयतें खुदवाना ही अपेक्षित था। केवल दाल-रोटी पर और चाबुक का भय दिखाकर निरन्तर २२ वर्ष तक काम करवाते हुए कोई ऐसे भव्य भवन का निर्माण नहीं करा सकता।

एक अन्य ऐसी ही कपोल-कल्पित कथा है कि शाहजहाँ यमुना के दूसरी ओर अपने लिए एक काले संगमरमर का ताजमहल बनवाना चाहता था। इस गल्प की पुष्टि के लिए कुछ धूर्त प्रदर्शक तथा कपटी इतिहासकार दर्शकों को यमुना के पार पड़े कुछ अवशेषों की ओर संकेत करते हैं। हिन्दू मण्डपों के वे उस पार पड़े अवशेष उस समय के हैं, जबकि ताजमहल एक हिन्दू राजकीय भवन था। ये भवन उस समय मुस्लिम घुसपैठियों द्वारा ध्वस्त कर दिए गए जब ताजमहल पर अधिकार करने के लिए शत्रु-सेनाएँ नदी की ओर से आगे बढ़ रही थीं। अब वे ही हिन्दू अवशेष मुसलमानी निर्माण बतलाए जाते हैं। क्योंकि शाहजहाँ ने सफेद संगमरमर का ताजमहल भी नहीं बनवाया इसलिए उसके द्वारा काले संगमरमर का ताज बनवाने का स्वप्न लेने की बात का प्रश्न तक भी नहीं उठता। इसकी पुष्टि के लिए हम कीन को उद्धृत करते हैं। पृष्ठ १६३ पर वह लिखता है—"शाहजहाँ की नकली कब्र यहाँ बेडौल-सी स्थित है (क्योंकि वह उस मकबरे को पूरा नहीं करा सका जो वह अपने लिए बनवाना चाहता था।)" किन्तु इसका कोई विश्वसनीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है। इससे स्पष्ट है कि ताजमहल के सम्बन्ध में हम जिस किसी भी प्रचलित कथा को सूक्ष्म विश्लेषण के लिए देखें तो वह तर्क की कसौटी पर खरी न उतरती हुई केवल कपोल- पना-सी बिखरती दृष्टिगोचर होती है।

ताजमहल के आकार-प्रकार का निर्माता कौन?

चूँकि ताजमहल एक प्राचीन हिन्दू प्रासाद है, अतः शाहजहाँ के समकालीन किसी डिजाइनर की खोज करना निराशाजनक ही होगा, और ऐसा है भी। अनथक प्रयत्न द्वारा खोज करने के बाद भी जो कुछ सामने आया है वह बहुत बड़ी संख्या उन नामों की है जो उतने ही भ्रामक हैं और उनमें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे सर्वसम्मत रूपेण यह स्वीकार किया जाय कि आश्चर्यजनक समारक—ताजमहल—का वह डिजाइनर है।

ताजमहल के डिजाइनर का निर्णय करने के लिए जो विभिन्न प्रयत्न किए गए हैं, यहाँ हम उनका उल्लेख करते हैं।

१. यह विशेष ध्यान देने की बात है कि शाहजहाँ का दरबारी इतिहास-लेखक अब्दुल हमीद लाहौरी किसी प्रकार के किसी वास्तुशिल्पी का उल्लेख नहीं करता। यह स्वाभाविक ही था क्योंकि मुमताज़ के दफनाने का उल्लेख करते हुए वह स्वीकार करता है कि मकबरा हिन्दू प्रासाद है। कोई तैयार भवन जब मकबरे के रूप में प्रयोग किया जाय तो उसके लिए किसी नए वास्तुकार की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसलिए, इस विषय में उसका मौन समीचीन ही है। परवर्ती लेखकों का यह अधिकार नहीं है कि वे राजकीय इतिहास-लेखक की उपेक्षा कर इस दिशा में अपने प्रयत्न कर अपने अनुमान लगाएं।

कीन इस विषय में विशेष ध्यान देता है। वह लिखता है,[१] "यद्यपि मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी को शाहजहाँ द्वारा विशेष रूप से यह निर्देश मिला था कि वह बादशाहनामे में ताजमहल का इतिहास लिखे, तदपि डिजाइनर के विषय में उसका

---

१. कीन की हैंडबुक, पृष्ठ १५१

मौन विशेष महत्त्व का है।"

२. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश केवल दो निरीक्षकों[1]—मकमल खाँ और अब्दुल करीम—तथा कुछ अन्य कारीगरों का उल्लेख करता है। इससे हमारे मत की प्रबल पुष्टि होती है कि प्रासाद को मकबरे में पर्रिवर्तित करने के लिए दो निरीक्षक पर्याप्त थे।

३. दि एन्साइक्लोपीडिया, ब्रिटेनिका[2] बड़ी मिठास से यह कहते हुए अस्पष्ट है—"वास्तुकारों की एक परिषद् द्वारा योजना बनाई गई थी, जो अनेक देशों के थे।" इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार समस्त विश्व के विद्वानों ने स्वयं को शाहजहाँई कथानक के सम्मोहन में बँधे रहने दिया और पूर्ववर्ती इतिहासकारों द्वारा ताजमहल के विषय में उल्लिखित तथ्यों का अनुकरण मात्र करके वे स्वयं को सन्तुष्ट करते रहे।

४. हम पहले ही देख चुके हैं कि किस प्रकार बर्नियर को यह कहकर मौन कर दिया गया कि ताजमहल के निर्माता डिजाइनर की शाहजहाँ ने यह सोचकर हत्या करवा दी कि वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए वैसा ही भव्य ताजमहल न बना दे। इसके भद्देपन पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। इससे भी अधिक मान लिया जाय कि डिजाइनर की हत्या करवा दी गई, किन्तु वास्तव में ऐसा कोई डिजाइनर था तो उसका नाम तो जीवित रहना चाहिए। वास्तव में उसकी मृत्यु तो उसके नाम को अमर कर देती।

५. प्रो. बी. पी. सक्सेना के कथनानुसार[3] "यद्यपि ताजमहल के सौन्दर्य के मूल्यांकन के सम्बन्ध में विभिन्न लेखकों में पर्याप्त मतैक्य है किन्तु उसकी मौलिकता और कलात्मकता के सम्बन्ध में उतना ही मतभेद है। स्लीमन अपने ग्रन्थ 'रैंबल्स एण्ड रिकलेक्शन्स' में बड़ी गल्प की बात करता है कि इसका डिजाइनर एक फ्रांसीसी इंजीनियर औस्टिन डी बोरडौक्स था और एक प्रकार की विचित्र मूर्खतावश वह उसको उस्ताद ईसा के समकक्ष रखता है। किन्तु ऐतिहासिक घटनाओं में उसकी पुष्टि नहीं होती है। मेनरिक के आधार पर विंसेंट स्मिथ ताजमहल का

---

१. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, भाग १५, पृष्ठ ३५-३६
२. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग २१, पृष्ठ ७५८
३. हिस्ट्री ऑफ दि शाहजहाँ एट देहली, लेखक बी. पी. सक्सेना।

डिजाइनर जेरोनिमो एरोनियो बताता है, जिसे सर जॉन मार्शल और ई. वी. हाबेल ने अस्वीकार कर दिया है।''

६. कीन लिखता है[१]—''उन प्रमुख विशेषज्ञों के नाम, जिनका मुखिया मुहम्मद ईसा अफन्दी था, तारीखे-ताजमहल नामक फारसी में लिखित पाण्डुलिपि में दिए गए हैं, जो ताज के परम्परागत खादिमों अथवा रक्षकों के अधिकार में है। इस प्रपत्र का अधिकृत होना सन्देहास्पद है।'' पाठक ध्यान दें कि ताज के मौलिक डिजाइनर के रूप में ईसा अफन्दी का नाम उन सभी ने लिया है जिनका इतिहास सन्देहास्पद है। अत: यह स्वाभाविक था कि किसी ने भी इस पर विश्वास नहीं किया।

क्योंकि यह ईसा नाम का व्यक्ति कल्पित है, उसकी ''जन्मभूमि कभी आगरा, कभी शिराज और कभी रम (यूरोपियन तुर्क)'' बताई गई है। ऐसा श्री कँवरलाल का कथन है।[२]

७. पूर्ववर्ती अध्याय से मियाँ मोहम्मद खान का जो लेख[३] उद्धृत किया गया था उसमें ताज के डिजाइनर का सम्मान पाने के प्रत्याशी एक नए नाम का समावेश हुआ है। वह नाम है—अहमद महन्दिस (और उसके तीन पुत्र)।

ताजमहल के शिल्पी की जनश्रुतियों के बीहड़ वन में विगत ३०० वर्ष से जोरदार खोज की जाती रही है, किन्तु व्यर्थ। उस अनन्त खोज से थककर इतिहास के विद्वानों ने इस दिशा में प्रयत्न करना ही छोड़ दिया है और उन्हीं अनेक नामों की पुनरावृत्ति कर उनमें से किसी एक को चुनने को स्वतन्त्र हो गए। इस प्रकार न तो लागत के सम्बन्ध में, न ही निर्माण अवधि के सम्बन्ध में और न ही डिजाइनर के नाम पर कोई मतैक्य हो पाया, और दूसरी ओर विकल्पों का विस्तार है। यह इसी कारण हुआ है कि अनुसन्धान और शोध-कार्य का आधार दोषपूर्ण था।

ई. बी. हावेल लिखते हैं—''ताज के सम्बन्ध में कुछ भारतीय रिकॉर्ड में मुख्य शिल्पी के रूप में मन्नू बेग का नाम उल्लिखित है। किन्तु इंपीरियल लाइब्रेरी मैन्युस्क्रिप्ट में कारीगरों की जो लिस्ट है उसमें कन्नौज के पाँच कलाकारों के नाम

---

१. कीन की हैंडबुक, पृष्ठ १५२
२. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ ४२-४३
३. दि इलस्ट्रेटेड वीकली ऑफ इंडिया।

दिए गए हैं जो सभी हिन्दू हैं"वर्तमान काल में भी आगरा शैली के जो उत्तम कलाकार हैं वे भी हिन्दू ही हैं।"[१]

उपरिउद्धृत उद्धरण अनेक कारणों से महत्त्वपूर्ण है। इससे ताजमहल से सम्बन्धित डिजाइनर और कारीगरों के विषय पर फैले भ्रम पर गहरा प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की उलझन इसलिए उत्पन्न हुई, क्योंकि पीढ़ी-दर-पीढ़ी से प्रचलित कल्पित कथा के रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए गलत नामों का प्रयोग किया गया। ऐसे दुष्प्रयासों का परिणाम यह हुआ कि योरोपीय विद्वानों ने रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए ताजमहल की कलाकारिता का श्रेय फ्रांसीसी और इटालियन कलाकारों को दिया जबकि बढ़ा-चढ़ाकर लिखनेवाले मुसलमानी विवरणों में मुसलमान कलाकारों के कल्पित नामों से रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाती रही है। इस द्विपक्षीय सन्देहास्पद स्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि इंपीरियल लाइब्रेरी पाण्डुलिपि में जिन हिन्दू शिल्पियों एवं कलाकारों के नाम मिलते हैं वे उन मूल शिल्पियों के हो सकते हैं जिन्होंने शाहजहाँ से शताब्दियों पूर्व ताजमहल का निर्माण किया था।

हावेल का यह लिखना है कि "वर्तमान समय में भी आगरा शैली के जो उत्तम कलाकार हैं वे भी हिन्दू ही हैं," स्पष्टतया हिन्दू कला की लम्बी परम्परा को सिद्ध करता है जिसका आदर्श प्रतिफलन ताजमहल है। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि मुसलमानों के आक्रमण के बाद सभी प्रकार की कला-विद्या और प्रशिक्षण अवरुद्ध हो गए। अलबरूनी द्वारा मोहम्मद गजनी के सम्बन्ध में लिखते हुए कहा गया है[२] कि उसने हिन्दुओं को धूल में मिलाने और उन्हें इधर-उधर बिखेरने का बीड़ा उठा रखा था। अलप्तगीन, सुबुक्तगीन तथा मोहम्मद गजनी द्वारा प्रारम्भ किए गए भारतीय जन-जीवन एवं संस्कृति को मटियामेट करने का संकल्प कम-से-कम औरंगजेब के काल तक तो उसी रूप में प्रचलित रहा। उसके बाद राष्ट्रीय शक्तियों के पुनरुत्थान के कारण ये विध्वंसकारी शक्तियाँ दुर्बल होने लगीं। उन भयावने स्वप्नों जैसे दिनों में भारतीयों को उनके नगरों एवं घरों से इस प्रकार खदेड़ दिया जाता था जैसे वे मानव-प्राणी नहीं अपितु कीड़े-मकोड़े हों। उस समय किसी

---

१. दि नाइनटीन्थ सेंचुरी एण्ड आफ्टर, खण्ड ३, पृष्ठ १०४७, मासिक रिव्यू, सम्पादक—जेम्स नोल्स में 'दि ताज-एण्ड इट्स डिजाइनर' शीर्षक से लेख।

२. डॉ. एडवर्ड सचाउ द्वारा लिखित, 'अलबरूनीज़ इंडिया', के प्राक्कथन से।

भी कला के विकास और विद्या के प्रसार का क्या अवसर मिल सकता था? जैसा कि हावेल ने सिद्ध किया है कि वर्तमान समय में भी आगरा-शैली के कलाकार हिन्दू ही हैं, वे उनकी संतति ही हो सकते हैं जिनके पूर्वजों ने, भारत में मुसलमानी शासन के प्रादुर्भाव से पूर्व ताजमहल का निर्माण किया था। इससे इस निष्कर्ष की और भी पुष्टि होती है कि ताजमहल प्राचीन हिन्दू भवन है न कि मुगलकाल का तुलनात्मक मुसलमानी मकबरा।

ताजमहल ही एक ऐसा स्मारक नहीं है जिसे बनाने का मिथ्या श्रेय शाहजहाँ को दिया गया, यह हावेल के एक अन्य उल्लेख से स्पष्ट होता है। हावेल लिखता है[१]—"मेरे मत से दिल्ली पीट्रा ड्यूरा (दिल्ली स्थित लाल किले के दीवाने-आम की शाही बालकनी की दीवारों पर चित्रांकित पत्तियों की आकृतियाँ) मिथ्यारूपेण शाहजहाँ के काल से जोड़ी गई हैं...पक्षियों एवं पशुओं की स्वाभाविक आकृतियों को उत्कीर्ण करना मुसलमानी विधान का उल्लंघन करना है। कुरान में स्पष्ट आदेशात्मक विधान है कि जो कुछ भी ऊपर स्वर्ग में है या उसके नीचे धरा पर है उसकी अनुकृति न बनाई जाए।"

क्योंकि पीट्रा ड्यूरा लाल किले का ही अभिन्न अंग है, बाद का विचार अथवा कला नहीं, अतः हावेल का यह विचार सत्य है कि दिल्ली का लाल किला जिसके निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को दिया जाता है, उस पूर्व-मुस्लिम काल से ही विद्यमान था जब ऐसे चित्रांकन के मार्ग में न केवल किसी प्रकार की कोई बाधा विद्यमान थी अपितु वे राजकीय भवनों की शोभा के अनिवार्य अंग माने जाते थे।

दिल्ली की जामा मस्जिद का निर्माण और पुरानी दिल्ली की स्थापना का श्रेय भी शाहजहाँ को गलती से दिया जाता है। इन दावों का किसी प्रकार के प्रमाण का शतांश भी तो कुछ उपलब्ध नहीं है। शाहजहाँ के दरबारी कागजों में से कोई एक ऐसा कागज का टुकड़ा ढूँढ़कर दिखा दे कि जिससे सिद्ध हो कि ताजमहल और अन्य जो भवन उसके बनवाए बताए जाते हैं, उसका उल्लेख हो। यदि इस प्रकार का कोई प्रमाण उपलब्ध होता तो किसी भी इतिहास के विद्वान् को अपना अनुमान लगाने की आवश्यकता न होती।

भारतीय इतिहास की दयनीय स्थिति यह है कि मध्ययुगीन मुसलमानी

---

१. दि नाइनटीन्थ सेंचुरी एण्ड आफ्टर, भाग ३, पृष्ठ १०४९

इतिहासों में प्राचीन स्मारकों के निर्माण का निराधाररूपेण मुसलमान बादशाहों को दिए गए श्रेय को किसी ने चुनौती नहीं दी, यह इस कारण कि तत्कालीन अंग्रेज शासकों को उसको चुनौती देने में किसी प्रकार की रुचि नहीं थी, क्योंकि शासक होने के नाते उनका प्रमुख उद्देश्य था अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति द्वारा भारतीयों को प्रशिक्षित करके उनसे प्रशासन की सेवा ली जाए। अतः किसी भारतीय को यह साहस नहीं होता था कि वह इसका विरोध करे। इससे उनकी इतिहास की उपाधि छिन जाने से आजीविका को खतरा था। जिन्होंने इतिहास का अध्ययन नहीं किया था वे इस स्थिति में नहीं थे कि जिससे वे जान सकें—भावी पीढ़ी को जो भारतीय इतिहास पढ़ाया जा रहा है वह पूर्णतया विकृत और अशुद्ध है। अतः भारतीय इतिहास और जन-सामान्य का जो इतिहास उनको पढ़ाया जा रहा था उसको चुनौती देने की स्थिति में वे नहीं थे।

परिणामतः अंग्रेजी प्रशासन किसी भी प्रकार इस तथ्य से परिचित था कि भारतीय इतिहास को बड़े पैमाने पर विकृत किया गया है। इसलिए, जब कभी भी प्राचीन भवनों के सम्बन्ध में उनके हितों पर चोट पहुँची तो उन्होंने तुरन्त जाँच-पड़ताल के आदेश दिए, क्योंकि वे जानते थे कि इसका परिणाम उनके ही पक्ष में होगा। एक ऐसा उदाहरण 'ट्रांजेक्शन्स ऑफ आर्क्योलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा'[१] में उल्लिखित है। यह सह-सचिव द्वारा मुबारक मंजिल या ओल्ड कस्टम हाउस पर लिखित रिपोर्ट है। उसने लिखा है—"इस बात की जाँच कर उस पर रिपोर्ट देने के लिए कि बालीगंज में कस्टम हाउस द्वारा अधिकृत भवन मूलतः मुस्लिम मस्जिद है या नहीं, मैं इस प्रकार कहना चाहूँगा : विवादास्पद भवन मूलतः मुसलमानी मस्जिद नहीं प्रतीत होती...ऐसा प्रतीत होता है कि इस भवन का नाम मुबारक मंजिल इसलिए पड़ा, क्योंकि दक्षिण में औरंगजेब की टुकड़ियों को जो विजय प्राप्त हुई उसकी सूचना बादशाह औरंगजेब को इस स्थान पर प्राप्त हुई थी जहाँ कि उसने पड़ाव डाला था। भवन के एक भाग में यद्यपि ऐसे लक्षण विद्यमान हैं कि जैसे प्रार्थना-स्थल बनाया गया हो, किन्तु ऐसा तो मुसलमान बादशाहों ने सदा ही किया...।"

ये शब्द कि "ऐसा तो मुसलमान बादशाहों ने सदा ही किया..." विशेष ध्यान

१. ट्रांजेक्शन्स ऑफ आर्क्योलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा, जनवरी से जून १८७८

देने योग्य हैं। इस प्रकार उपरिउद्धृत मुबारक मंजिल स्पष्टतया प्राचीन राजपूत भवन है जिसे अंग्रेजों ने मुगल शासकों से उत्तराधिकार में प्राप्त किया। विद्यमान मध्ययुगीन समस्त स्मारकों के सम्बन्ध में यदि इस प्रकार की जाँच की जाए तो वे सहज ही मूलरूप से राजपूती भवन, दुर्ग और मन्दिर सिद्ध होंगे। मुसलमानों की विजय एवं अपहरण के कारण उनको मुसलमानों द्वारा बनाए गए मौलिक मस्जिद, मकबरा और दुर्ग माना जाने लगा। सम्पूर्ण भारत में निर्जन प्रान्तों, मैदानों और सड़कों के किनारे मीनारों से युक्त इकहरी दीवारें, कब्र की आकृति के मिट्टी के टीले आदि जो दृष्टिगोचर होते हैं, वे सब या तो हिन्दू स्मारकों के अवशेष हैं या फिर उन पर बनाई गई कब्रें हैं।

ऐतिहासिक प्रवर्तन के अभाव का एक अन्य उदाहरण, जिसके कारण अंग्रेज विद्वानों द्वारा मध्ययुगीन स्मारकों के सम्बन्ध में इतिहास का पुनर्निर्माण सम्भव नहीं हो सका और मुसलमानी दावों के अनुसार ही उन्हें स्वीकार किया गया, यह हमें 'ट्रांजेक्शन्स ऑफ आर्क्योलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा'[१]• जुलाई से दिसम्बर १८७५ के अंक में प्राप्त होता है। उस अंक में सलीमगढ़ की व्याख्या करते हुए लिखा है—"तोपचियों की बैरकों के सामने तथा दीवान-ए-आम के विशाल प्रांगण के समीप स्पष्टतया एक सर्वथा एकाकी एवं उद्देश्यहीन चतुर्भुजाकार भवन है…जहाँगीरी महल की ही भाँति यह भी हिन्दुओं की पद्धति से सज्जित है…परम्परा के पास इसको नाम देने के अतिरिक्त अन्य कुछ कहने को नहीं है…।"

कुशाग्रबुद्धि विद्वानों को उपरिलिखित उद्धरण से अनेक तथ्यपूर्ण संकेत प्राप्त हो सकते हैं। प्रथमतः इसमें यह स्वीकार किया गया है कि जिन्हें सलीमगढ़ और जहाँगीरी महल का नाम दिया गया है वे प्राचीन हिन्दू भवन हैं, क्योंकि मूर्तिभंजक मुसलमान बादशाह यदि स्वयं उन भवनों को बनवाते तो उनमें हिन्दू पद्धति की सज्जा कभी भी पंसद नहीं कर सकते थे। जो तथ्य सबसे महत्त्वपूर्ण है वह है उक्त भवनों के अधिकांश भागों का व्यर्थ एवं उद्देश्यहीन प्रतीत होना, क्योंकि मुसलमान बादशाहों द्वारा उनका निर्माण नहीं, अपितु अधिग्रहण किया गया था। स्वाभाविक है कि विजेता जब किसी भवन पर अधिकार करता है तो अधिकृत भवन के निर्माण-काल की जीवन-पद्धति का विजेता की जीवन-पद्धति से बहुत भेद होता है। प्रत्येक

---

१. पुस्तक के पृष्ठ १४ पर।

मध्ययुगीन स्मारक के पिछले इतिहास के सम्बन्ध में इस प्रकार की भीषण असंगतियों, अपूर्णताओं एवं खोखलेपन के बावजूद भी, यह केवल ऐतिहासिक प्रवर्तन के अभाव से उत्पन्न बौद्धिक जड़ता ही थी कि जिसने भारत के मध्ययुगीन स्मारकों की जाँच-पड़ताल करने और उनका सही इतिहास लिखने के सम्बन्ध में अंग्रेज विद्वानों की गति को अवरुद्ध कर दिया। भारतीय विद्वान् अंग्रेजों के अधीनस्थ होने के कारण शासकीय मान्यता और संरक्षण छिन जाने के भय से उनकी खोजों को व्यतिक्रमित करने का साहस नहीं कर सके।

एक प्रमाण जिसे तारीख-ए-ताजमहल कहा जाता है और जिसमें ताजमहल का मूल और उसका इतिहास लिखा हुआ समझा जाता है, वह उस स्मारक के परम्परा से चले आ रहे उत्तराधिकारी अधिरक्षक के अधिकार में था। समाचारपत्रों में प्रकाशित समाचारों के आधार पर समझा जाता है कि उक्त प्रमाण चोरी करके पाकिस्तान ले जाया गया है। कीन की हैण्डबुक[१] में लिखा है—''इस प्रमाण की अधिकृतता कुछ अंशों में संदेहास्पद है।'' उसने 'कुछ अंशों में' शब्दों का प्रयोग केवल विनम्रता और सावधानी की दृष्टि से किया है। वास्तव में वह जो कहना चाहता था वह यही था कि पत्रक पूर्णतया जालसाजी है। सामान्य न्याय भी हमें यही बताता है कि जालसाजी के पूर्ण प्रमाण की आवश्यकता तभी अनुभव होती है जबकि कोई झूठा दावा किया जा रहा हो। यदि ताजमहल मूल रूप से ही मकबरा होता तो जाली प्रमाण की कभी आवश्यकता ही न पड़ती। ऐसे झूठे प्रमाण का अस्तित्व ही इस बात का प्रबल प्रमाण है कि ताजमहल को जब उसके उचित अधिकारी से मकबरा बनाने के लिए या उससे पहले भी जब लिया गया तो उसके मूल कागजों को नष्ट-भ्रष्ट कर उनके स्थान पर जाली कागज रख दिए होंगे। यही कारण है कि ताजमहल से सम्बन्धित पारम्परिक कहानी में वर्णित कोई भी पक्ष शंका और सन्देह से मुक्त नहीं है।

१. क़ीन की हैण्डबुक, पृष्ठ १५२

ताजमहल का निर्माण हिन्दू वास्तुशिल्प के अनुसार

प्राचीनकाल के हिन्दू प्रासादों का निर्माण नगर के मध्य भीड़भड़ाकेवाले क्षेत्र में कराने की परम्परा रही है, जिस प्रकार कि युद्धादि के समय शासक हाथी पर आरूढ़ चारों ओर से सेना से घिरा हुआ मध्य में चला करता था। यहाँ तक कि प्रासाद में भी शासक का कक्ष मध्य में ही स्थित होता था। युद्ध तथा वास्तुकला-सम्बन्धी हिन्दू परम्परा का यह पक्ष उस समय ध्यान में रखना होगा जब भारत के मध्ययुगीन स्मारकों का अध्ययन करें। यद्यपि वे भ्रमवश मकबरे और मस्जिद जैसे दिखाई देते हैं किन्तु वे सब प्राचीन हिन्दू मन्दिर और प्रासाद हैं।

हिन्दू राजा और उनके उच्चाधिकारीगण अभिरुचि-सम्पन्न होने के कारण प्रमुख उत्पादनों के मुख्य क्रेता माने जाते थे इसलिए राजप्रासादों में अधिकांशतया बाजारों की भी व्यवस्था रहती थी। यही बात ताजमहल पर भी लागू होती है और टैवर्नियर द्वारा इसकी पुष्टि भी हुई है।

ताजमहल शब्द का अर्थ है 'राजभवन' अथवा 'भवनों का सिरमौर'। इसका किंचित् भी अर्थ मकबरा नहीं होता। मकबरा और प्रासाद उतने ही भिन्न हैं जितना कि धरती और आकाश। यदि ताजमहल शब्द का अर्थ यत्किंचित् भी समाधि अथवा श्मशान से मिलता-जुलता होता तो कोई भी अपने होटल का नाम 'ताजमहल होटल' रखने का साहस नहीं कर सकता था और न ही पर्यटक उस 'कब्र होटल' में रहने को उत्सुक ही रहते। परन्तु पर्यटक ताजमहल के नाम से इसलिए आकर्षित होते हैं क्योंकि वह नाम एक विशाल एवं भव्य राजप्रासाद अथवा मन्दिर का प्रतीक है न कि विषादयुक्त मौन मकबरे का।

मुगल दरबार के रिकॉर्ड में कहीं भी ताजमहल शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, क्योंकि यह शब्द संस्कृत का तेज-महा-आलय शब्द है। शाहजहाँ तो केवल

(हथियाया गया) उसकी पत्नी का मकबरा वाला भवन कहता है। जबकि औरंगजेब उसको अपनी माँ का स्मारक कहता है। यह एक और प्रबल प्रमाण है कि शाहजहाँ ने ताजमहल नहीं बनवाया था।

इसी (हिन्दू) ताजमहल (प्रासाद परिसर) में दुकानों की पंक्तियाँ परिसर की सीमा के भीतर ही थीं जो बाजार का रूप धारण कर लेती थीं, ऐसा टैवर्नियर का उल्लेख है। उन्हीं दुकानों में से वर्तमान में कुछ दुकानें, जलपान-गृह, कुछ चित्रावली बेचनेवाले तथा कुछ को ताजमहल के नमूने तथा अन्य कलात्मक वस्तु-विक्रेताओं ने घेर लिया है।

यहाँ हम पुनः एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का वह उद्धरण स्मरण कराते हैं जिसमें लिखा है कि ताजमहल परिसरस्थ भवनों के अन्तर्गत अश्वशाला, अतिथिशाला तथा आरक्षक-कक्ष बने हैं। ये सभी अनिवार्यरूपेण राजभवन के भाग ही बनते हैं न कि मकबरे के।

यह भ्रान्त धारणा है कि मध्ययुगीन स्मारक मुसलमानी निर्माण-कार्य हैं, क्योंकि वे मकबरे और मस्जिदें जैसे दिखाई देते हैं, किन्तु सुदीर्घ काल और परम्परा से उनको मुसलमानी मकबरे आदि माने जाने के कारण भारतीय इतिहास में एक भ्रान्त धारणा जड़बद्ध हो गई है। तदपि पाश्चात्य विद्वान् यह कहते हुए सत्य के निकट प्रतीत होते हैं कि मुस्लिम जैसे दिखाई देनेवाले भवन पूर्ववर्ती हिन्दू भवनों की भाँति स्तम्भों, चौखटों और मेहराबोंवाले हैं। हम यहाँ पर एक अंग्रेज दर्शक का उल्लेखनीय निष्कर्ष उद्धृत करते हैं। वह लिखता है—"आदिलशाही—करीमुद्दीन के अधीन लगभग १३१६—से पूर्व मुसलमान आक्रमणकारियों ने हिन्दू भवन के अवशेष पर बीजापुर के दुर्ग में एक मस्जिद बनवाई थी। दूसरे भवनों के टूटे स्तम्भों का उन्होंने कितना उपयोग किया, इस विषय में हमें कहीं से कोई सूचना नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह हिन्दू मन्दिर के द्वार मण्डप के अंग से बना है, किन्तु यह अनुमान भी असंगत नहीं कि मूल स्थान से दूसरे हिस्सों को भी हटाया गया होगा और अपने विद्यमान उद्देश्य की पूर्ति के लिए उनको पुनः स्थापित भी किया गया होगा।"

उपरिलिखित उद्धरण से स्पष्ट होता है कि पाश्चात्य विद्वान् सत्य के समीप पहुँचकर भी उसे ग्रहण करने में असमर्थ रहे। उनकी यह परिकल्पना कि वे मुस्लिम-मकब्रे अथवा मस्जिद के अन्दर खड़े हैं, उनकी वैचारिक शक्ति को इतना

कुंठित कर देती है कि वे यह अनुमान नहीं कर सके कि वे उन हिन्दू मन्दिर अथवा मस्जिद के अन्दर खड़े हैं, जिनको बाद में मुसलमानों ने उस रूप में परिवर्तित कर दिया है। मध्ययुगीन सभी भवनों के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वान् यह परिकल्पना करते हैं कि उनका निर्माण पूर्ववर्ती हिन्दू भवनों के ध्वंसावशेषों से कराया गया है। यह तो केवल अर्द्ध-सत्य है। उन्होंने यह नहीं सोचा कि प्राचीनकाल में हिन्दुओं ने अपने मन्दिरों, भवनों और दुर्गों का निर्माण ऐसे पूर्व-निर्मित स्तम्भों, चौखटों, बल्लियों तथा मेहराबों से नहीं करवाया होगा कि जिन्हें सरलता से विखण्डित कर अन्य स्थानों पर ले जाकर इच्छानुसार प्रयोग में लाया जा सके।

सबसे विचारणीय बात यह है कि किसी भी नए भवन का निर्माण किसी पुराने भवन के ध्वंसावशेषों से नहीं किया जा सकता। किसी पुराने भवन को विखण्डित कर उसके ध्वंसावशेषों को दूसरे स्थान के लिए ढोने का व्यय-भार भी अत्यधिक होगा। इस प्रक्रिया में कुछ भाग टूटकर अनुपयोगी हो जाएँगे तथा नये भवन के आकार-प्रकार से उनका कोई तालमेल नहीं बैठेगा। और फिर ऐसा दुर्बुद्धिपूर्ण कौन होगा कि किसी हिन्दू भवन को पहले ध्वस्त करे और फिर उसके ध्वंसावशेषों को दूसरे स्थान पर ले जाकर उनसे वैसा ही नया भव्य भवन बनवाने का विचार करे?

यदि कोई विशाल हिन्दू भवन तोड़कर उसके पत्थर की शिलाएँ दूसरे स्थान पर ले जाई जाएँ तो वे सब इस प्रकार घुल-मिल जायेंगी कि उनको पृथक् करना और फिर छाँटना कि कौन-सी शिला किस मंजिल की किस दीवार की है, न केवल सिर-दर्द अपितु बहुत से समय का अपव्यय भी होगा। इस समस्या का अनुमान इसी बात से लगाया जाता है कि जो लोग अपनी दुकानों को बन्द करने के लिए तख्तों का प्रयोग करते हैं उसके लिए उन तख्तों को न केवल क्रमशः अंकित करना पड़ता है अपितु बाहर-भीतर तक का भाग तथा ऊपर-नीचे के सिरों के लिए भी चिह्न लगाने पड़ते हैं। जब तक कि उन तख्तों को तदनुरूप नहीं लगाया जाएगा दुकान अच्छी प्रकार बन्द नहीं हो सकेगी। इस प्रकार साधारण-सी दुकान को बन्द करने के लिए इतने लम्बे-चौड़े हिसाब-किताब की आवश्यकता होती है तब क्या कोई विशाल भवन उसी सम्पूर्णता और कलात्मकता के साथ उन ध्वंसावशेषों एवं शिलाओं से, जो कि दूसरे स्थान से लाई गई हैं, बनाया जा सकता है?

और ऐसा हो भी जाए तो भी भवन बनना असम्भव है। यह मान भी लिया

जाए कि एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाया हुआ सामान सुरक्षित भी रहे तो भी क्या नई नींव की आवश्यकता नहीं पड़ेगी? अतः सरल सत्य यही है कि मुसलमानों ने हिन्दू भवनों के अवशेषों से कोई भी भवन नहीं बनाया। वे केवल हिन्दू मन्दिरों अथवा भवनों में घुसे और उसे अपने अनुरूप बनाने के लिए किसी को वहाँ दफनाया, मूर्तियाँ फेंकीं, हिन्दू साज-सज्जा को तोड़ा-फोड़ा और दूर फेंका, और उन पर कुरान की आयतें खुदवा दीं। यही कारण है कि मध्यकालीन मुसलमानी मकबरे और मस्जिदें हिन्दू मन्दिरों और प्रासादों के समान दीखती हैं। यही सत्य ताजमहल पर लागू होता है।

पर यह दुःख की बात है कि इन भवनों को हिन्दू शैली पर निर्मित विशुद्ध मुसलमानी मानते हुए पाश्चात्य विद्वानों ने भारत-अरब शिल्प का एक पूर्ण मत ही बना डाला और नागरिक अभियान्त्रिकी की पुस्तकों में भी ठूँस दिया।

यही वह अस्वीकार्य मत है जो बड़े गर्व से ताजमहल को भारत-अरब शिल्प-मैत्री की कला का एक बढ़िया उदाहरण स्वीकार करता है"""संगमरमर पर उतरा साकार स्वप्न""पत्थरों पर लिखी कविता" आदि-आदि। ऐसी मान्यताओं से किस प्रकार भ्रान्ति उत्पन्न होती है यह हमारी इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि ताजमहल १७वीं शताब्दी का मकबरा नहीं अपितु १२वीं शती का प्राचीन शिव मन्दिर है, जिसे बाद में मुसलमान आक्रमणकारियों ने लूटकर प्रासाद में परिणत कर दिया था और हिन्दुओं ने फिर उसे जीत लिया था। यह विश्वास करना भी भद्दापन ही है कि मध्यकालीन मुसलमानों ने हिन्दू मन्दिरों और प्रासादों को तोड़कर उनके अवशेषों से मस्जिदों और मकबरों का निर्माण कराया। इसका भद्दापन इससे ही प्रकट होता है कि मध्यकालीन सभी भवन भीतर से ईंटों और गारे-चूने के बने हैं। केवल उनके बाहर-बाहर पत्थर लगा है, जैसे कोई झंडे का अथवा नारियल का खोल चुराकर यह कहे कि वह झंडा अथवा नारियल बनाएगा, इसी प्रकार मुसलमान शासक एक स्थान से हिन्दू भवनों के पत्थर उखाड़कर दूसरे स्थान पर ले जाकर उनको पुनः उसी प्रकार व्यवस्थित कर फिर वैसा ही भव्य और विशाल भवन जैसाकि शताब्दियों पूर्व हिन्दुओं ने अपनी आवश्यकतानुसार अपनी शैली में बनाया था, नहीं बनवा सकता।

हमारा लक्ष्य अन्य कुछ भी हो किन्तु पाश्चात्य विद्वानों पर दोषारोपण करने का नहीं है। वे जिज्ञासु, विद्वान् और परिश्रमसाधक शिक्षाविद् थे, किन्तु विदेशी होने

के कारण भारत में मुसलमानी शासकों के दु:शासन से भली भाँति परिचित नहीं थे, इस प्रकार भारतीय इतिहास की स्थितियों के सम्बन्ध में उनका व्यक्तिगत अनुभव कुछ कम था, तदपि उनमें से अधिकांश, जैसाकि हमने पहले भी बताया था, सत्य के अति निकट पहुँच गए। उनमें से ऐसा एक था ई. बी. हेवेल जो स्वयं बहुत बड़ा शिल्पज्ञ और दूरदर्शी था।

हेवेल ने इस दावे का खण्डन किया कि ताजमहल किसी गैर-हिन्दू शिल्प का नमूना है। ताजमहल के शिल्प का विवेचन करते हुए तथा कुछ इतिहासकारों द्वारा उसके आकृति-निर्माता को इटेलियन शिल्पकार वोरोनियो होने के दावे की चर्चा करते हुए, श्री कँवरलाल ने हेवेल को इस प्रकार उद्धृत किया है—"यदि वोरोनियो भारतीय शिल्प-परम्परा में इतना अधिक प्रवीण था कि वह शिल्पशास्त्र के नियमों पर आधारित कमलयुक्त गुम्बद तैयार कर सका तो यही कहा जा सकेगा कि एशियाई कलाकारों द्वारा निर्मित गुम्बद उनके नहीं होंगे...आगरा में ताजमहल का गुम्बद...और इब्राहीम के मकबरे (बीजापुर में) का गुम्बद दोनों ही समान शैली पर बने हैं—वे लगभग एक ही परिमाप के बने हैं—तथा जिस तथ्य की ओर फर्गुसन तथा उसके अनुयायियों का ध्यान नहीं गया, वह है उन दोनों की परिधि-रेखा में पूर्ण साम्य। यदि अन्तर है तो इतना ही कि ताजमहल का कमल-किरीट क्रमशः पतला होता गया है और उसकी पंखुड़ियाँ नक्काशी की बजाय गुम्बद के आरम्भ से बैठी हुई हैं—वास्तव में ताजमहल एक ऐसा भवन है जो भारत में ही बनना अपेक्षित था—ऐसे कुशल शिल्पियों द्वारा जिन्होंने बौद्ध और हिन्दू-परम्परा से शिल्प-ज्ञान उत्तराधिकार में पाया है—जिस योजना के अनुसार ताजमहल के केन्द्रीय कक्ष का गुम्बद है वह चार छोटे गुम्बदों से युक्त कक्ष से घिरा हुआ है। यह पंचरत्न मंदिर के अनुसार बना है। जैसाकि हमने अन्यत्र लिखा है, इसका मूल रूप जावा के चण्डी-सेवा और अजन्ता के स्तूप-गृह में पाया जाता है। इस शिल्पोपलब्धि का श्रेय न तो शाहजहाँ, न उसके दरबारियों और न ही उस इटालियन को प्राप्त हो सकता है।[१]

हेवेल अपनी मान्यता के अनुसार कितना स्पष्ट है कि जब वह दावा करता है कि ताजमहल प्राचीन भारतीय शैली पर बना है तथा शाहजहाँ का कोई भी समकालीन उसकी निर्माणाकृति नहीं तैयार कर सकता था। हेवेल अपने से पूर्व

---

१. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ ४४-४५

शाहजहाँ के दरबारी इतिहास बादशाहनामे में उल्लिखित इस तथ्य से परिचित नहीं था कि ताजमहल प्राचीन हिन्दू भवन है। यदि हेवेल के समय यह तथ्य प्रकट हो गया होता तो उसको प्रसन्नता होती कि वास्तु-विद्या-सम्बन्धी उसके निष्कर्ष का इतिहास में समर्थन उपलब्ध है तब वह पर्सीब्रौन और फर्गुसन से कहीं अधिक सम्मान भारतीय वास्तुविद्या के अधिकारी विद्वान् के रूप में प्राप्त करता।

प्रसंगवशात् हम अपने पाठकों का ध्यान हेवेल के उस कथन की ओर ले जाना चाहते हैं कि गुम्बद तथा उसके शीर्ष पर अधोमुख कमलयुक्त किरीट विशुद्ध भारतीय प्राचीन नमूने पर है। हिन्दू शिल्प का मूल भारतीय शिल्प-शास्त्र में विद्यमान है।

भारतीय शिल्पशास्त्र के उसके सभी अंगों एवं उपांगों सहित पूर्ण अध्ययन एवं खोज की आवश्यकता है। इस पर शोधकार्य भारतीय पुराविद्याओं में पारंगत[१] महान् इंजीनियर रावसाहब के वी. वजे, एल. सी. आई. ने किया है। इससे भारतवर्ष की सहस्रों वर्ष की उस शिल्प-साधना तथा प्रकाण्ड ज्ञान का स्पष्ट आभास पाठकों को मिलेगा जो भारत की गुफा-मन्दिरों, भवनों, घाटों, प्रासादों, नहरों, पुलों तथा दुर्गों में छिपा है तथा एक ऐसा सुन्दरतम भवन जिसे प्राचीन हिन्दू शिल्पशास्त्र ने बनाया है—उसका नाम है ताजमहल। भारतीय शिल्पशास्त्र की वंश-परम्परारूपी वृक्ष का सावधानी से परीक्षण करने के उपरान्त पाठक अनुभव करेंगे कि यह किस प्रकार की तुच्छ कल्पना थी कि वह शाहजहाँ ही था जिसने ताजमहल को हथिया लिया था।

प्राचीन भारतीय अभियान्त्रिकी तथा वास्तुशिल्प में प्रवीण स्व. श्री के. वी. वजे १६ दिसम्बर, १८६९ को एक दीन परिवार में जन्मे थे।

उन्होंने १८९१ में पूना इंजीनियरिंग कॉलेज से सिविल इंजीनियरिंग की उपाधि प्राप्त की थी।

प्राचीन भारतीय वास्तुशिल्प और अभियान्त्रिकी के अध्ययन की ओर उनका रुझान कैसे हुआ इस पर श्री वजे ने एक बार वैदिक मैगजीन (लाहौर जो अब पाकिस्तान में है, से प्रकाशित) में लिखा—"अपने अभियान्त्रिकी पाठ्यक्रम के

---

१. हम श्री जी. जी. जोशी के, स्व. श्री वजे की जीवनी और कार्य का विवरण देने के लिए आभारी हैं। पाठक श्री जोशी के मराठी साप्ताहिक, पूना से प्रकाशित शिल्प-संसार के २६-५-६५ के अंक में प्रकाशित श्री वजे पर लेख देख सकते हैं। श्री वजे पर एक दूसरा लेख मराठी मासिक 'विश्वकर्मा विकास' के दिवाली अंक में श्री एम. एम. ताम्बट का प्रकाशित हुआ था।

प्रशिक्षण के दौरान मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि इस सम्बन्ध में किसी भारतीय की कोई पाठ्य-पुस्तक, कोई फार्मूला आदि कुछ भी कहीं दिखाई नहीं देता। (यद्यपि) मैं जानता था कि बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति भी (प्राचीन भारतीय) भवनों, मूर्तियों, दुर्गों, नहरों बन्दूकों और स्तम्भों की प्रशंसा करते थे। तब मैंने निश्चय किया कि देखना चाहिए कि माजरा क्या है···मैं ऐसी लगभग ४०० पुस्तकों के नाम जानता हूँ जिनमें से मैंने पचास पढ़ी हैं।''

जबकि जन-साधारण अतर्क्य और भोलेपन के कारण यह माने बैठा था कि ताजमहल मुसलमानी भवन है, तब ई. बी. हेवेल जैसे प्रख्यात वास्तुविद् और बी. एल. धामा जैसे प्रख्यात पुरातत्त्वविद् जो आर्क्योलौजिकल सर्वे ऑफ इंडिया के आर्क्योलौजिकल सर्वेयर तथा सुपरिन्टेंडेंट के पद से मुक्त हो चुके थे, दृढ़ता से लिखते हैं कि ताजमहल सम्पूर्णतया हिन्दू भवन है जिसे प्राचीन श्रेष्ठ हिन्दू परम्परा के अनुसार बनाया गया था।

अपनी ४६ पृष्ठीय पुस्तिका 'दि ताज' में उसके लेखक श्री धामा लिखते हैं—''न तो ताजमहल के मूल निर्माता का नाम और न ही उस पर व्यय की गई निश्चित धनराशि का कहीं उल्लेख मिलता है···जो विदेशी इसकी योजना में भाग लेते हैं वे सत्य और उचित तथ्यों के निकट नहीं पहुँच पाते···इसका आकार-प्रकार तथा अनुपात सब कुछ भारतीय है···इसका निर्माता निश्चित ही न केवल हिन्दू शास्त्रों का ज्ञाता अपितु पारंगत पण्डित होगा···ताज शरीर और आत्मा से भारतीय है, मूलरूप से भारतीय है, केवल इसका कुछ भाग विकृत कर उसे बाहरी जामा पहनाने का यत्न हुआ है···कोई भी यह भली प्रकार देख सकता है कि इसमें एक संस्कृति और विचारधारा जो कि पूर्णतया भारतीय है, कि मुद्रा अंकित है···तीन भाग (चौकोर, अष्टभुज और मंडलाकार) सृष्टि, स्थिति तथा संहार के प्रतीक हैं और तीन देवता ब्रह्मा, विष्णु और महेश का प्रतिनिधित्व करते हैं···ताज का शिल्प कमल से लिया गया है—जो हिन्दूओं का पूज्य पुष्प है—सारी वास्तुसज्जा और निर्माण सब भारतीय हैं और प्राचीन स्मारकों और उस समय के स्मारकों से ग्रहण की गई हैं जब कहीं अरबी, मुस्लिम और सेल्जक पद्धति की वास्तुविद्या का नाम भी सुनने में नहीं आया था।''

शाहजहाँ भावुकता-शून्य था

ताजमहल के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को देते हुए तो उसे रोमियो जैसा मुमताज़ का प्रेमी और सहृदय कलाकार बताना है, किन्तु इस सबसे दूर शाहजहाँ निष्ठुर, घमण्डी, अहंकारी, कृपण, भ्रान्तमति, क्रूर, कामुक और प्रजापीड़क शासक था और मुमताज़ उसकी पूर्ण सहचरी थी प्रेमिका नहीं।

मौलवी मोइनुद्दीन अहमद कहता है[१]—"योरोपियन इतिहासकार कभी शाहजहाँ पर यह आरोप लगाते हैं कि वह धर्मान्ध शासक था जिसका मूल कारण मुमताज़ की संकुचित बुद्धि थी।"

हेवेल लिखता है[२]—"शाहजहाँ ने जेसुइस्ट को बुरी तरह सताया। मुमताज़ महल, जो ईसाइयों की प्रबल शत्रु थी, उसने अपनी मृत्यु से कुछ ही समय पूर्व, हुबली में बसनेवाले पुर्तगालियों पर आक्रमण करने के लिए शाहजहाँ को उकसाया।"

दि ट्रांजेक्शन्स ऑफ दि आर्क्योलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा में लिखा है[३]—"शाहजहाँ अनेक बार साधुओं और धर्मनिरपेक्ष पुरोहितों को मुसलमान बनने के लिए आमन्त्रित करता। (परन्तु जब वे उसके प्रस्ताव को ठुकरा देते) शाहजहाँ अत्यन्त क्रोधित होता और तभी तुरन्त आदेश देता कि अगले दिन ही उन पुरोहितों को कठोर यातनाएँ, जैसे हाथी के पैरों तले कुचलवा देना, दी जाएँ।"

कौन कहता है—"शाहजहाँ ने निरंकुशता में सभी मुगल बादशाहों का

---

१. दि ताज एण्ड इट्स एनविरोनमेंट्स, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ८, आर. जी. बंसल एण्ड कं., ३३९, कसेरत बाजार, आगरा द्वारा मुद्रित।

२. दि नाइन्टीन्थ सैंचुरी एण्ड आफ्टर, खण्ड ३, पृष्ठ १०४१

३. ट्रांजेशक्शन्स ऑफ दि आर्क्योलौजिकल सोसाइटी ऑफ आगरा, जनवरी, सन् १८७८, पृष्ठ ८९

अतिक्रमण कर दिया और वह उनमें से सबसे प्रथम था जिन्होंने सिंहासन की सुरक्षा के लिए सभी सम्भावित शत्रुओं की हत्या कर दी''रो, जो कि शाहजहाँ के व्यक्तित्व को जानता था, के अनुसार उसका स्वभाव कठोर और अहंकारी था तथा सबके प्रति उसकी तिरस्कारपूर्ण भावना थी।''

यहाँ तक कि शाहजहाँ के दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद ने दौलताबाद पर विजय के संदर्भ में लिखा है कि—''कासिम खाँ और कम्बू ४०० ईसाई बंदियों को, जिनमें नर-नारी, बाल-वृद्ध सभी थे, उनकी देव-मूर्तियों सहित धर्मरक्षक बादशाह के सम्मुख लाए। उसने आज्ञा दी कि उन लोगों को इस्लामी मत के सिद्धान्त समझाए जाएँ और उनको कहा जाय कि वे इसे स्वीकार कर लें। बहुत थोड़ों ने उसे अंगीकार किया। किन्तु अधिकांश ने हठ एवं स्वेच्छाचारिता के वशीभूत उस सुझाव को ठुकरा दिया। उनको अमीरों में बाँट कर आदेश दिया कि उन निर्लज्ज कृतघ्नों को कष्टकर कारावास में डाल दिया जाए। परिणामस्वरूप उनमें से अनेक तो कारावास से सीधे ही नर्कवासी हो गए। पैगम्बर साहब से मिलती-जुलती उनकी मूर्तियों को यमुना में फेंकवा दिया और जो शेष रहीं उनको चूर-चूर करवा दिया।''

इतिहास शाहजहाँ की क्रूरता के वर्णन से परिपूर्ण है, जो पाठ्य-पुस्तकों के उस वर्णन को असत्य सिद्ध करता है जिसमें उसको बड़ा कलात्मक अभिरुचि का व्यक्ति और अपनी पत्नी के प्रति आस्थावान कहा गया है। क्रूरता शाहजहाँ का जन्मजात लक्षण था। बाल्यावस्था से ही यह उसमें घर कर गई थी और शनैः-शनैः उसने उसके ही समान क्रूर उसके पिता जहाँगीर की भाँति प्रथम श्रेणी का दुरात्मा, दुष्ट बना दिया था।

शाहजहाँ की यह खलनायकता बचपन से ही अपने निकटस्थ सम्बन्धियों के प्रति प्रकट होने लगी थी, दूसरे अपरिचितों की तो बात ही क्या है। कीन की हैण्डबुक के पृष्ठ २५ पर एक विचित्र उद्धरण इसकी व्याख्या करता है। वह लिखता है कि शाहजहाँ ने ''खुले विद्रोह में (अपने पिता बादशाह जहाँगीर के विरुद्ध) फतेहपुर सीकरी पर अधिकार कर लिया और आगरा को लूट लिया जहाँ डैल्ला वैल्ले, जो उस समय भारत की यात्रा पर था, के अनुसार, उसकी सेना ने क्रूरता की भी सीमा का उल्लंघन कर दिया था। नागरिकों को इतना सताया गया कि वे अपना संचित धन देने के लिए विवश हो गए और अनेक सुन्दर स्त्रियों का सतीत्व लूटा गया और उनके अंग-भंग किए गए।''

भारतीय इतिहास की यह बहुत बड़ी विडम्बना और दुर्भाग्य है कि एक लुटेरे, कुटिल, निरंकुश, अत्याचारी, डाकू और विध्वंसक की प्रशंसा और ख्याति मुमताज़ के अनुरक्त पति, कला के पुजारी, साहित्य और संरक्षक, सुन्दर भवनों के जनक और स्वर्णकाल के शासक के रूप में की जाए। यह इतिहास के अध्यापक और विद्यार्थी दोनों की बुद्धि का अपमान है।

पृष्ठ ३८ की एक टिप्पणी से कीन आगे लिखता है—"शाहजहाँ ने अपने सबसे छोटे भाई शहरयार और अपने चाचा दानियल के दो पुत्रों को मौत के घाट उतार दिया। कुछ इतिहासकार उसको अपने बड़े भाई खुसरो की हत्या का भी श्रेय प्रदान करते हैं।"

शाहजहाँ की अतिशय कामुकता और अपनी पत्नी मुमताज़ के स्वास्थ्य और सुख के प्रति नितान्त असम्बद्धता का ही परिणाम है कि १८ वर्ष से भी कम समय के विवाहित जीवन में उसे १४ बच्चों को जन्म देना पड़ा और फलस्वरूप उसकी अकाल मृत्यु हुई। १४ बच्चों की लम्बी सूची जिन्हें मुमताज़ ने १८ वर्ष से भी कम समय में जन्म दिया, जब तक कि उसने अन्तिम बच्चे को जन्म दे दिया और तब मृत्यु बोली, 'इत्यलम्'। यह सब कीन की हैण्डबुक के पृष्ठ ३७ की टिप्पणी में उल्लिखित है। वह भयानक सूची जो परिवार-नियोजन के विपरीत है, इस प्रकार है—१. हुरीइल निसा (कन्या) जन्म १६१२, मृत्यु १६१५, २. जहाँआरा (कन्या), जन्म १६१३ जिसके साथ बाद में कहा जाता है कि शाहजहाँ ने अवैध सम्बन्ध स्थापित कर लिये थे। ३. मोहम्मद दाराशिकोह, जन्म १६१४, ४. मोहम्मद शाहशुजा, जन्म १६१५, ५. रोशनारा (कन्या), जन्म १६१६, ६. मोहम्मद औरंगजेब, जन्म १६१७, यही वह औरंगजेब है जो इतिहास में काले अक्षरों से अंकित है। उसने अपने सभी शत्रुओं को मारने और अपमानित करने में अपने पिता के उदाहरण का अनुसरण किया था। ७. उम्मेद बख्श, जन्म १६१९, मृत्यु १६२१, ८. सुरैया बानो, जन्म १६२०, मृत्यु १६२७, ९. एक अनाम पुत्र १६२१ में उत्पन्न हुआ और तुरन्त मर गया। १०. मुराद बक्श, जन्म १६२३, ११. लतफुल्ला, जन्म १६२६ और अगले वर्ष मृत्यु, १२. दौलत अफजल, जन्म १६२७ और आगामी वर्ष मृत्यु, १३. अनाम कन्या १६२८ में जन्म के तुरन्त बाद मृत्यु, १४. गौहरा, (कन्या) जन्म १६२९, इस वर्ष ही और इस बच्चे के प्रसव के समय ही मुमताज़ की मृत्यु हुई।

अपने पुत्र शाहजहाँ के बारे में उसका पिता जहाँगीर जो कहता है वह यह

है[1]—"मैंने निर्देश दिया कि भविष्य में उसे (शाहजादा शाहजहाँ को) नराधम समझा जाए और जहाँ कहीं इस इकरारनामे में नराधम शब्द का प्रयोग हो वह उसके लिए ही है···जो कुछ मैंने उसके लिए किया है लेखनी वह सब वर्णन नहीं कर सकती, न ही मैं अपने दुःख की विवेचना कर सकता हूँ और वह क्षोभ भी नहीं, जो मुझे आत्मक्लेश दे रहा है···विशेषतया इन यात्राओं और अभियानों के दौरान जब उसका (विद्रोही राजकुमार शाहजहाँ) पीछा करते हुए मुझे अनेक कष्ट झेलने पड़े हैं, जो अब मेरा पुत्र नहीं रहा।"

किसी भी चीज का निर्माता होने के विपरीत शाहजहाँ विध्वंसक था। उसका स्वयं का दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी क्या कहता है। वह यह है[2]—"बादशाह सलामत के सामने यह बात लाई गई कि धार्मिक भावना के महान् केन्द्र बनारस में पिछले शासनकाल में अनेक मूर्तियों के मंदिर बनने आरम्भ हुए, किंतु वे अधूरे ही रह गए। वे धर्मात्मा अब उन्हें पूर्ण करने के इच्छुक थे। बादशाह सलामत, जो धर्मरक्षक हैं, ने आज्ञा दी कि बनारस तथा उन सभी स्थानों पर जहाँ उनका राज्य है, जहाँ कहीं भी मंदिरों का पुनरुद्धार किया गया हो उनको फिर से गिरा दिया जाए। अब इलाहाबाद प्रान्त से यह सूचना मिली है कि बनारस जिले के ७६ मंदिरों को भूमिसात् कर दिया गया है।"

उपरिलिखित उद्धरण से हम निष्कर्ष निकालते हैं। प्रथमतः हम इतिहास के छात्रों के सम्मुख सामान्य सिद्धान्त के रूप में अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं कि विध्वंसक कभी निर्माता नहीं हो सकता। द्वितीयतः ये शब्द 'भूमिसात्' 'विध्वंस' का यह स्पष्ट अभिप्राय समझना चाहिए कि हिन्दुओं को उनके मंदिरों से भगा दिया गया, उनकी मूर्तियों को फेंक दिया गया और उसी भवन को मस्जिद के रूप में प्रयुक्त किया गया। मुसलमान शासकों की यही वह प्रक्रिया है जो स्पष्ट करती है कि प्रत्येक मध्यकालीन मकबरा और मस्जिद हिन्दू-मन्दिरों अथवा भवनों जैसा दिखाई देता है।

श्री कँवरलाल की पुस्तक में लिखा हैं[3]—"शाहजहाँ सर्वात्मना कट्टर सुन्नी मत का माननेवाला था और सम्भवतया मुमताज़ महल के भड़काने पर उसने पुनः

---

१. इलियट एण्ड डौसन का इतिहास, खंड ६, पृष्ठ २८१
२. वही, खंड ७, पृष्ठ ३६
३. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ ४२-४३

हिंदू मंदिरों को तुड़वाया...उसने आगरा में गिरजाघरों की मीनारों को तुड़वा दिया[१]...योरोपियन पर्यटक बर्नियर और मनूसी ने शाहजहाँ के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित असंख्य कलंकों का उल्लेख किया है और उसे ऐसा घृणित व्यक्ति चित्रित किया है जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य व्यभिचारपूर्ण और राक्षसी कामासक्ति को प्रश्रय देना था। उनके अनुसार प्रासाद में अधिकतर सौन्दर्य का बाजार लगाना और राज्य द्वारा बहुत बड़ी संख्या में नर्तकियों का भरण-पोषण, हरम में सैकड़ों पुरुष कर्मचारियों की विद्यमानता आदि ऐसे अनेक कार्य शाहजहाँ की वासना-तृप्ति के उद्देश्य से होते थे। मनूसी कहता है—"ऐसा प्रतीत होता है कि मानो शाहजहाँ को केवल एक ही बात की परवाह थी—अपनी वासना-तृप्ति के लिए सुन्दरियों की तलाश।" वह शाहजहाँ की जफर खाँ और खलीलुल्लाह खाँ की पत्नियों से समीपता के सम्बन्ध में भी लिखता है। वह कहता है कि जब प्रातःकाल जफर खाँ की पत्नी दरबार की ओर जाती होती तो मार्ग में बैठे भिखारी चिल्लाते; 'ऐ शाहजहाँ की प्रातराश' हमारा ख्याल रख; और जब मध्याह्न के समय खलीलुल्लाह खाँ की पत्नी जाती होती तो वे चिल्लाते, 'ऐ शाहजहाँ के मध्याह्न का भोजन' हमारी सहायता कर। बर्नियर का कथन है कि सम्भोग की ओर शाहजहाँ का बहुत झुकाव था। मैनरिक कहता है कि शाहजहाँ ने अपनी बेटी की सहायता से शाइस्ता खाँ की पत्नी का सतीत्व नष्ट किया। पीटर मुंडी कहता है कि शाहजहाँ का अपनी पुत्री चमनी बेगम के साथ यौन-सम्बन्ध था। टैवर्नियर भी उसी धुन में लिखता है[२]—"वारिस ने अकबराबादी महल और फतेहपुरी महल का उल्लेख करते हुए उन्हें शाहजहाँ की दो चहेती दासी-युवतियाँ बताया है। सबसे अधिक आघातक सुझाव तो यह दिया जाता है कि शाहजहाँ के अपनी पुत्री जहाँनारा से अवैध यौन-सम्बन्ध थे।" बर्नियर कहता है, "बेगम साहिबा, शाहजहाँ की बड़ी लड़की, बहुत सुन्दर और सजीली थी, और अपने कामातुर पिता द्वारा बहुत प्यार की जाती थी। यह अफवाह थी कि उसका प्यार इस सीमा तक पहुँच गया था कि उन बातों पर विश्वास करना तक कठिन हो गया और सम्बन्धों को न्यायोचित सिद्ध करने के लिए उसको मुल्लाओं और न्यायविदों की शरण लेनी पड़ी। उसके अनुसार बादशाह को अपने ही

---

१. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ २६
२. वही, पृष्ठ २७

रोपे वृक्ष से फल तोड़ने की सुविधा से वंचित करना उनके लिए अनोखी बात थी।'' विंसेंट स्मिथ का मत है कि ''इन अवैध सम्बन्धों के पहले प्रमाण सबसे पहले डी लाइट के लेखों में प्राप्त होते हैं और इसकी पुष्टि थौमस हरबर्ट ने कर दी।''

शाहजहाँ के चरित्र के सम्बन्ध में महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश[1] क्या कहता है, अब हम यह देखेंगे। ''शाहजहाँ (१५९३-१६५८) पाँचवाँ मुगल बादशाह : शाहबुद्दीन मोहम्मद किरान उपनाम शाहजहाँ जोधपुर की राजकुमारी से जहाँगीर सलीम का पुत्र था। नूरजहाँ और आसखाँ के प्रयत्नों से उसको राज्य प्राप्त हुआ था। जब उसका पिता जीवित था शाहजहाँ ने उससे दो या तीन बार विद्रोह किया था। किन्तु सफल नहीं हो सका। राज्यासीन (१६२८) होने पर उसने अपने सभी (निकटस्थ) रिश्तेदारों की हत्या कर दी। १६३७ में शाहजी को पराजित कर उसने सारे अहमद नगर क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। योरोपियनों के भारत-प्रवेश के सम्बन्ध में उसने विशेष सावधानी बरती और धर्म के सम्बन्ध में हस्तक्षेप को उसने कदापि सहन नहीं किया। पुर्तगाली धर्म-परिवर्तन के कार्य में अभिरुचि प्रकट कर रहे हैं, इस बहाने को लेकर शाहजहाँ ने उनके विरोध में हुगली के किनारे उनकी बस्ती में अपनी सेना भेजी, उसने उस बस्ती को तहस-नहस कर दिया और उनकी सारी सम्पत्ति छीन ली। उसने पारसियों से कान्धार भी जीतना चाहा किन्तु सफल नहीं हो सका।''

शाहजहाँ की कामुकता और क्रूरता का जो सार ऊपर प्रस्तुत किया गया है, वह शाहजहाँ के मुमताज़ के प्रति विशेष लगाव की सभी बातों को मिथ्या सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। वह शाहजहाँ के हरम की ५,००० रखेलों में से एक थी और इनके अतिरिक्त उसके दरबारियों की पत्नियाँ और रक्षिकाएँ और दासियाँ भी थीं जिनका उपभोग वह अपनी अपरिमित काम-पिपासा की तुष्टि के लिए किया करता था।

मुमताज़ की मृत्यु से दुःखी होने के विपरीत शाहजहाँ ने अपनी पत्नी को उसकी मृत्यु पर भी एक राजनीतिक उपकरण के रूप में प्रयुक्त किया। उसने उसकी मृत्यु को एक उपयुक्त छल के रूप में प्रयोग करते हुए जयसिंह के भव्य पैतृक प्रासाद को हथिया कर एक और हिन्दू को उसकी सम्पत्ति और शक्ति से वंचित कर दिया, क्योंकि उसके मन में हिन्दुओं के प्रति गहन घृणा थी।

---

१. महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोश, खंड २०, पृष्ठ (स) १३

अपने विशिष्ट—कृपण, अभिमानी और कामुक—स्वभाव के कारण शाहजहाँ वह अन्तिम व्यक्ति हो सकता था जो हरम अथवा उससे बाहर भोग की गई अनेक नारियों में से किसी एक के लिए मकबरे के निर्माण जैसी भावुकतापूर्ण योजना पर धन का अपव्यय करे।

अन्य सभी तथाकथित मुस्लिम मकबरों—अर्थात् वे हिन्दू भवन जिन्हें पहले उन्होंने अपने निवास के लिए प्रयुक्त किया और बाद में दफनगाह के लिए—की भाँति ताजमहल भी मात्र मकबरा ही नहीं है, अपितु हिन्दू भवन है जिसे दफनगाह के रूप में परिणत कर दिया गया है। मुमताज़ के अतिरिक्त शाहजहाँ स्वयं भी उसकी बगल में पड़ा हुआ है। किन्तु यही सब कुछ नहीं है; उसी क्षेत्र में दो अन्य कब्रें भी हैं।

श्री कँवरलाल लिखते हैं[१]—"जिलोखाना के दूसरे छोर पर पूर्व की ओर वहाँ फिर दो भवन और हैं। ये मकबरे हैं सती उन्निसा (खानम) जो मुमताज़ महल की चहेती दासी थी और जिस पर बुराहनपुर में मुमताज़ की कब्र की देखरेख का भार सौंपा गया था। और वैसा ही दूसरा मकबरा सरहन्दी बेगम्‌ शाहजहाँ की दूसरी रानी का है। दोनों भवन बिलकुल एक समान बने हैं।"

सती उन्निसा खानम के मकबरे के बारे में कीन अपनी हैंडबुक के पृष्ठ १६१-१६२ में लिखता है—"जो शव वहाँ दफनाया हुआ बताया जाता है वह मुमताज़ की श्रद्धालु दासी का था। मकबरा (जिसे शाहजहाँ ने बनवाया) की लागत ३० हजार रुपए बताई जाती है। वह १६४७ में निस्संतान विधवा के रूप में लाहौर में मरी थी। आगरा में चित्तीखाना (सतीखाना का विकृत रूप) की नींव उसने रखी थी। मुख्य मकबरे का ऊँचा अष्टकोणीय चबूतरा''अष्टकोणीय केन्द्रीय शवगृह से घिरा हुआ है। ताज के विषय में भी अधिकारी विद्वान् कहते हैं कि उसका मकबरा भी उसके समीप ही बना है, यह विशिष्ट बात किसी तथ्य पर आधारित नहीं केवल सामान्य रूप से प्रचलित है।"

इससे यह स्पष्ट होता है कि ताजमहल से सम्बन्धित प्रत्येक कहानी की ही भाँति सती उन्निसा खानम के मकबरे की कहानी भी कपोल-कल्पित है। ऐसे सभी कब्र की तरह के टीले अपहृत हिन्दू भवनों में इसलिए बना दिए जाते थे कि जिससे

१. दि ताज, लेखक कँवरलाल, पृष्ठ ६९

हिन्दू उस पर अपना अधिकार सिद्ध न कर सकें और उनका पुनः प्रयोग भी न कर सकें। मुसलमान हिन्दुओं की इस कमजोरी से परिचित थे कि वे श्मशान को विकृत करना अथवा उस पर अधिकार करना अच्छा नहीं समझते। इस प्रकार कब्र की भाँति तिकोना टीला बना देना उनके लिए ऐसा ही था जैसे कोई सुदृढ़ सेना की टुकड़ी खड़ी कर दी गई हो अथवा पक्षियों या जंगली जन्तुओं को डराने के लिए खेत में पुतला खड़ा कर दिया हो, जिसमें कि उनका कुछ भी खर्च नहीं होता था। यह ऐसा साधारण किन्तु कुटिलतापूर्ण प्रयोग था जिससे कि हिन्दू भवनों को इस्लामी बनाया जा सके और यह सफलतापूर्वक कारगर सिद्ध हुआ। अब इतना समय बीत जाने पर कीन जैसे विद्वान् लोग भी सन्देह व्यक्त करने लगे कि कदाचित् उन मकबरों में उन लोगों के शव दफनाए ही न गए हों जिनका कि उल्लेख किया जाता है।

किन्तु कीन के विवरणों में कुछ अन्य बातें भी हैं जो गहन अध्ययन का विषय हैं। पहली बात तो यह है कि उस युग में जब अधिकांश यात्रा पैदल होती थी, कौन एक सेविका के सड़े हुए शव को लाहौर से आगरा—लगभग ४०० मील दूर—लाकर दफनाने के लिए चिन्तित होगा? दूसरे, अपहृत ताजमहल को विकृत करने के लिए उस पर कुरान की आयतें खुदवाने और कुछ कक्षों को बन्द करवाने के लिए शाहजहाँ ने मजदूरी के नाम पर एक पाई भी दिए बिना कार्य करवाया था, वह सेविका के मकबरे पर ३० हजार रुपया क्यों खर्च करता? तीसरे, किस प्रकार एक साधारण दासी आगरा के सतीखाने में दफन के लिए स्थान पा सकी? उस कथन में 'नींव रखी' से क्या अभिप्राय है? सतीखाना तो आगरा का वह प्राचीन भाग है जो केवल सती होनेवाली, अर्थात् मृत पति के शव के साथ चिता में भस्मसात् होनेवाली हिन्दू पत्नियों के लिए आरक्षित था? इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार मुस्लिम इतिहास ने हिन्दुस्तान की हर वस्तु पर, यहाँ तक कि असभ्य, बुर्के में रहने वाली मुस्लिम सेविकाओं, कुम्हारों और भिश्तियों के नाम पर भी मनगढ़न्त दावे प्रस्तुत किए हैं। चौथे, इसकी अष्टकोणीय आकृति इस बात का स्पष्ट संकेत करती है कि यह विकृत हिन्दू भवन है। पाँचवें, क्या उस दासी की आजीवन सेवा का पारिश्रमिक ३० हजार बनता होगा जिससे यह न्यायोचित सिद्ध किया जा सके कि इतनी राशि उसके मकबरे पर इसलिए व्यय की गई थी? यदि उसके मकबरे पर ३० हजार व्यय किया गया तो क्या उसका अपना घर इससे अधिक मूल्य का था? यदि हरम की ५,००० रखेलों की १० हजार दासियाँ थीं तो क्या शाहजहाँ से सब रखेलों के लिए

एकाएक ताजमहल और उसकी प्रत्येक सेविका के लिए एक पृथक् मकबरा बनवाने की आशा की जा सकती है?

यहाँ हम पाठकों से इस बात पर विचार करने के लिए कहेंगे कि शाहजहाँ को क्या इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं था कि वह आजीवन अपनी बेगमों और उनकी परिचारिकाओं के मकबरे और कब्रें ही बनवाता रहे? और इसका क्या प्रयोजन कि उसकी रानी सरहन्दी बेगम और मुमताज़ की परिचारिकाओं को एक समान मकबरों में दफनाया गया? क्या वह मरणोपरान्त अपनी रानी को नौकरानी के स्तर पर लाकर उसका अपमान करना चाहता था? या फिर शाहजहाँ परिचारिका सती उन्निसा को एक बेगम के स्तर पर लाना चाहता था? स्पष्ट रूप में तो यही कहा जा सकता है कि हिन्दू प्रासाद को शाहजहाँ ने हथियाया था। उसमें कई स्तम्भ, गलियारे और कक्ष विद्यमान थे, क्योंकि उसको उनका किसी-न-किसी प्रकार कोई-न-कोई उपयोग करना था इसलिए दो समान उपभवनों में एक में बेगम को दफना दिया और दूसरे में एक परिचारिका को।

यदि सरहन्दी बेगम की मृत्यु पहले हुई होती और मुमताज़ की बाद में, तो हमारी इतिहास की पुस्तकों में खुशी-खुशी शाहजहाँ और सरहन्दी बेगम की प्रेमकथाएँ गढ़ ली जातीं, यह सिद्ध करने के लिए कि ताजमहल जैसा भव्य भवन उसके मकबरे के रूप में बनवाया गया। इसलिए मुस्लिम काल से सम्बन्धित भारतीय इतिहास मिथ्या अनुमानों और बाद में मनगढ़न्त कथानकों को न्यायोचित सिद्ध करने तथा उन भ्रामक, तर्कहीन, झूठे तथा भद्दे अनुमानों को सत्य सिद्ध करने के प्रयासों से ओतप्रोत है।

शाहजहाँ का शासनकाल न स्वर्णिम न शान्तिमय

शाहजहाँ के शासन को इतिहास का स्वर्णिम तथा शान्तिमय काल कहना, जैसा कि उसके शासन से सम्बन्धित सभी विवरणों में उल्लिखित है, और उसको मन्दिरों, मस्जिदों, दुर्गों और प्रासादों का निर्माता मानना सत्य का उपहास करना है। उसका शासन अत्यधिक कष्टकारक, महामारियों से भरपूर, युद्ध और अकालग्रस्त शासनों में से एक था, उसके शासन को शान्तिमय कहने का केवल मात्र यही अभिप्राय है कि जिससे आगरा में ताजमहल और दिल्ली में लाल किला जैसे भवनों के निर्माण का जो मिथ्या श्रेय उसको दिया जाता है उसे सिद्ध किया जा सके।

हम पहले ही सिद्ध कर चुके हैं कि बहुत बड़ी संख्या में—लगभग ९९ प्रतिशत—गैर-मुस्लिम भारतवासियों के साथ उसने पाशविकतापूर्ण अत्याचार किए। उनको सताया गया, दण्ड दिया गया और उनके मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया गया। हम यह भी बता चुके हैं कि शाहजहाँ ने अपने उन निकट संबंधियों की, जो गद्दी के अधिकारी सिद्ध होते अथवा उसके अपने अधिकार को चुनौती देते, किस प्रकार हत्या करवा दी।

क्या किसी शासक के शासन को मात्र कल्पना के प्रभाव से स्वर्णिम और शान्तिपूर्ण कहा जा सकता है जबकि उसके शासन में किसी भी स्त्री का सतीत्व और किसी पुरुष का जीवन और सम्पत्ति सुरक्षित न हो? क्या वह काल स्वर्णिम और शान्तिमय हो सकता है यदि वह अनन्त युद्धों और विद्रोहों से परिपूर्ण हो?

शाहजहाँ के पास न तो समय था, न धन, न सुरक्षा का साधन था और न उसमें वह दृष्टि ही थी कि जिससे वह दिल्ली का लाल किला और तथाकथित जामा मस्जिद और आगरा में ताजमहल जैसे भव्य भवनों का निर्माण कर सके।

शाहजहाँ के पास तो इतने पर्याप्त साधन भी नहीं थे कि हथियाये गए हिन्दू भवन

को परिवर्तित करने के उद्देश्य से मचान भी बँधवा सके, उसका अपना स्वयं का भवन बनवाने की बात तो दूर की है। टैवर्नियर का कथन इसमें हमारे पास प्रमाण है।

"बादशाह जहाँगीर की मृत्यु २७ अक्तूबर, १६२७ को हुई (और) शाहजहाँ आगरे में ६ फरवरी, १६२८ को गद्दी पर बैठा।"[१] मुहम्मद काजिम के आलमगीरनामा[२] के अनुसार, "शाहजहाँ जब १८ सितम्बर, १६५७ को बीमार पड़ा तो शासन से उसका प्रभावपूर्ण नियन्त्रण समाप्त हो गया, और उसके बेटे शासन हथियाने के लिए विद्रोह कर परस्पर लड़ने लगे।"

इस प्रकार शाहजहाँ का शासन २९ वर्ष और ७ मास तक चला।

यह सारा काल युद्धों, विद्रोहों, दमनकारी सैनिक कार्यवाहियों और अकाल से पूर्ण रहा। पाठकों की जानकारी के लिए शाहजहाँ के शासनकाल का वर्षानुवर्ष का ब्योरा नीचे दिया जा रहा है जो स्पष्टतया इस पारम्परिक मान्यता का खण्डन करेगा कि वह शान्ति और समृद्धि का काल था, जिस काल में वह यह सब कुछ करना चाहता था। वह हर घंटे संभोग में व्यस्त रहे और फिर भव्य एवं विशाल भवनों का निर्माण कर ले, मानो यह सब जादू का खेल हो।

यह सब विवरण[३] इलियट और डौसन द्वारा मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी कृत बादशाहनामा, इनायत खाँ का शाहजहाँनामा, मोहम्मद वारिस का बादशाहनामा, मोहम्मद काम्बू का अमल-ए-सलीह और मुहम्मद सादिक खाँ के शाहजहाँनामा के सारे तथ्यों का अनूदित संकलन है जो इस प्रकार है—

१. शाहजहाँ के गद्दीनशीन होने पर नरसिंहदेव का पुत्र जुझार आगरा छोड़कर उंड़छा के लिए चला गया, जहाँ उसकी स्थिति अच्छी थी और वहाँ जाकर उसने अपनी शक्ति को और भी बढ़ाया। महावतखान खानखाना के अधीन उसके विरुद्ध एक टुकड़ी भेजी गई।
२. खानजहाँ के विरुद्ध अभियान में धौलपुर के निकट एक युद्ध लड़ा गया।
३. शासन के तीसरे वर्ष नासिक और त्र्यम्बक को जीतने के लिए ८ हजार अश्वारोही भेजे गए।

---

१. इलियट एण्ड डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ ५-६
२. वही, पृष्ठ, १७८
३. वही, पृष्ठ ३-१३३

४. जदुराय, उसके पुत्रों, पौत्रों और सम्बन्धियों ने शाही सरकार से मनसबें लीं। जदुराय अपने दो पुत्रों उजला और रघु तथा पौत्र बलवन्त के साथ पकड़वाकर मार डाला गया।
५. निजामशाह और खानजहाँ के विरुद्ध देवलगाँव, बगलान, संगमनेर, चगडोर दुर्ग, भीड़, शेगाँव, धरणगाँव, चालीसगाँव और मंजीरा दुर्ग के आसपास एक अभियान किया गया। मंसूरगढ़ पर अधिकार किया गया।
६. शासन के छठे वर्ष खानजहाँ देपालपुर, उज्जैन और नवलाई की ओर भाग गया। उसकी सेना के लगभग चार सौ अफगान और दो सौ बुन्देले मार डाले गए। धरूर दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया।
७. परेण्डा (अहमदनगर और शोलापुर के मध्य स्थित) पर आक्रमण किया गया।
८. औरंगाबाद से ५० मील उत्तर-पूर्व पर सिटुंडा-दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया।
९. कन्दहार (नान्देड़ से २५ मील दक्षिण-पश्चिम और धरूर से ७५ मील पूर्व) ले लिया गया।
१०. बीजापुर के मोहम्मद आदिलशाह के विरुद्ध शासन के पाँचवें वर्ष कार्यवाही की गई।
११. बुरहानपुर में बहुत अधिक समय तक रहने के बाद थका हुआ और क्रुद्ध बादशाह राजधानी आगरा लौटा, क्योंकि दक्षिण के मामलों को निपटाने में आजम खाँ असफल सिद्ध हुआ था।
१२. हुगली दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया।
१३. गालना दुर्ग एक अन्य अभियान का केन्द्र बना।
१४. शासन के छठे वर्ष में, मालवा में अपनी जाति का मुखिया भागीरथ भील विद्रोह कर उठा।
१५. इसी वर्ष बहुत बड़े रूप में हिन्दू मन्दिरों को नष्ट करने का अभियान चलाया गया।
१६. दौलताबाद पर विजय प्राप्त की गई।
१७. कासिम खाँ और कम्बू ४०० ईसाइयों को पकड़कर ले आए। बन्दियों, जिनमें महिलाएँ भी थीं, को इस्लाम स्वीकार करने या यातना और मौत

स्वीकार करने के लिए विवश किया गया।

१८. शासन के सातवें वर्ष में शाहजादा शाह शुजा परेण्डा दुर्ग पर चढ़ाई करने के लिए गया। उसके आसपास अनेक लड़ाइयाँ लड़ी गईं।

१९. जुझारसिंह बुन्देला और उसके पुत्र विक्रमजीत ने विद्रोह कर दिया। उनके विरुद्ध अभियान माण्डेर, उंड़छा और चौरागढ़ दुर्ग के आस-पास केन्द्रित हो गया। अन्य अभियानों की भाँति यह अभियान शाहजहाँ के सैनिकों द्वारा किए गए दानवीय अत्याचारों की करुण कहानी है।

२०. झाँसी दुर्ग पर अधिकार कर लिया गया।

२१. निजामशाह को दबाने के लिए शाही सेना भेजी गई।

२२. अपने शासन के नौवें वर्ष में शाहजहाँ स्वयं कन्दहार, नान्देड़, उदगीर उसा, अहमदनगर, अश्ते, जुनार, संगमनेर, नासिक, त्र्यम्बक और मसिज को दबाने के अभियान में सम्मिलित होने दक्षिण की ओर चल दिया।

२३. खानजहाँ और खानजमाँ ने बीजापुर के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया। उदगीर, इन्द्रापुर, मालकी, कल्याण, धाराशिव, माहुली और लोहागाँव से लड़ाइयाँ लड़ी गईं। अब्दुल हमीद का बादशाहनामा बताता है कि खानजमाँ ने बीजापुर के प्रदेशों में घुसकर लूट मचा दी और जिस किसी भी बस्ती में वह गया उसे नष्ट कर दिया''। कोल्हापुर पर अधिकार कर लिया गया। मीराज और रायबाग लूट लिये गए और आँकी, टाँकी, अलका और पलका (दौलताबाद से ३६ मील पर) दुर्गों पर अधिकार कर लिया।

२४. शासन के दसवें वर्ष में जुनीर दुर्ग हथिया लिया गया। शाहू का दक्षिण में माहुली और मुरंजन तक पीछा किया गया। परिणामस्वरूप शाहू को युवा निजामशाह सहित आत्मसमर्पण करना पड़ा। उनसे जुनीर, त्र्यंबक, त्रिंगलवाड़ी, हरीस, जुघन, जुंद और हरसिरा दुर्गों को भी सौंपने पर विवश किया गया।

२५. जुझार के पुत्र पृथ्वीराज के अधीन, जो प्रथम हत्याकांड में बच निकला था, बुन्देलों ने विद्रोह कर दिया।

२६. कश्मीर के सूबेदार जफर खाँ को ८० हजार अश्वारोही और पदाति सेना लेकर तिब्बत पर आक्रमण के लिए जाने का आदेश हुआ।

२७. शासन के ग्यारहवे वर्ष में कन्दहार और अन्य दुर्गों पर अधिकार कर लिया गया।

२८. कूच हाजू के शासक परीक्षित और कूच-बिहार के शासक लक्ष्मीनारायण ने विद्रोह कर दिया।

२९. नौ दुर्गों, ३४ परगनों और १००१ ग्रामोंवाले बगलाना प्रदेश पर चढ़ाई अभियान किया।

३०. शासन के बारहवें वर्ष चेतगाँव के राजा माणिकराज को अपदस्थ कर दिया गया।

३१. छोटे तिब्बत से बुरंग पर अधिकार करनेवाले बड़े तिब्बत के शासक संगी ब्रेमखाल के विरुद्ध भयंकर अभियान छेड़ा गया।

३२. शासन के तेरहवें वर्ष सिस्तान से कन्दहार के विरुद्ध आक्रमणकारी सेना भेजी गई। बस्त के निकट खाँशी दुर्ग पर अधिकार किया किन्तु बाद में छोड़ना पड़ा।

३३. जुझार के पुत्र पृथ्वीराज को पकड़कर ग्वालियर दुर्ग में बन्दी बना दिया गया।

३४. शासन के चौदहवें वर्ष में गुजरात के विद्रोही कोली और काठी तथा किश्तवार के जाम को दण्ड देने का अभियान छेड़ा गया।

३५. काँगड़ा के राजा बासु के पुत्र जगतसिंह ने बादशाह के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व किया।

३६. शासन के पन्द्रहवें वर्ष में जगतसिंह के विरुद्ध अभियान छेड़ा गया। मु. नूरपुर और अन्य दुर्ग हथियाए गए।

३७. शासन के सत्रहवें वर्ष पालामऊ के राजा के विरुद्ध शाही सेना भेजी गई।

३८. शासन के उन्नीसवें वर्ष समरकन्द पर अधिकार करने के लिए उसके प्रमुख प्रवेश-द्वार बलख और बादकशाँ के विरुद्ध चढ़ाई की गई। ५० हजार अश्वारोही, १० हजार पदाति और बन्दूकधारी आदि-आदि के साथ मुरादबख्श को वहाँ भेजा गया। बादशाह स्वयं काबुल की ओर गया। काहमर्द का किला अधिकार में कर लिया गया तथा कुन्दाज और बलख के किले जीत लिये गए।

३९. विजित प्रदेशों में विद्रोहियों को दबाने के लिए सादुल्ला खाँ को नियुक्त किया गया।

४०. शाहजहाँ-शासन के बीसवें वर्ष में गड़बड़वाले प्रदेशों में औरंगजेब को भेजा गया और उसे बलख और बादकशाँ नजर मुहम्मद खाँ को देकर वापस भागना पड़ा।

४१. शासन के बाईसवें वर्ष फारसियों ने कन्दहार पर चढ़ाई कर दी। उन प्रदेशों की सुरक्षा के लिए शाही सेना भेजी गई, किन्तु लम्बी और निराशाजनक लड़ाई के उपरान्त बस्त और कन्दहार हार गए।

४२. शासन के २३वें वर्ष में गज़नी के प्रदेशों की जनता ने शाहजहाँ की फौजों द्वारा उनकी फसलों को पूर्णतया नष्ट कर दिए जाने और सम्पत्ति के लूट लिए जाने की शिकायत की।

४३. शासन के पच्चीसवें वर्ष में तिब्बत में विद्रोह से वह प्रदेश हाथ से निकल गया। कंदहार को पुनः हथियाने के लिए बहुत बड़ी सेना भी भेजी गई।

४४. कन्दहार पर अधिकार की लड़ाई शासन के छब्बीसवें तथा सत्ताईसवें वर्ष भी चलती रही।

४५. शासन के अट्ठाईसवें वर्ष अल्लामी को चित्तौड़ को ध्वस्त करने और राणा को पराभूत करने का आदेश हुआ।

४६. शासन के उन्तीसवें वर्ष गोलकुण्डा और हैदराबाद पर अधिकार का अभियान छेड़ा गया।

४७. शासन के तीसवें वर्ष शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगजेब को बीजापुर के विरुद्ध अभियान का आदेश दिया।

४८. इस अवधि में जो शाहजहाँ के कठिनाईपूर्ण शासन का अन्तिम समय था, शाही सेना को अत्यन्त दुर्दमनीय शत्रु राजा जसवन्तसिंह का भी सामना करना पड़ा।

निरन्तर चलनेवाले युद्धों, विद्रोहों और लूट-खसोट के परिणामस्वरूप उत्पादक क्रिया-कलापों में अस्थिरता तथा उपज के विनाश के कारण शाहजहाँ की असहाय प्रजा को तीव्र निराशा का सामना करना पड़ा। उनको किन भयंकरताओं एवं शून्यताओं का सामना करना पड़ा उसका एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है।

यह विवरण शब्दशः शाहजहाँ के दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल

हमीद लाहौरी के बादशाहनामे से लिया गया है।

मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी शाहजहाँ के शासन के चौथे वर्ष अर्थात् उस वर्ष जब मुमताज़ की मृत्यु हुई थी, सन् १६३० का विवरण[१] भाग एक के पृष्ठ ३३८ पर लिखता है। पृष्ठ ३६२ पर उसी वर्ष के विवरण को जारी[२] रखते हुए वह लिखता है—"प्रचलित वर्ष में भी सीमान्त प्रदेशों में अभाव रहा और दक्षिण तथा गुजरात में तो पूर्ण अभाव रहा। इन दो प्रदेशों के निवासी नितान्त भुखमरी के शिकार बने। रोटी के एक टुकड़े के लिए जीवन प्रस्तुत किया जाता, किन्तु खरीददार कोई नहीं था। सन्तुष्ट जीवन व्यतीत करनेवाले भी आहार के लिए मारे-मारे फिरते थे। जो हाथ सदा देते रहे वे आज भोजन की भिक्षा के लिए उठने लगे। जिन्होंने कभी घर से बाहर पग भी न रखा हो वे आहार के लिए दर-दर भटकने लगे। बहुत समय तक कुत्ते का मांस बकरे के मांस के रूप में बेचा जाने लगा और हड्डियों को पीसकर आटे में मिला, बेचा जाने लगा। जब इसका पता चला तो बेचनेवालों को न्याय के हवाले किया जाने लगा, अन्त में वह अभाव इस सीमा तक पहुँच गया कि मनुष्य एक-दूसरे का मांस खाने को लालायित रहने लगे और पुत्र के प्यार से अधिक उसका मांस प्रिय हो गया। मरनेवालों की संख्या इतनी अधिक हो गई कि उनके कारण सड़कों पर चलना कठिन हो गया था, और जो चलने-फिरने लायक थे वे भोजन की खोज में दूसरे प्रदेशों और नगरों में भटकते फिरते थे। वह भूमि जो अपने उपजाऊपने के लिए विख्यात थी वहाँ कहीं उपज का चिह्न तक नहीं रहा था...। बादशाह ने अपने अधिकारियों को आज्ञा देकर बुरहानपुर, अहमदाबाद और सूरत के प्रदेशों में निःशुल्क भोजनालयों की व्यवस्था करवाई।"

कोई सहज ही अनुमान लगा सकता है कि जब बकरे के मांस के नाम पर कुत्ते का मांस बेचा जाता हो, माता-पिता द्वारा पुत्र का मांस-भक्षण किया जा रहा हो और मृत कुत्ते की हड्डियाँ पीसकर आटे में मिलाई जा रही हों तो बीमारियों का प्रकोप भी हुआ ही होगा।

यह अब पाठकों के ही विचार का विषय है कि भीषण दुर्भिक्ष के ऐसे वर्ष में शाहजहाँ अपनी मृत पत्नी मुमताज़ की स्मृति में किसी भव्य भवन का निर्माण-कार्य आरम्भ करा पाया होगा। ऐसा दुष्काल केवल उसके शासन के चौथे वर्ष में ही नहीं पड़ा

१. इलियट व डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ १९-२५

था। बादशाहनामे का लेखक, उपरिलिखित सार-संक्षेप इन शब्दों से प्रारम्भ करता है—'वर्तमान वर्ष में भी' जिससे यह प्रकट होता है जब-तब अकाल पड़ता रहता था। ऐसा कौन-सा राजा होगा जो ऐसी विषम स्थिति में विशाल स्मारक बनवाना प्रारम्भ करने का साहस भी करे। और जब मनुष्य मक्खियों की भाँति मर रहे हों उस समय उसके पास इतना बड़ा व्ययसाध्य स्मारक बनाने के लिए धन और जन कहाँ से आया होगा?

यह भी स्मरण रखना होगा कि मुगल साम्राज्य के यौवनकाल में, बाबर से औरंगजेब तक, शाहजहाँ ही ऐसा बादशाह था जो अपने जीवनकाल में ही अपदस्थ कर दिया गया और आठ वर्ष बाद अपने ही पुत्र की कैद में बन्दी-रूप में मरा।

शाहजहाँ का राज्य यदि शान्ति तथा समृद्धि का राज्य होता तो उसके रुग्ण होने की सूचना मिलते ही उसके पुत्र तथा अन्य अधीनस्थ कर्मचारी विद्रोह न कर उठते। किन्तु ऐसी राजनीतिक उथल-पुथल यह सिद्ध करती है कि किस प्रकार उसकी पारिवारिक स्थिति डावाँडोल थी, प्रजा कष्ट में होने के कारण असन्तुष्ट थी। मुहम्मद कासिम अपने 'आलमगीरनामा' में शाहजहाँ के निन्दनीय शासन के अन्त के विषय में जो लिखता है वह इस प्रकार है[१]—"शाहजहाँ को ८ सितम्बर, १६५७ को रोग ने आ दबोचा। उसकी बीमारी लम्बी चली और प्रतिदिन उसका शरीर क्षीण होता गया। इस कारण वह राज्य के कार्य करने में असमर्थ था। प्रशासन में सभी प्रकार की अनियमितताएँ होने लगीं और हिन्दुस्तान के बहुत बड़े भाग में बड़े उपद्रव होने लगे। अयोग्य एवं अकर्मण्य दाराशिकोह स्वयं को राज्य का उत्तराधिकारी समझने लगा, किन्तु राजा की अपेक्षित योग्यता के अभाव में लोभ के वशीभूत उसने अपना उल्लू सीधा करते हुए साम्राज्य की प्रतिष्ठा को धक्का पहुँचाया...। राज्य के कार्य में घोर दुर्व्यवस्था उत्पन्न होने लगी। असन्तुष्ट और विद्रोही लोगों ने अपने सिर उठाने शुरू किए तो इधर-उधर झगड़े बढ़ने लगे। उद्दण्ड प्रजा ने कर चुकाने से इन्कार कर दिया। सब ओर से विद्रोह के बीज पनपने लगे और धीरे-धीरे वह इतनी ऊँचाई पर पहुँच गए कि गुजरात में मुरादबख्श ने स्वयं गद्दी सँभाल ली।...उधर बंगाल में शुजा ने भी वही किया...।"

यदि शाहजहाँ का शासनकाल स्वर्णिम होता, जैसा कि गलत तरीके से उसे ऐसा बताया जाता है, तो जब वह बीमार पड़ा तब देशभर में ऐसी अस्थिरता और

१. इलियट व डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ १७८-१७९

विद्रोह की भावना न भड़क उठती। ऊपर जो उद्धरण प्रस्तुत किया गया है उससे सिद्ध होता है कि निःस्सन्देह शाहजहाँ का पूर्ण शासनकाल असन्तोष, अव्यवस्था, क्रूरता, अकाल, भ्रष्टाचार, नरसंहार और अनैतिकता का था, यही कारण था कि उसके कुशासन में पनपनेवाला असन्तोष उसकी बीमारी की सूचना पाते ही सारे साम्राज्य में विद्रोह के रूप में भड़क उठा। यदि उसका राज्य समझदारी और उदारता का होता तो उसकी बीमारी की सूचना से उसकी प्रजा में इसके प्रति सहानुभूति उमड़ती। यह तो दूर, उसके अपने पुत्र उससे विद्रोह कर उठे। शाहजहाँ के (कु)शासन का इससे बड़ा कलंक और क्या हो सकता था? भारत के राजपूत शासकों के साथ ऐसी बात नहीं थी, क्योंकि वे अच्छे पिता, उदार शासक और श्रेष्ठ मानव थे।

यद्यपि उपरिलिखत सर्वेक्षण शीघ्रता से किया गया है तदपि इससे यह सिद्ध होता है कि अपने ३० वर्ष के शासनकाल में शाहजहाँ ने ४८ अभियान छेड़े जो अनुपात में डेढ़ अभियान प्रतिवर्ष होता है। इसका अभिप्राय यह है कि शाहजहाँ का पूर्ण शासनकाल अनन्त युद्धों का शासनकाल था। और फिर भी वर्तमान इतिहास-लेखक बिना किसी प्रमाण के इस बात पर बल देते हैं कि शाहजहाँ का शासनकाल स्वर्णिम और शान्तिमय काल था।

इन युद्धों के अतिरिक्त शाहजहाँ के अधीनस्थ अनेक क्षेत्र अक्सर अकाल-पीड़ित रहे। शान्ति और समृद्धि से दूर शाहजहाँ का राज्य भारतीय इतिहास का भयावह काल था, इससे बिना किसी आधार, प्रमाण अथवा साक्ष्य के दिल्ली में तथाकथित जामा मस्जिद और लाल किला और आगरा में ताजमहल के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को दिया जाना मिथ्या सिद्ध होता है।

तैमूरलंग ने अपने संस्मरणों में पुरानी दिल्ली और जामा मस्जिद दोनों का उल्लेख किया है। तैमूरलंग सन् १३९८ के क्रिसमस के दिनों में पुरानी दिल्ली में था, इसका अभिप्राय हुआ शाहजहाँ के शासनारूढ़ होने से २३० वर्ष पूर्व। तैमूरलंग लिखता है[1]—"रविवार के दिन मुझे यह बताया गया कि एक बड़ी संख्या में धर्मद्रोही हिन्दू पुरानी दिल्ली की जामा मस्जिद में, शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर एकत्रित हुए और अपनी सुरक्षा के लिए तैयारी कर रहे थे।" यह इस बात को सीधा झूठ सिद्ध करता है

---

१. मलफजात-ए-तैमूरी या तुजकए-तैमूरी, भाग ३, पृ० ४४६-४४७ का अनुवाद।

कि शाहजहाँ ने जामा मस्जिद बनवाई और पुरानी दिल्ली की नींव भी रखी।

तैमूरलंग पुरानी दिल्ली के दुर्ग का विशेष रूप से उल्लेख करता है। वह कहता है[1]—"मेरा मस्तिष्क जिसमें अब दिल्ली-निवासियों के विध्वंस की बात नहीं थी, मैंने नगरों के परिभ्रमण के लिए घुड़सवारी की। सीरी गोलाकार नगर है, भवन उत्तुंग हैं, वे ईंट तथा पत्थरों से बने किलों से घिरे हुए और सुदृढ़ हैं। पुरानी दिल्ली में भी वैसा ही एक सुदृढ़ दुर्ग है किन्तु वह सीरी की अपेक्षा बड़ा है, सीरी के दुर्ग से दिल्ली के दुर्ग तक, जो कि पर्याप्त दूर है, पत्थर और सीमेंट से बनी एक सुदृढ़ दीवार है। जहाँपनाह कहा जानेवाला भागनगर की आबादी के मध्य में स्थित है। तीनों नगरों की चारदीवारी में ३० प्रवेश-द्वार हैं, सात दक्षिण में पूर्व की ओर तथा ६ उत्तर में पश्चिम की ओर। सीरी के सात प्रवेश-द्वार हैं, चार बाहर की ओर, ३ भीतर को जहाँपनाह की ओर। पुरानी दिल्ली की चारदीवारी में दस प्रवेश-द्वार हैं, उनमें से कुछ अन्दर की ओर और कुछ बाहर की ओर खुलते हैं...नगर के मुसलमान निवासियों की सुरक्षा के लिए मैंने एक अधिकारी की नियुक्ति की..."

इस प्रकार शाहजहाँ से २३० वर्ष पूर्व ही हमारे पास तैमूरलंग की पुरानी दिल्ली, उसका दुर्ग, नगर के द्वार तथा मुस्लिम बस्तियाँ, विशेषतया, वह क्षेत्र जो अब जामा मस्जिद है, का उल्लेख विद्यमान है। यह आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार के स्पष्ट विवरण के बावजूद भारतीय इतिहास की पुस्तकें दृढ़ता से दावा करती हैं कि उपरिवर्णित सभी भवन तथा पुरानी दिल्ली स्वयं शाहजहाँ ने बनवाए थे।

सर एच. एम. इलियट का मध्ययुगीन मुसलमानी इतिहासों के प्रति यह कथन कि "स्वार्थयुक्त और जान-बूझकर किया गया धोखा है" सत्य सिद्ध होता है।

जब पुरानी दिल्ली की नींव रखने, और पुरानी दिल्ली के (लाल) किले और जामा मस्जिद को बनवाने का झूठा श्रेय शाहजहाँ को दिया जाता है, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि आगरा के ताजमहल का श्रेय भी, जिसका कि वह भागी नहीं है, उसे ही दिया जाता रहा है।

१. मलफजात-ए-तैमूरी या तुजकए-तैमूरी, भाग ३, पृ० ४४७-४४८

बाबर ताजमहल में रहा था

इतिहास के अध्यापक कभी-कभी बड़े भोलेपन से यह पूछ बैठते हैं कि यदि ताजमहल शाहजहाँ से शताब्दियों पूर्व से विद्यमान था तो यह किस प्रकार हुआ कि इसके पूर्व-प्रसंग उपलब्ध नहीं हैं ? इस प्रश्न के तीन उत्तर हैं। प्रथमतः उस समय राजप्रासाद होने के कारण स्मारक की भाँति जन-सामान्य के लिए खुला नहीं था जैसा कि वह अब है, और वह सतर्कता से आरक्षित था। वह केवल प्रतिष्ठित व्यक्तियों के लिए आमन्त्रण का ही अधिगम्य था, या फिर विजेता के लिए। इसलिए उन दिनों के विज्ञापन एवं संचार-व्यवस्था के युग के समान कोई उसके विषय में प्रसंगों की प्राप्ति की अपेक्षा नहीं कर सकता।

दूसरा उत्तर यह है कि प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में विस्मय-विमुग्ध कर देनेवाले आकर्षक भवन, प्रासाद और मन्दिर इतनी अधिक संख्या में थे कि मात्र वर्णन के आधार पर उन्हें एक-दूसरे से वरीयता नहीं दी जा सकती थी। वह सब जो हम तक पहुँचा अथवा किसी यात्री द्वारा उल्लेख किया गया वह यही है कि "वे अवर्णनीय रूप से सुन्दर हैं" या "आश्चर्यजनक, आर्कषक, भव्य हैं।" उदाहरणार्थ, ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत भारत में लगभग ५६८ देशी शासक थे। उनमें से बहुतों के पास बहुत से सुन्दर और सुसज्जित प्रासाद थे। क्या उनमें से किसी एक को दूसरे से वरीयता प्राप्त है ? क्या वे, जिन्होंने उनको देखा है, केवल यही नहीं कह पाए कि वे अद्वितीय थे ? उसी प्रकार मध्ययुगीन इतिहास भारतीय भवनों एवं प्रासादों की प्रशंसा से भरे पड़े हैं, परन्तु समस्या यह है कि किस प्रकार इतना समय बीत जाने पर, उनमें विभिन्नता प्रस्थापित की जाए। यह भी स्मरण रखने की बात है कि प्रत्येक ऐतिहासिक उथल-पुथल के साथ-साथ उनकी अधिकृति और स्थानों के नाम तथा सड़कों के नाम बदलते रहे। अपने मध्ययुगीन नाम और स्थान के अनुसार जिस

भवन को हम आज देखते हैं, उनको पहचानने में भी कठिनाई होती है। मुस्लिम इतिहासों में एक स्पष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया गया है कि मुहम्मद गज़नी कहता है, 'मथुरा का भव्य कृष्ण मन्दिर तो २०० वर्षों में भी पूर्ण नहीं हो पाया होगा और विदिशा (वर्तमान भिलसा) का मन्दिर ३०० वर्ष में पूरा हो पाया होगा।' वे जो कहते हैं कि हमें शाहजहाँ से पूर्व ताजमहल के अस्तित्व का उल्लेख नहीं मिलता उनसे हम प्रतिप्रश्न करते हैं कि मुस्लिम आक्रामकों से पूर्व मथुरा और विदिशा के उन भव्य मन्दिरों का उल्लेख क्यों नहीं मिलता? इसका उत्तर सरल है : या तो पहले के विवरण उपलब्ध नहीं हैं या फिर किसी विवरण-विशेष को इसलिए सुरक्षित रखने की चिन्ता नहीं की गई, क्योंकि भारत में ऐसे मन्दिरों की भरमार थी। यहाँ तक कि केवल एक ही नगर में, शक्ति एवं समृद्धिशाली भारतीय शासक के पास कम-से-कम एक दर्जन प्रासाद होते थे जो सुन्दरता और लागत में एक-दूसरे से प्रतिस्पर्द्धी होते थे। तब केवल विभिन्न विवरणों के आधार पर एक का दूसरे से भिन्नत्व किस प्रकार प्रतिष्ठित किया जा सकता था? कोई उल्लेख, यदि होता तो केवल इतना कि अमुक भवन अमुक राजा का है।

इतने प्रभावी कारणों के विद्यमान होते हुए भी यह प्रचारित किया जाता रहा है कि पूर्ववर्ती वृत्तान्तों में कहीं भी वर्तमानकाल में ताजमहल नाम से ज्ञात प्रासाद का कोई भी उल्लेख उपलब्ध नहीं है, किन्तु सौभाग्य से बाबर जो भारत में मुगल-साम्राज्य का संस्थापक और शाहजहाँ का प्रपितामह था, ताजमहल के सम्बन्ध में स्पष्ट एवं त्रुटिरहित विवरण, यदि हममें उसे समझने की सूझ-बूझ हो तो, छोड़ गया है। इस प्रकार हमारा तीसरा उत्तर यह है कि पूर्ववर्ती इतिहास में ताजमहल एवं अन्य भवनों के सम्बन्ध में, यद्यपि स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होते हैं, तदपि कपटपूर्ण पारम्परिक प्रशिक्षण द्वारा बुद्धि के कुण्ठित हो जाने के कारण हम उनके महत्त्व को ग्रहण करने में असमर्थ रहे। ताजमहल के सम्बन्ध में यही बात है।

बादशाह बाबर अपने संस्मरण (भाग २, पृष्ठ १९२) में हमें बताता है,[१] "गुरुवार (१० मई, १५२६) को मध्याह्नोत्तर मैंने आगरा में प्रवेश किया और सुलतान

---

१. मैमॉयर्स ऑफ जहिर-एद-दीन मोहम्मद बाबर, हिन्दुस्तान का बादशाह, भाग २, पृष्ठ १९२ और २५१; चाहताई तुर्की में स्वयं उसके द्वारा लिखित।

जोन लेडन तथा विलियम अर्सकाइन द्वारा अनुवादित तथा सर ल्यूकास किंग द्वारा संशोधित दो भागों में, हम्फ्री मिल्फोर्ड, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से १९२१ में प्रकाशित।

इब्राहीम के प्रासाद में निवास किया।'' उसके बाद पृष्ठ २५१ पर बाबर आगे लिखता है—''ईद के कुछ ही दिनों बाद हमने सुलतान इब्राहीम के प्रासाद में (११ जुलाई, १५२६) बड़े हॉल में, जो कि पत्थर के शृंखलायुक्त स्तम्भों से सज्जित है, गुम्बद के नीचे विराट् भोज का आयोजन किया।''

यह स्मरणीय है कि बाबर ने दिल्ली और आगरा पर, इब्राहीम लोदी को पानीपत में पराजित करने पर, अधिकार किया था। इस प्रकार उसने उन हिन्दू प्रासादों पर अधिकार कर लिया जिन पर एक अन्य विदेशी विजेता इब्राहीम लोदी अधिकार किए हुए था। इसलिए बाबर आगरा के उस प्रासाद को जिस पर उसने अधिकार किया था, इब्राहीम का प्रासाद कहता है।

उसका विवरण देते हुए बाबर कहता है कि राजप्रासाद पत्थरों के शृंखलाबद्ध स्तम्भों से सज्जित है। यह ताजमहल के स्तम्भ-पीठ के कोनों पर स्थित चार सुन्दर श्वेत स्तम्भों की ओर स्पष्ट संकेत है। फिर उसने एक भव्य महाकक्ष का विवरण दिया है जो स्पष्टतया वह कक्ष है जिसमें मुमताज़ और शाहजहाँ की बनावटी कब्रें हैं। बाबर आगे कहता है कि इसके मध्य में एक गुम्बद है। हमें विदित है कि केन्द्रीय बनावटी मकबरोंवाले कक्ष में गुम्बद है। यह मध्य में स्थित माना जाता है, क्योंकि यह चारों ओर से दस कमरों से घिरा हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि बाबर १० मई, १५२६ से अपनी मृत्युपर्यन्त २६ दिसम्बर, १५३० तक उस प्रासाद में रहा था, जो वर्तमान में ताजमहल के नाम से जाना जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि मुमताज़ (ताज की तथाकथित मलिका) की लगभग १६३० में मृत्यु से कम-से-कम १०० वर्ष पूर्व ताजमहल के अस्तित्व का स्पष्ट प्रमाण हमें उपलब्ध है। इस प्रकार के स्पष्ट उल्लेख के बावजूद भी ताजमहल से सम्बन्धित हमारे इतिहास और अन्य विवरण समस्त विश्व में बड़ी विनम्रता से दावा करते फिरते हैं कि दुखी शाहजहाँ ने एक खुले मैदान में अपनी पत्नी की मृत्यु पर उसके लिए ताजमहल नाम का एक मकबरा बनवाया।

बाबर द्वारा ताजमहल का उल्लेख करना ताजमहल के प्राचीन प्रासाद होने का चौथा स्पष्ट प्रमाण है। पहले तीन स्पष्ट प्रमाण थे—शाहजहाँ के दरबारी इतिहास-लेखक का यह निर्देश कि ताजमहल मानसिंह और जयसिंह का राजप्रासाद था। इसी के समान, स्वीकारोक्ति है मियाँ नूरुल हसन सिद्दीकी की पुस्तक 'दि सिटी ऑफ ताज' के पृष्ठ ३१ पर और 'ट्रैवल्स इन इंडिया' नामक पुस्तक के पृष्ठ १११ पर टैवर्नियर का वक्तव्य

कि मकबरे से सम्बन्धित पूर्ण कार्य की अपेक्षा मचान बँधवाने का खर्च अधिक था। इस वक्तव्य की विशेषता के विषय में हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं।

तब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जो ताजमहल शाहजहाँ के प्रपितामह बाबर के अधिकार में था, किस प्रकार इस परिवार के अधिकार से निकलकर शाहजहाँ के समय में जयसिंह के अधिकार में आया? इसका स्पष्टीकरण यह है कि बाबर के पुत्र हुमायूँ को अपने पिता बाबर की विजयों के लाभ से वंचित होकर भारत छोड़कर भगोड़े की तरह भागना पड़ा था। वह पुनः भारत तो लौटा किन्तु अपनी दिल्ली विजय के ६ मास के भीतर ही परलोक सिधार गया। इसलिए बाबर की मृत्यु के तुरन्त बाद अनेक क्षेत्र, नगर और भवन हिन्दुओं के अधिकार में आ गए। इनमें फतेहपुर सीकरी, आगरा और ताजमहल थे। यह स्मरणीय है कि बाबर के पौत्र अकबर को पुनः स्वयं नए सिरे से सबकुछ करना पड़ा था। दिल्ली, आगरा और फतेहपुर सीकरी का अधिकार प्राप्त करने से पूर्व अकबर को पानीपत में हिन्दू सेनापति हेमू के विरुद्ध निर्णायक युद्ध द्वारा विजय प्राप्त करनी पड़ी थी। उस समय आगरा का ताजमहल जयपुर के शासक-परिवार के अधिकार में चला गया जिसे कालान्तर में अकबर के हरम के लिए अपनी कन्या देने को बाध्य होना पड़ा था। जयपुर राज्य-परिवार का वंशज मानसिंह जो अकबर का समकालीन और उसका गुलाम था, उस समय ताजमहल का स्वामी था, और बादशाहनामा के अनुसार मानसिंह के पौत्र जयसिंह से मुमताज़ को दफनाने के लिए ताजमहल को हथियाया गया था।

विंसेंट स्मिथ[1] हमें बताता है—"बाबर के संघर्षमय जीवन का उसके आगरा स्थित उद्यान-प्रासाद में शांतिमय अन्त हुआ।" पुनः यह एक ज्वलन्त प्रमाण है कि बाबर का अन्त ताजमहल में हुआ। आगरा में केवल ताजमहल ही एक ऐसा प्रासाद है जिसमें सुरम्य उद्यान था। बादशाहनामा इसका उल्लेख 'सब्ज जमीनी' के रूप में करता है जिसका अभिप्राय होता है हरा-भरा, विस्तीर्ण, वैभवशाली, रसीला, प्राचीरों से घिरा उद्यान।

बाबर भारत में नवागन्तुक होने के कारण अपनी पश्चिम एशिया स्थित मातृभूमि के प्रति अनुरक्त था, इसलिए उसने इच्छा व्यक्त की थी कि उसको काबुल

---

१. विंसेंट स्मिथ द्वारा लिखित 'अकबर दि ग्रेट मुगल', पृष्ठ ९०

के समीप दफनाया जाए। तदनुसार उसका शव वहाँ ले जाया गया। यदि उसकी ऐसी इच्छा न होती तो सम्भव है मुसलमानों की भारत में अपहरणकारी प्रवृत्ति के अनुसार ताजमहल में ही, जहाँ उसकी मृत्यु हुई थी, उसे दफनाया जाता। यदि वह वहाँ दफनाया गया होता तो हमारा इतिहास यह बतलाता कि हुमायूँ ने अपने पिता के प्रति महान् धार्मिक आदर भावना के वशीभूत उसके लिए ताजमहल जैसे अद्‌भुत मकबरे का निर्माण कराया।

और यदि मुमताज़ की अपेक्षा शाहजहाँ की दूसरी पत्नी सरहन्दी बेगम, जो कि वर्तमान में ताजमहल के बाहरी भाग में दफन है, वह १६३० में मरी होती तो तब कदाचित् यह कहा जाता कि हथियाये गए हिन्दू प्रासाद के गुम्बद वाले केन्द्रीय कक्ष में उसे दफनाया गया था। उस स्थिति में हमारा इतिहास मुमताज की अपेक्षा सरहन्दी बेगम के प्रति शाहजहाँ के प्रेम का कपोल-कल्पित वर्णन करता।

इस प्रकार ताजमहल एक बार सन् १५३० में बाबर का मकबरा बनने से बचा और फिर एक बार १०० वर्ष बाद सरहन्दी बेगम के मकबरे के रूप में भी भावी पीढ़ी में प्रख्यात होने से बचा। यदि ऐसा हो गया होता तो हमारा इतिहास और पर्यटक-साहित्य हुमायूँ के अपने पिता बाबर के प्रति अथवा शाहजहाँ का मुमताज़ की अपेक्षा सरहन्दी बेगम के प्रति अगाध प्रेम का कोई-न-कोई उपयुक्त स्पष्टीकरण रच ही लेता। ऐसी वे कपोल-कल्पनाएँ हैं जो वर्तमान मध्यकालीन इतिहास की पुस्तकें अपने काल्पनिक अनुमानों को प्रमाणित करने के लिए दुलकी चलाती हैं।

प्रथम मुगल बादशाह बाबर ताजमहल में रहा था और वहीं उसकी मृत्यु हुई। इसकी पुष्टि बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम द्वारा लिखित हुमायूँनामा, एनैट एस. बेवरिज द्वारा अंग्रेजी में अनूदित हुमायूँ के इतिहास, से भी होती है।

गुलबदन बेगम के इतिहास के अनूदित संस्करण पृष्ठ १०९ और ११० पर अंकित है कि (बाबर की) "मृत्यु सोमवार २६ दिसम्बर, १५३० को हुई। उन्होंने हमारी बुआओं और माताओं को इस बहाने से वहाँ से बाहर भेज दिया कि चिकित्सक देखने के लिए आ रहे हैं। सब उठ गए। वे सभी बेगमों और मेरी माताओं को बड़े भवन में ले गए।" (पृष्ठ १०९ पर अंकित टिप्पणी में 'ग्रेट हाउस' को प्रासाद के रूप में लिखा है।)

"मृत्यु को गुप्त रखा गया। शुक्रवार २९ दिसम्बर, १५३० को हुमायूँ सिंहासन पर बैठा।" पृष्ठ ११० पर अंकित टिप्पणी कहती है—"बाबर का शव पहले

वर्तमान ताजमहल से नदी के दूसरी ओर राम अथवा आराम बाग में रखा गया था। बाद में उसको काबुल ले जाया गया।''

उपरिलिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि बाबर की मृत्यु ताजमहल में हुई थी। जब यह विदित हो गया कि उसकी मृत्यु हो गई तो हरम की औरतें जो अन्यत्र रहती थीं, प्रासाद अर्थात् ताजमहल में लाई गईं।

बाद में हुमायूँ को ताजमहल में मुकुट पहनाना था इसलिए बाबर का शव ताजमहल से उठाकर यमुना नदी के उस पार राम बाग अथवा आराम बाग नामक प्रासाद में ले जाया गया। इतिहासकारों और पुरातत्त्ववेत्ताओं की यह धारणा कि आगरा के राम बाग प्रासाद का बाबर की मृत्यु से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य है, इसका इस उद्धरण से स्पष्टीकरण होता है।

हिन्दल (बाबर का पुत्र और बादशाह हुमायूँ का भाई) के विवाह के भोज के सम्बन्ध में गुलबदन बेगम लिखती है—''रत्नजड़ित सिंहासन जिसे मेरी मलिका ने भोज के लिए दिया उसे दिव्य भवन के सामनेवाले चौक में रखा गया और एक स्वर्ण-जड़ित दीवान उसके सामने रखा गया (जिस पर) बादशाह सलामत और उनकी प्रियतमा साथ-साथ बैठे···''

''भवन (रहस्यमय) के अष्टकोणीय कक्ष में एक रत्न-जड़ित सिंहासन स्थापित था और इसके ऊपर तथा नीचे स्वर्ण-जड़ित झालरें और मोती की लड़ियाँ लटक रही थीं।''

रहस्यमय भवन का अष्टकोणीय कक्ष स्पष्टतया ताजमहल का वह मध्यवर्ती कक्ष है जिसमें १०० वर्ष बाद शाहजहाँ ने मुमताज़ की कब्र बनवाई और १६६६ में औरंगजेब ने अपने पिता बादशाह शाहजहाँ को दफनाया। ताजमहल रहस्यमय भवन इसलिए कहलाता है क्योंकि इसका मूल शिव-मन्दिर जैसा प्रतीत होता है। वही भवन विशाल भवन भी कहलाता है, क्योंकि यह भव्य राजकीय आवास था।

मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहास का असत्य

सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर एच. एम. इलियट ने अपने आठ भागों वाले ग्रन्थ, जिसमें अनेक मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन है, की भूमिका में लिखा है कि वे "निहित स्वार्थयुक्त धोखा" हैं। उन इतिहासों के अध्ययन से निकले अपने निष्कर्षों को वे पूर्णतया संगत सिद्ध करते हैं। यहाँ हम उन निष्कर्षों को उद्धृत करते हैं जिनका सम्बन्ध चौथे मुगल बादशाह जहाँगीर के शासनकाल की उत्तरकालीन घटनाओं से है। इन इतिहासों की अविश्वसनीयता के सम्बन्ध में न केवल सामान्य पाठक अपितु इतिहास के विद्यार्थियों तक को अन्धकार में रखा गया है।

यह भी स्मरणीय है कि जहाँगीर उस बादशाह शाहजहाँ, जिसे ताजमहल और प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन का निर्माता कहा जाता है और जिसे हम अपनी पुस्तक मे चुनौती दे रहे हैं, का पिता था।

जहाँगीरनामे के सम्बन्ध में सर एच. एम. इलियट की मान्यता उसी प्रबलता के साथ सभी मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों पर लागू होती है। वे सभी स्पष्ट अतिशयोक्तियों, झूठे दावों, सत्य को दबाने, धोखे से भ्रामक प्रतिनिधित्व देने के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। उदाहरणार्थ, जहाँ कहीं भी वे कहते हैं कि मुसलमान शासकों ने मन्दिर ध्वस्त किए और मस्जिदों का निर्माण किया, इन सबसे उनका अभिप्राय है कि मूर्तियों को उखाड़कर फेंक दिया और उन मन्दिरों को मस्जिदों के रूप में प्रयोग किया।

जहाँ कहीं भी मुस्लिम इतिहास यह दावा करते हैं कि मुगल शासकों अथवा सेनापतियों ने नगर बसाए, दुर्ग बनाए और सड़कें तथा पुल बनाए या कुएँ और तालाब खुदवाए, उनके वे सारे दावे स्पष्टतया झूठे हैं। वे भारत की सम्पदा और

निर्मित भवनों का आनन्द लूटने आए थे किन्तु श्रम करके निर्माण करने के लिए नहीं। किसी भी निर्माण-कार्य के लिए उनके पास न तो समय, धन, धैर्य, सुरक्षा, बुद्धिचातुर्य, श्रम और साधन थे और न ही उतने आदमी। यहाँ तक कि उनके प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य में कोई एक भी ऐसी पुस्तक नहीं है जो उनकी अपनी वास्तुशिल्प के विषय की हो।

जहाँगीर के शासन के सम्बन्धित उपरिउद्धृत सभी मान्यताओं का विस्तृत विवेचन सर एच. एम. इलियट ने अपनी पुस्तक में किया है। वह मानता है[१]—

''कई पुस्तकें हैं जो बादशाह जहाँगीर के आत्मचरितात्मक संस्मरण कहे जाते हैं और वहाँ···उनके शीर्षकों में भ्रम है···दो अलग-अलग संस्करण हैं जो एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। मेजर प्राइस ने एक का अनुवाद किया है तथा एण्डर्सन ने दूसरे पर लिखा है। यह भी देखने में आता है कि प्रत्येक संस्करण के अनेक प्रकार हैं।

''तारीख-ए-सलीमशाह[२] की अतिशयोक्तियों को दिखाने के लिए कतिपय उदाहरण देने आवश्यक हैं—

''मेजर प्राइस के अनुवाद के पृष्ठ २ पर यह लिखित है—'सूर्य के मेष राशि में प्रविष्ट होने पर वार्षिक उत्सव पर मैंने अपने पिता द्वारा निर्मित सिंहासन का प्रयोग किया और अतुलनीय धनराशि व्यय करके मैंने उसे सज्जित किया। सिंहासन की सज्जा में केवल रत्नों पर ही दस करोड़ अशर्फियाँ (करोड़ का अभिप्राय एक सौ लाख और लाख का अभिप्राय एक सौ हजार) तथा ३०० मन सोना लगाया गया। हिन्दुस्तानी तोल के अनुसार हिन्दू का मन इराक के १० मन के बराबर होता है।'

''अनुवादक ने केवल रत्नों के मूल्यों को ही १५० मिलियन स्टर्लिंग में बदला है, जो कि अविश्वसनीय है जैसा कि उसने लिखा है—किन्तु तुजक-ए-जहाँगीरी में युक्तियुक्त आँकड़े प्रस्तुत करते हुए लिखा है, 'केवल ६० लाख अशर्फियाँ और हिन्दुस्तानी तोल के अनुसार ५० मन सोना।' अधिकृत संस्मरणों में सिंहासन का कोई उल्लेख नहीं है।

''उससे थोड़ा आगे पढ़ने को मिलता है—'इस प्रकार अपनी अपेक्षाओं और आशाओं के अनुरूप जब मैं सिंहासन पर बैठा, मैंने उस राजकीय मुकुट को जिसे

१. इलियट तथा डौसन का इतिहास, भाग ६, पृष्ठ २५१
२. वही, पृष्ठ २५६-२६०

मेरे पिता ने फारस के महान् बादशाहों की परम्परानुसार बनवाया था, लाने का हुक्म दिया तथा सभी अमीरों के सम्मुख शुभ लग्न देखकर मेरे राज्य की समृद्धि और स्थिरता के लिए पूरी एक घड़ी तक उसे अपने माथे पर रखा। इस मुकुट के बारह कोणाग्रों में से प्रत्येक पर एक हीरा जिसका मूल्य एक लाख अशर्फी था, जड़ा हुआ था, जो सभी मेरे पिता ने अपने साम्राज्य के आर्थिक साधनों से खरीदे थे न कि उस वस्तु से जो उन्हें अपने पूर्ववर्ती सम्राटों से उत्तराधिकार में मिली हो। मुकुट के शीर्षस्थ केन्द्रीय कोण पर एक ऐसा मोती जड़ा था जिसका मूल्य एक लाख अशर्फी था और मुकुट के विभिन्न भागों में सब मिलाकर २०० मणियाँ जिसका प्रत्येक का भार एक मिथ्कल था, और-प्रत्येक का मूल्य ६,००० रुपए था''। सर्वोच्च शक्ति के प्रतीक इस मुकुट का मूल्य कुल मिलाकर २० लाख स्टर्लिंग आँका जा सकता है।' इस बहुमुल्य मुकुट के सम्बन्ध में न तो किसी सामान्य ग्रन्थ में और न ही प्रामाणिक संस्मरणों में कोई उल्लेख पाया जाता है।

''पृष्ठ ५ पर जहांगीर कहता है कि उसने राजस्व के कुछ साधन जमा किए। 'जिनमें उसके पिता को सोलह सौ हिन्दुस्तानी मन के बराबर सोना प्राप्त हुआ जो कि इराकी १६ हजार मन के बराबर है।' तुजक में ६० हिन्दुस्तानी मन का उल्लेख है और प्रामाणिक संस्मरण में किसी राशि का उल्लेख नहीं है।

''पृष्ठ १४ पर वह कहता है कि 'आगरा दुर्ग की कारीगरी में ही केवल ५ मिथ्कल की १८० लाख अशर्फियों से कम खर्च नहीं हुआ। 'इस राशि को अनुवादक प्रशंसा के साथ २,६५,५०,००० रुपये में परिवर्तित करता है। तुजक में केवल ३६ लाख रुपए और अधिकृत संस्मरण में ३५ लाख रुपयों का उल्लेख है''।'

''पृष्ठ १५ पर वह कहता है—'वह मन्दिर जिसे राजा मानसिंह ने बनवाया था और जिसे बादशाह ने मस्जिद बनाने के उद्देश्य से ध्वस्त कर दिया उसके निर्माण की लागत ५ मिथ्कल की ३६ लाख अशर्फियाँ थीं, जिसे अनुवादक ५,४०,००,००० रुपए बतलाता है।' तुजक केवल आठ लाख रुपए का उल्लेख करता है।

''पृष्ठ ३२ पर वह शाहजादा परवेज को ५ लाख रुपए मूल्य की मोतियों की माला भेजता है, तुजक में केवल एक लाख का उल्लेख है।

''पृष्ठ ३४ पर वह कहता है—'अपनी मृत्यु पर दौलत खाँ ने जो सम्पत्ति छोड़ी वह अनुवादक के अनुसार बारह करोड़ थी।' तुजक सोने और अन्य मुद्राओं के अतिरिक्त ३ लाख हीरे के तुमान होने का उल्लेख करता है।

"पृष्ठ ३७ पर वह लिखता है—'उसके भाई दानियाल की सम्पत्ति में पाँच करोड़ अशर्फियों के हीरे, छः करोड़ तीन लाख स्टर्लिंग के बराबर दो करोड़ का खजाना था।' तुजक इस राशि के सम्बन्ध में मौन है।

"पृष्ठ ५१ पर हेमू के मुकुट पर कहते हैं '६० लाख अशर्फियाँ ५४,००,००० स्टर्लिंग के हीरे, नीलम, माणिक, मरकत तथा मोती जड़े थे।' तुजक में केवल ८० हजार तुमान का उल्लेख है।

"पृष्ठ ६७ पर, अपने पुत्र खुसरो की खोज के विषय में कहते हुए वह बतलाता है—'उसकी अपनी अश्वशाला से ४० हजार घोड़े और एक लाख ऊँट लाकर बाँटे गए।' तुजक में इस विषय का उल्लेख नहीं है।

"पृष्ठ ७९ पर वह लिखता है उसने 'बादकशानियों में बाँटने के लिए एक लाख अशर्फी तथा अजमेर के दरवेशों में बाँटने के लिए ५० हजार रुपए जमीन बेग को दिए।' तुजक में तीस हजार रुपए का तो उल्लेख है किन्तु बादकशानियों को दिए गए दान का कोई उल्लेख नहीं है।

"पृष्ठ ८८ पर 'खुसरो की हीरों की पेटी में एक करोड़ अस्सी लाख स्टर्लिंग थे।' निश्चय ही बड़ी और भारी पेटी होगी जिसमें १८ हजार पौंड रखे जा सकते होंगे और तुजक में इसकी वस्तुओं के विषय में कोई उल्लेख नहीं है।

"इस प्रकार अतिशयोक्तिपूर्ण उल्लेख प्राप्त होने के बाद अपरिमित वस्तुओं की बढ़ाई गई राशि पर कौन विश्वास करेगा''उसमें अन्य प्रकार का बढ़ावा-घटावा भी है। उदाहरणार्थ, खुसरो के विद्रोह और उसके पकड़े जाने से सम्बन्धित तथ्यों पर (विभिन्न प्रतियों में) अनेक आवश्यक विवरणों में मिलता है और इन घटनाओं के निष्कर्ष पर जहाँगीर के आगरा लौटने की अपेक्षा वह काबुल जाता है जैसा कि अन्य सभी इतिहासों में ऐसा करने का उल्लेख है।

"जिन तथ्यों का वर्णन नहीं किया गया है, उनमें एक अत्यधिक स्पष्ट एवं महत्त्वपूर्ण है—सुरापान के प्रति उसके रुझान का कोई संकेत तक नहीं है। वह अपने भाई दानियाल के व्यसन के सम्बन्ध में भयंकर बातें करता है, जबकि वास्तविक संस्मरणों में उसके सुरापान के विषय में अनेक उल्लेख हैं जैसे कि जहाँगीर के प्रपितामह बाबर के संस्मरणों में हैं। अपने अत्यधिक सुरापान को उसने स्वयं भी स्वल्प रूप में स्वीकारा है।"

उपरिलिखित उद्धरण सर एच. एम. इलियट द्वारा यह सिद्ध करने के लिए

समय-समय पर निकाले गए उन निष्कर्षों के उदाहरण मात्र हैं जो उसके अनुसार मुसलमानी विवरण षड्यन्त्रपूर्ण रचनाएँ सिद्ध होती हैं। हम स्वयं कुछ ऐसे तथ्य प्रस्तुत करना चाहेंगे जो इलियट तथा उनके समान अन्य विलक्षण विद्वानों के भी ध्यान में नहीं आ पाए।

मुस्लिम इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी तथा मध्ययुगीन स्मारकों के दर्शकों को चाहिए कि वे उसके सम्मुख प्रस्तुत विवरणों के मूलाधार का सम्यक् विवेचन करें और सावधानी से यह विचार करें कि अन्य प्रामाणिक विवरणों द्वारा क्या उनका समर्थन होता है ? और क्या वे तर्क की कसौटी पर खरे उतरते हैं ? उदाहरणार्थ, ऊपर जो सार-संक्षेप उद्धृत किए हैं उनसे यह स्पष्ट होता है कि आगरा का दुर्ग बहुत प्राचीन हिन्दू दुर्ग है। मुस्लिम इतिहास-ग्रन्थों में जिस धनराशि का उल्लेख किया गया है वह केवल इसकी मरम्मत पर व्यय की गई है। उस राशि को बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया और दुर्ग की मरम्मत को वास्तविक निर्माण-कार्य बताकर भ्रम फैलाया गया। और तो क्या, जो राशि मरम्मत पर व्यय की गई वह शाही दबाव डालकर जनता से विशिष्ट कर के रूप में ली गई तथा बिना पारिश्रमिक दिए श्रमिकों से कार्य कराया गया।

आज जहाँगीर के विषय में यह कहा गया है कि उसने मानसिंह के मन्दिर को ध्वस्त कर उसके खँडहरों पर मस्जिद बनाई वहाँ पाठकों को इससे यह भी समझ लेना चाहिए कि जहाँगीर ने मन्दिर के सभी कर्मचारियों को बाहर निकाल दिया या फिर उन्हें मुसलमान बनने पर विवश कर दिया और मुसलमानों के एक समूह को मूर्तियाँ उखाड़कर फेंकने और उस स्थान पर नमाज पढ़ने के लिए नियुक्त किया। जो तुच्छ राशि मूर्तियों को उखड़वाने, विनष्ट धरातल की मरम्मत कराने और कुछ एक मीनारों को बनवाने पर व्यय की गई उसे बढ़ा-चढ़ाकर बताया गया और इस समस्त कार्य को भ्रमपूर्वक नए भवन अथवा मस्जिद के निर्माण का नाम दिया गया। मुस्लिम शासन के एक हजार वर्ष में समस्त भारत में यही सब होता रहा।

हाँ, यह भी ध्यान रखने की बात है कि मानसिंह जहाँगीर का साला और उसका ऐसा हिन्दू दरबारी था जो भारतवर्ष में मुस्लिम शासन को स्थिर करने के लिए अपने ही सम्बन्धियों के विरुद्ध शाही सेना का नेतृत्व करने के कारण घृणा का पात्र बना। तदपि जहाँगीर ने धर्मान्धतापूर्ण धृष्टता का परिचय देकर अपने साले और प्रबल समर्थक द्वारा निर्मित मन्दिर को ध्वस्त किया। मुगल दरबार में सर्वोच्च पद पर

प्रतिष्ठित और राजकीय घराने से जिसका रक्त का सम्बन्ध स्थापित हो गया हो, उसकी यदि यह दशा थी तो उनकी दुर्दशा का सहज ही अनुमान किया जा सकता है जिनके पास न तो शक्ति थी और न कोई स्थिति ही और न राजकीय रिश्तेदारी।

जो मुकुट, सिंहासन, नगर, दुर्ग, प्रासाद, मकबरे और भवन, मुस्लिम बादशाहों तथा नवाबों द्वारा बनाए जाने के दावे किए जाते हैं वे सब चाटुकारिता की कपोल-कल्पनाएँ हैं जिनकी रचना उन चापलूस मुंशियों ने की है जिनका उद्देश्य राजकीय कृपा-पात्र बनकर मात्र धनोपार्जन करना था।

वे सभी वस्तुएँ थीं जिन्हें मुसलमानों के पूर्ववर्ती हिन्दू शासकों से लूटा, छीना, अधिग्रहण और हथियाया गया था। मुसलमान दरबारी लेखकों ने उन हथियाए गए अथवा लूटे गए नगरों अथवा भवनों का मूल्यांकन किया, कदाचित् उन्हें थोड़ा-बहुत बढ़ाया-चढ़ाया, और उनका लेखा-जोखा रखा तथा उसी समय यह भी अंकित कर दिया कि वे मुकुट, सिंहासन, भवन, नगर, पुल, नहरें आदि सभी उनके संरक्षकों द्वारा निर्माण किए गए हैं। यह ऐसा अतिरंजित वाक्छल है जिसने वह काल्पनिक विवरण प्रस्तुत किया है कि तथाकथित कुतुबमीनार को सम्भवतया या तो कुतुबुद्दीन ने या अल्तमश ने अकेला अथवा दोनों ने मिलकर बनवाया और अलाउद्दीन खिलजी तथा फिरोजशाह तुगलक ने थोड़ा बहुत बनवाया और यह कि ताजमहल की लागत चालीस लाख से लेकर नौ करोड़ तक कुछ भी हो सकती है। ऐसे विषयों में मुस्लिम दावों का मूलाधार ही भ्रामक है। यह तो पाठकों को चाहिए कि ताजमहल की कथा का पुनर्सृजन करते समय वे इस विषय में अपनी धारणा स्पष्ट करें।

यह भी ध्यान देना होगा कि जहाँगीर शाहजहाँ का पिता था। यदि जहाँगीर, जैसा कि हमने ऊपर संकेत किया है, कुख्यात वाक्छली के रूप में कलंकित था तो उसका पुत्र शाहजहाँ तो उससे भी अधिक कुख्यात था। शाहजहाँ ने जहाँगीर की मृत्यु के तीन वर्ष बाद जहाँगीर के संस्मरणों में लिखित विद्रोही शाहजहाँ, जबकि वह शाहजादा के रूप में था, के चरित्रहीनता-सम्बन्धी उल्लेखों को निकालकर उन्हें प्रशंसात्मक संस्मरण बनाने के लिए कामगर खाँ की सेवाएँ ग्रहण कीं। इसको सत्य सिद्ध करते हुए सर एच. एम. इलियट लिखते हैं[१]—"वह (कामगर खाँ) अन्ततः बादशाह शाहजहाँ के भड़काने पर उसके शासन के तीसरे वर्ष में इस (जहाँगीर के

---

१. इलियट तथा डौसन का इतिहास, भाग ६, पृष्ठ ३४९

शासन का कृत्रिम इतिहास लिखने के) कार्य में प्रवृत्त हुआ।''

जहाँगीर का इतिहास अपने पिता अकबर के प्रति अनेक चापलूसीपूर्ण प्रसंगों से भरा है। जहाँगीर ने स्पष्ट रूप से स्वयं को पितृ-स्नेह से सना आज्ञाकारी पुत्र माना है। उदाहरणार्थ, वह दावा करता है कि उसने अपने पिता के लिए एक मकबरा बनवाया (जो कि उसने बनवाया ही नहीं)। वह कहता है कि कालान्तर में वह जब कभी अपने पिता के मकबरे के सामने से निकलता था तो नंगे पाँव ही निकलता था। जहाँगीर के अपने शासनकाल का इतिहास सर्वत्र ऐसे ही भावुकतापूर्ण असत्य से आच्छादित है। यह सब छद्माचरण इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं कि जहाँगीर के कृतघ्न, कपटी पुत्र और नृशंस एवं क्रूर बादशाह होने के आरोपों को छिपाने की छलना है। अकबर ने स्वयं वर्णन किया है कि किस प्रकार जहाँगीर उसको विष देना चाहता था। जब जहाँगीर अपने पिता को विष देने में सफल नहीं हो पाया तो बाद में उसने खुला विद्रोह कर दिया। यदि वह अकबर को बन्दी बनाने में सफल हो जाता तो वह अपने पिता को प्राणान्तक कठोर यातना देता। तदपि सम्पूर्ण जहाँगीरनामा लेखक को निष्ठावान पुत्र की प्रतिमा बताता है।

शाहजहाँ ने इसे पूर्णतया उत्तराधिकार में ग्रहण कर कालान्तर में उसमें और बढ़ोतरी की। उसके पास भी चापलूस लेखकों का एक ऐसा समुदाय था जो ऐसे असंख्य असत्यों का, जिससे शाहजहाँ को संसार का अन्यतम स्मरणीय, शासक समझा जा सके, विवरण तैयार कर उसे प्रसन्न करने को लालायित रहता था। यही कारण है कि हमारा इतिहास शाहजहाँ द्वारा आगरा में ताजमहल, दिल्ली में लाल किला और जामा मस्जिद और पुरानी दिल्ली के निर्माण के तोता-मैना जैसे किस्सों से भरा पड़ा है। इतिहास के छात्रों को, उन विद्वानों को जो इतिहास पढ़ाते और लिखते हैं और स्मारकों के दर्शकों को चाहिए कि वे मध्ययुगीन मुसलमानी विवरणों के एक शब्द का भी तब तक विश्वास न करें जब तक कि प्रत्येक विवरण तर्क की कसौटी पर खरा न उतरे और स्वतंत्र प्रमाणों से उसकी पुष्टि न हो जाए। इसलिए हमें ताजमहल के पूर्ववृत्त की सत्यता तक पहुँचने के लिए सावधानी से, सोद्देश्यरचित असंख्य षड्यन्त्रों और निहित-स्वार्थमय रहस्यों का सागर पार करना पड़ा।

●

ताज की रानी

शाहजहाँ की पत्नी ताजमहल के केन्द्रीय कक्ष में दफनाई गई बताई जाती है, उसके नाम के विषय में भी अनेक भ्रान्तियाँ हैं।

ऐसा भी सम्भव है कि मरणोपरान्त जब उसको ताजमहल नामक हिन्दू (राज)प्रासाद में दफनाया गया तो उसके आधार पर उसे 'मुमताज़ महल' नाम से विभूषित किया गया हो। जैसाकि सामान्यतया माना जाता है, यह भवन नहीं जिसका कि नाम महिला के नाम पर रखा गया है। यह इसके विपरीत है, अर्थात् उस महिला को भव्य भवन में दोबारा दफनाए जाने के बाद मरणोपरान्त उसे भवन के अनुरूप संज्ञा दी गई।

हमारा यह नित्कर्ष शाहजहाँ के अपने दरबारी इतिहास 'बादशाहनामा' पर आधारित है जो कहता है,[१] "१७ जी-ए-कदा १०४० को आलिया बेगम की ४० वर्ष की अवस्था में मृत्यु हुई···। उसने उसको आठ पुत्र और छ: पुत्रियाँ दिए।···"

मौलवी मोइनुद्दीन अहमद लिखता है[२] कि उसका वास्तविक नाम अर्जुमन्द-बानो बेगम था।

अब यह जानना संगत होगा कि वह तथाकथित 'ताज की रानी' कौन थी, शाहजहाँ के रनिवास में उसकी क्या स्थिति थी, कौन उसके पूर्वज थे और शाहजहाँ की दृष्टि में उसका कितना महत्त्व था?

अर्जुमन्दबानो जहाँगीर के प्रधानमंत्री और उसके श्वसुरों में से एक मिर्जा गियास बेग की पोती थी। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मिर्जा गियास

---

१. इलियट और डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ २७

२. [illegible], पृष्ठ [illegible]

बेग फारस के दरबार में एक सामान्य बैरा था जो उस स्थिति से उठकर मुगल दरबार में प्रधानमंत्री इस कारण बन गया क्योंकि उसकी सुन्दर एवं प्रभावशाली पुत्री जहाँगीर की प्रेयसी बन गई थी। इस प्रकार उसकी पोती मुमताज़ उर्फ अर्जुमन्दबानो बेगम जन्म से ही सामान्य स्त्री थी।

अर्जुमन्दबानो का पिता ख्वाजा अब्दुल हसन (जो यासीन-उद्दौला आसफ खाँ के नाम से भी जाना जाता था) और माता दीवानजी बेगम थी। १५९४ में [१] जन्मी मुमताज़ का १६१२ में शाहजहाँ से विवाह हुआ। इसलिए विवाह के समय वह १८ वर्ष की और शाहजहाँ २१ वर्ष का था। किन्तु वह शाहजहाँ की प्रथम पत्नी नहीं थी। शाहजहाँ की प्रथम पत्नी, महारानी फारस के शासक शाह इस्माइल सफवी की प्रपौत्री थी। शाहजहाँ की असंख्य अन्य पत्नियाँ और सहस्रों रखेलें भी थीं। मुमताज़ से विवाह करने से पूर्व ही न केवल शाहजहाँ विवाहित था अपितु मुमताज़ की मृत्यु के बाद भी उसने विवाह किया। इन विवाहों के मध्य वह सैकड़ों की संख्या में अपने हरम में रखेलें भी रखने का अभ्यस्त था। इसलिए यह तर्क करना नितान्त असंगत है, जैसा कि पारम्परिक रूप से होता आया है कि शाहजहाँ मुमताज़ पर इतना अनुरक्त था कि उसकी मृत्यु के बाद, जीवन में उसकी रुचि समाप्त हो गई थी और इसलिए उसने उसकी स्मृति को एक भव्य मकबरे के रूप में चिरस्थायी रखा।

इतिहास की वर्तमान पुस्तकों में मुमताज़ के प्रति शाहजहाँ के कल्पित अनुराग का जो झमेला विद्यमान है, उसे तत्कालीन इतिहास द्वारा संगत नहीं पाया जाता। ५००० रखेलों के हरम में मुमताज इतनी महत्त्वहीन थी कि किसी भी इतिहासकार ने उसके जन्म, मृत्यु और बुरहानपुर के ताज उद्यान में अथवा ताजमहल के गुम्बद के नीचे दफनाए जाने आदि की तिथियों का सही अंकन भी नहीं किया। एक उद्धरण से इसकी पुष्टि होती है[२]—"ताज के निर्माण का कार्य १६३० में या

१. प्रत्येक अन्य विवरण की भाँति मुमताज़ का जन्म-वर्ष भी कल्पित प्रतीत होता है। मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी, जिसका हमने इस अध्याय में पहले उल्लेख किया है, के अनुसार मुमताज महल अपने ४०वें वर्ष में थी जब उसकी मृत्यु हुई, क्योंकि उसकी मृत्यु १६३० में हुई इसलिए वह निश्चित ही १५९० में जन्मी होगी। और इस पर भी मौलवी मोइनुद्दीन की पुस्तक में मुमताज़ की जन्मतिथि १५९४ लिखी गई है।

२. 'आगरा—हिस्टोरिकल एण्ड डेस्क्रिप्टिव—अकबर उसके दरबार, और आधुनिक आगरा नगर', पृष्ठ ११५, ले. सय्यद मोहम्मद लतीफ (खानबहादुर), कलकत्ता सेंट्रल प्रेस कं. कलकत्ता में १८९६ में प्रकाशित।

मुमताज़ महल की मृत्यु के एक वर्ष बाद आरम्भ हुआ। भवन के पूर्ण होने की तिथि सामने के प्रवेश-द्वार पर १०५७ (१६४८) खुदी हुई है। इस प्रकार इसके पूर्ण होने में १८ वर्ष लगे। लागत ३० लाख स्टर्लिंग थी।''

उपरिलिखित उद्धरण मुमताज़ और ताजमहल से सम्बन्धित अन्य विवरण, जो कि यहाँ उद्धृत किए गए हैं, उनसे पर्याप्त भिन्न हैं। इसका अभिप्राय है कि मुमताज़ की मृत्यु १६२९ में हुई जबकि अन्य लोग उसकी मृत्यु १६३० या १६३१ या १६३२ में बताते हैं। ताजमहल की लागत-राशि भी किसी प्रामाणिकता के अभाव में सर्वथा काल्पनिक है।

लेखक का यह विश्वास गलत है कि १०५७ हिजरी (१६४८ ई.) में, ताजमहल के पूर्ण होने की तिथि सामने के प्रवेश-द्वार पर खुदी हुई है, इससे केवल यही आभास मिलता है, यदि हुआ है तो, कि हिन्दू प्रासाद पर कुरान की आयतों की खुदाई उस तिथि को पूर्ण हुई। कलाकार इस सम्बन्ध में अस्पष्टता, संक्षेप में अपराध-भावना से मौन हैं। यह सन्देह कि ताजमहल को पूर्ण होने में १८ वर्ष लगे, प्रत्यक्षतया इस तिथि पर आधारित होने से सर्वथा गलत है। १६३० में ताजमहल के निर्माण का आरम्भ मानना स्पष्टतया भूल है, क्योंकि यह सब जानते हैं कि मुमताज़ कदाचित् १६३२ तक जीवित रही। और फिर योजना पर विचार करने, रेखाचित्र बनाने, भूमि प्राप्त करने, अन्य सामग्री एकत्रित करने, श्रमिकों को एकत्रित करने और निर्माण प्रारम्भ करने में कम-से-कम एक-दो वर्ष तो लगने चाहिए। अतः यह विवरण भी यही सिद्ध करता है कि ताजमहल से सम्बन्धित शाहजहाँई कथानक झूठा और वाहियात है। यह १८ वर्ष का दावा भी टैवर्नियर के इस दावे कि ताजमहल को बनने में २२ वर्ष लगे, के विरुद्ध है।

यह पारम्परिक कथन कि शाहजहाँ मुमताज़ के प्रति शोकाकुल था, कुतर्क का विचित्र उदाहरण है, जो कि झूठा है। यह कल्पना इस विश्वास से उत्पन्न हुई कि ताजमहल नामक एक सुन्दर मकबरे का निर्माता शाहजहाँ था। उस झूठ को सहारा देकर स्थायी रखने के लिए अन्य कल्पनाएँ कर ली गईं। किन्तु वे सभी कल्पनाएँ परस्पर विरोध एवं असंगत हैं जैसाकि असत्य का अवश्यम्भावी परिणाम होता है। जो कल्पना यहाँ उभारी गई वह यह है कि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति विशेष तथा नितान्त प्रेम था, इसका अभिप्राय केवल यह सिद्ध करना है कि उसकी स्मृति में बहुमूल्य स्मारक बनवाया गया। यदि वह उस पर इतना अनुरक्त होता तो इतिहास में

इसका उल्लेख प्राप्त होता। किन्तु इस सम्बन्ध में कहीं एक शब्द भी नहीं है। केवल-मात्र विशिष्ट प्रेम, यदि कोई है तो मुगल दरबार के कथानकों में केवल जहाँगीर और उसकी रखेल नूरजहाँ का है। जहाँ तक शाहजहाँ का सम्बन्ध है परम्परा मिथ्या आधार पर आरम्भ होती है जैसे कि उसने ताजमहल बनवाया। फिर उसको स्पष्ट करने के लिए—अर्थात् इस पर व्यय हुई असंख्य राशि को प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए, और इसकी सुन्दरता—यह अनुमान लगाया जाता है कि वह उसके प्रति अत्यन्तरूपेण आसक्त था। 'कुतर्क' से हमारा यही अभिप्राय है।

अपने वैवाहिक जीवन की १८ वर्ष की अवधि में उसको १४ बच्चे हुए जिसमें ७ जीवित रहे। इसका अभिप्राय है कि कोई भी वर्ष उसका गर्भावस्था के बिना नहीं रहा। इससे अपनी पत्नी के स्वास्थ्य के प्रति शाहजहाँ का उपेक्षा भाव प्रकट होता है। और तो और, अंतिम प्रसव के उपरान्त उसका प्राणान्त ही हो गया। उस समय वह केवल ३७ वर्ष की थी।[१] क्योंकि उसका प्राणान्त बुरहानपुर में हुआ था। उसका शव वहीं दफनाया गया। यदि शाहजहाँ को उसकी तनिक भी परवाह होती तो वह वहीं उसका स्मारक बनवाता जहाँ उसकी पत्नी को पहले दफनाया गया था। ६ मास बाद शव को आगरा ले जाने के लिए उखाड़ा गया, जो इस्लाम के नियमों का अनादर और उल्लंघन था। वास्तव में, जैसाकि परम्परागत कथानक में उल्लेख है, यदि ताजमहल को बनने में १० से २२ वर्ष लगे, तो मृत्यु के छः मास बाद ही शव को मूल कब्र से उखाड़कर आगरा क्यों लाया गया? किस बात की त्वरा थी?

एक अन्य रोचक तथ्य यह है कि ताज की परिसीमा में भी उस शव को पुनः छः मास के लिए एक अस्थायी कब्र में रखा गया। उसके बाद उसको वहाँ रखा गया, जहाँ उसे अब रखा हुआ समझा जाता है। ये वे महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं जिनका सावधानी से परीक्षण होना चाहिए। यदि शाहजहाँ ने वास्तव में ही १० से २२ वर्ष की अवधि में २० सहस्र श्रमिक नियुक्त करके ताजमहल बनवाया होता तो कोई भी सारे क्षेत्र में फैली हुई निर्माण-सामग्री और इधर-उधर चलते-फिरते श्रमिकों की कल्पना कर सकता है। ऐसी स्थिति में क्या किसी मृत महारानी के शव को इस

---

१. पिछली पाद-टिप्पणी में हमने दिखाया है कि किस प्रकार मुल्ला अब्दुल हमीद दावा करता है कि मुमताज़ अपनी मृत्यु के समय ४०वें वर्ष में (३७वें नहीं) थी।

प्रकार नीचे रखना सम्भव था जहाँ कि असंख्य साधारण श्रमिकों के पैरों तले और मलबे के नीचे वह रौंदा जाय?

हमारे विचार में इसका बुद्धिमत्तापूर्ण स्पष्टीकरण यह है कि मृत्यु के तुरन्त बाद ही मुमताज़ को बुरहानपुर में ही जहाँ कि उसकी मृत्यु हुई थी, दफना दिया गया। छः मास बाद जब शाहजहाँ को लगा कि अपनी पत्नी की मृत्यु का बहाना बनाकर, जयसिंह से उसका भव्य पैतृक प्रासाद खाली कराया जा सकता है, तो उसने जयसिंह पर अपने ऐश्वर्यशाली राजप्रासाद को खाली करने के लिए दबाव डालना आरम्भ किया। क्योंकि जयसिंह पर सरलता से मनमानी नहीं चल सकती थी इसलिए शाहजहाँ ने अपने पत्नी का शव उखाड़कर मँगवा लिया जिससे कि जयसिंह को एक प्रकार से इत्थमेत्थम् दिया जा सके। और जब शव वहाँ पर पड़ा हो और बादशाह एवं समस्त मुसलमान सरदार जयसिंह को धमकियाँ दे रहे हों, तब वह कब तक उनका मुकाबला कर सकता था? उसे अपना पैतृक प्रासाद समर्पण करना ही पड़ा।

कुछ ही महीनों में इसका मध्यवर्ती अष्टकोणीय सिंहासन-कक्ष खोद डाला गया। इसके गर्भ-गृह में दो गड्ढे खोदे गए और उनमें से एक में मुमताज का उखाड़ा गया शव फिर दफना दिया गया। सिंहासन-कक्ष के गर्भ-गृह के ऊपर दो नकली कब्रें ऐसी बना दी गईं कि वे गर्भ-गृह में स्थित दोनों कब्रों के ऊपर सीधी हों। गर्भ-गृह में दूसरा गड्ढा शाहजहाँ के लिए था। अपने गड्ढे के ऊपर की कब्र तो मुमताज़ की कब्र के साथ पूर्ण की जा सकती थी, क्योंकि ऊपरी भाग को बिना छेड़े ही शाहजहाँ की मृत्यु के बाद उसका शव अत्यन्त सुविधानुसार उसके अधोभाग में रखा जा सकता था। स्वयं को शान से मुमताज़ के बराबर में दफनाने के लिए ऐसा करना आवश्यक था, क्योंकि उसका कोई भी पुत्र उसे नहीं चाहता था, यह वह जानता था। गर्भ-गृह के ऊपर सिंहासन-कक्ष में नकली कब्रें बनानी ही पड़ी थीं क्योंकि यदि ऐसा न किया जाता तो शाही शव नीचे पड़े रहते और ऊपर कक्षों को लोग अस्थायी कार्य के लिए उपयोग करते इससे शवों की पवित्रता नष्ट हो जाती।

वेनिस निवासी निकोलावो मनूसी, शाहजहाँ के दरबार-सम्बन्धी अपने विवरण में, जिसका कि वह प्रत्यक्षदर्शी था, कहता है[१]—"इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि ताजमहल (अर्थात् मुमताज़) के जीवन-काल में ही पुर्तगाली यदि दरबार

१. स्टोरिया डो मोगोर या मुगल इण्डिया, १६५३-१७०८, लेखक निकोलावो मनूसी, पृष्ठ १७६-७७

में पहुँचे होते तो वह उन सभी को अत्यधिक यातना देने के उपरान्त उनके टुकड़े-टुकड़े करवा देती।'''एक ही बात है, वे फिर भी पर्याप्त यातना से बच नहीं पाए। कुछ लोगों ने धर्म परिवर्तन कर लिया वह इसलिए कि या तो मृत्यु के भय से या फिर इस इच्छा से कि उन्हें उनकी पत्नियाँ, जो कि शाहजहाँ ने अपने दरबारियों में बाँट दी थीं, प्राप्त हो जाएँगी। जो उनमें से बहुत ही सुन्दर थीं उनको राजकीय प्रासाद के लिए अलग रख लिया गया।''

इस प्रकार न तो उच्चवंश और न ही आसक्तिमय विशेषताओं, शारीरिक सुन्दरता, विशिष्ट अनुरक्ति और पद की श्रेष्ठता के कारण (क्योंकि वह प्रथम पत्नी नहीं थी और न ही वह महारानी बनने की अधिकारिणी थी) अर्जुमन्दबानो बेगम किसी अनुपम मकबरे की विशिष्टता की अधिकारिणी थी।

शाहजहाँ और मुमताज़ दोनों ही, इस प्रकार नितान्त निर्दयी और दुष्ट थे, वे रोमियो और जूलियट की भाँति कोमल-हृदय प्रेमी भी नहीं थे जैसाकि भ्रान्त जनता को विश्वास दिलाया जाता रहा है।

जब अप्रैल, १९७४ में बुरहानपुर में मैंने एक फोटोग्राफर से वहाँ विद्यमान मुमताज़ के फोटो के लिए बात की तो उसने पूछा कि मुझे मकबरे का बाहरी परिदृश्य चाहिए अथवा भीतरी कब्र का।

इससे यह संकेत मिलता है कि बुरहानपुर में भी मुमताज़ को हथियाये गए भवन के भीतर ही दफनाया गया जबकि जो विवरण हमें उपलब्ध हैं उनका दावा है कि मुमताज़ को खुले उद्यान में दफनाया गया था। इसलिए यह स्पष्ट है कि वास्तव में मुमताज़ को बुरहानपुर में पहले उद्यान महल में दफनाया गया ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार उसको दोबारा आगरा में उद्यान प्रासाद में अर्थात् ताजमहल में, दफनाया गया।

यह एक और विवरण है जिसे ३ लम्बी सदियों तक भोली-भाली जनता से छिपाकर रखा गया है। इससे इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि किस प्रकार इतिहासकार मुस्लिम-कथन को बिना प्रमाण और खोज के स्वीकार करते रहे हैं।

शाहजहाँ ने किसी प्रकार से मुमताज़ को पूर्व-निर्मित प्रासादों में पहले बुरहानपुर में और दोबारा उससे अच्छे प्रासाद में आगरा में केवल इसलिए दफनाया कि इससे दो हिन्दू अपने प्राचीन पूर्वजों के प्रासादों से हाथ धो बैठें। इस प्रकार एक शव के द्वारा शाहजहाँ दो विभिन्न हिन्दू प्रासादों को दो विभिन्न एवं दूरस्थ नगरों में

अनुचित कार्य के लिए प्रयोग करने में सफल हो गया।

दोनों ही अवस्थाओं में ऐतिहासिक विवरण दो बार दफन पर विचित्र व्याख्या करते हुए मुमताज़ का पहली बार बुरहानपुर में एक उद्यान में और कुछ मास पश्चात् आगरा में मानसिंह के उद्यान में दफनाने का उल्लेख करते हुए बड़ी सावधानी से इस बात को छिपा गए कि दोनों ही स्थानों पर उसको उन उद्यानों में स्थित भवनों के अन्दर दफनाया गया था। बाद में बड़े छल-कपट से उन विवरणों में यह जोड़ा गया कि शाहजहाँ ने आगरा में मकबरा बनाने में, जिसका नाम ताजमहल है, करोड़ों रुपया व्यय किया।

यदि शाहजहाँ को मुमताज़ की कब्र पर भव्य भवन बनाने की इच्छा होती तो वह बुरहानपुर में ही यह कार्य कर लेता। इस प्रकार वह दोहरा खर्चा, पहले एक बार बुरहानपुर में एक मकबरा बनाकर और दूसरा उससे अच्छा आगरा में, और फिर उस खर्चे का कोई हिसाब भी न रखना, नहीं करता। क्या शाहजहाँ को करने के लिए इससे अच्छे काम नहीं थे कि वह अपनी मृत पत्नी के शव की उखाड़-खोदी करता हुआ दूरस्थ नगरों में वास्तुकला का प्रयोग करता फिरे!

प्राचीन हिन्दू ताजप्रासाद यथावत् विद्यमान

जो लोग शाहजहाँ के ताजमहल का निर्माता होने की पारम्परिक किंवदन्ती से, इस पुस्तक में प्रस्तुत पुष्ट एवं स्पष्ट प्रमाणों के अध्ययन के उपरान्त भी, मुक्त नहीं हो पाए हैं, वे यह तर्क करने के लिए उद्यत रहते हैं कि सम्भव है शाहजहाँ ने एक पूर्व-निर्मित हिन्दू प्रासाद-अधिग्रहण किया हो, किन्तु निश्चित ही उसने इसको पूर्णतया ध्वस्त करके नया मकबरा बनवाया होगा। यह सत्य नहीं है। शाहजहाँ द्वारा ताजमहल में किए गए चार बाहरी परिवर्तनों के अतिरिक्त वह आज भी वैसा ही प्राचीन हिन्दू प्रासाद के रूप में है। पहला परिवर्तन उसने जो किया वह था केन्द्रीय कक्ष को खुदवाकर उसमें मुमताज़ को दफनाकर उस पर कब्र बनवा दी। दूसरा परिवर्तन उसने मध्यवर्ती भूतलीय कक्ष में करवाया। यहाँ शाहजहाँ द्वारा दो नकली कब्रें बनवा दी गईं जिससे कि हिन्दू उस पर पुनराधिकार न कर सकें। शाहजहाँ द्वारा किया गया तीसरा परिवर्तन था हिन्दू प्रासाद की भित्तियों पर कुरान की आयतें खुदवाना। चौथा परिवर्तन जो उसने किया वह था गर्भ-गृह और ऊपरी मंजिल के अनेक कक्षों तथा सीढ़ियों को रेत, ईंट और चूने से बन्द करा देना।

उपरिलिखित अंश से पाठक समझ सकते हैं कि शाहजहाँ ने किसी प्रकार का रचनात्मक परिवर्तन अथवा संशोधन ताजमहल में नहीं करवाया। इसलिए पाठकों एवं ताजमहल के पर्यटकों को चाहिए कि वे उसको प्राचीन हिन्दू मन्दिर-परिसर के अतिरिक्त उससे अधिक या कम कुछ न समझें। इसको मकबरा मानने की गलती करने के बाद तो पर्यटकों तथा दर्शकों का मन फिर तहखाने की कब्रों और नकली कब्रों पर केन्द्रित हो जाने के कारण वे इस भवन की विशालता, भव्यता और महत्त्व को समझने में असमर्थ हो जाएँगे।

ताजमहल का जब मन्दिर-प्रासाद परिसर के रूप में पर्यावलोकन किया जाता

है तो उसकी निम्न विशिष्टताओं पर ध्यान केन्द्रित होता है :

१. इसका संगमरमर का केन्द्रीय अष्टकोणीय भवन। इसकी कम-से-कम चार मंजिलें केवल संगमरमर की ही हैं। गर्भगृह में आठ कक्षों से घिरा हुआ एक केन्द्रीय भव्य कक्ष है। केन्द्रीय कक्ष में इस समय दो कब्रें हैं। भूतलीय मध्यवर्ती कक्ष जिसका उपयोग प्राचीन हिन्दू मयूर-सिंहासन रखने के लिए किया जाता था, उसे शाहजहाँ ने नष्ट करवा दिया, अब यहाँ दो नकली कब्रें हैं। शीघ्रता के कारण पर्यटक मध्यवर्ती कक्ष (कब्र) को घेरे हुए इन दस कक्षों का चक्कर काटना भूल जाते हैं। इस प्रकार इस संगमरमर वाले भवन में ही उसके भूगर्भ में ११ कक्ष, भूतल पर ११ कक्ष और १० ऊपरी (अर्थात् पहली) मंजिल पर होनी चाहिए, क्योंकि गुम्बद मध्यवर्ती कक्ष से ऊपर तक चला जाता है। इस प्रकार उस संगमरमर प्रासाद की तीनों मंजिलों पर कुल मिलाकर ३२ कक्ष होने चाहिए। चौथी मंजिल पर गुम्बद के नीचे केवल एक महाकक्ष है। यह बहुत बड़ा भव्य प्रासाद-समूह है, एक कक्षीय मकबरा नहीं जैसा कि शीघ्रता के कारण अनेक पर्यटक इसको ऐसा समझते हैं।

२. ताजमहल की दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है इसके दक्षिण और वाम पार्श्व में स्थित दो भवन। उनमें से अब एक को तो भ्रम से मस्जिद माना जाता है और दूसरे को अनावश्यक प्रतिरूप भवन बताया जाता है। ये दोनों रक्षकों तथा आगन्तुकों के लिए बने मण्डप थे।

३. संगमरमरी भवन के चारों ओर लाल पत्थर का बहुत बड़ा आँगन है। इसके नीचे एक विशाल गर्भगृह है जिसमें अनेक कक्ष हैं। जनता को चाहिए कि पुरातत्त्व-विभाग से आग्रह कर उस गर्भगृह को खुलवाकर जन-साधारण के देखने के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। सम्भवतया उन बन्द कमरों में कोष और प्रतिमाएँ तथा कुछ अन्य ऐसी भी वस्तुएँ हों, जिससे भवन के मूल रूप से हिन्दू होने का रहस्य प्राप्त हो सके। यदि दर्शकों पर उसे देखने का साधारण शुल्क लगा दिया जाय तो उससे उस खोले गए गर्भगृह के रख-रखाव के लिए पर्याप्त धन एकत्रित हो जाएगा।

४. संगमरमर प्रासाद के स्तम्भ पीठ के चारों कोनों पर चार मीनारें हैं जिन्हें जब रात्रि में प्रकाशित किया जाता है तो उससे वह सारा भवन भव्यता से दीप्त हो उठता है। प्रत्येक मीनार के भीतर चक्करदार सीढ़ियाँ हैं जो उनके शिखर तक जाती हैं। स्तम्भपीठ के कोनों पर स्थित मीनारों को ताजमहल के दर्शक बड़ी दृढ़ता से

कहते हैं कि ये निश्चित ही मुसलमानी मूल के हैं। हम उनसे कहना चाहते हैं कि इस्लामिक मूल से दूर ये मीनारें स्वयं हिन्दू वास्तुकला की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं, इसकी पुष्टि के लिए हम कीन की पुस्तक (हैंडबुक) के पृष्ठ १५२ पर की पाद-टिप्पणी को उद्धृत करते हैं। इसमें लिखा है—"कनिंघम इस स्मारक (अर्थात् हुमायूँ का मकबरा) के सम्बन्ध में लिखता है कि मकबरे में हम सबसे पहले मुख्य भवन के चारों कोनों से मीनारों को देखते हैं। वे उत्तरी भारत की मुसलमानी शिल्प की नवीनता प्रकट करते हैं जो कि क्रमशः विकसित और समुन्नत होती गई और अन्त में ताजमहल की सुन्दर मीनारों के रूप में चरमोत्कर्ष पर पहुँची।"

उपरिलिखित उद्धरण स्पष्टतया बतलाता है कि हुमायूँ मकबरे के कोनों पर स्थित चार मीनारें और ताजमहल के स्तम्भपीठ के कोनों की चार मीनारें, गैर-इस्लामी नवीनताएँ हैं। दूसरे शब्दों में वे हिन्दू-मूल की हैं। इसका समर्थन भगवान् सत्यनारायण की पूजा की वेदी और विवाहोत्सव की वेदी के चारों कोनों पर मीनारों की भाँति केले के चार तने खड़े करने की हिन्दू रीति से हो जाता है।

उपरिउद्धृत पाद-टिप्पणी भी कीन और कनिंघम, पर्सी ब्राउन और फर्गुसन जैसे पाश्चात्य विद्वानों की विचार-प्रणाली पर प्रकाश डालती है। जब तथाकथित मस्जिदों और मकबरों की विशेषताओं का पृथक् विवेचन करते हैं तब वे स्वीकार करते हैं कि वे सब गैर-इस्लामी अर्थात् हिन्दू विशेषताओं से युक्त हैं और फिर भी वे अन्धतया विश्वास करते हैं कि सम्पूर्ण भवन मुस्लिम मूल का है। ताजमहल (आगरा), बीबी का मकबरा (औरंगाबाद) और गोल गुम्बज (बीजापुर) के दर्शकों को यह समझ लेना चाहिए कि वे हथियाये गए हिन्दू भवन हैं और इसलिए, यह धारणा कि चार कोनों पर स्थित मीनारें इस्लामी विशेषताएँ हैं, भ्रान्त धारणा है। विपरीत इसके यह हिन्दू विशेषता है। पिलानी (राजस्थान का एक नगर) में प्रत्येक सार्वजनिक कुएँ के स्तम्भ-पीठ के चारों कोनों पर मीनारें हैं। पुरातत्त्व-विभाग के अधिकारी, इतिहास के अध्यापक और विद्वान्, स्मारकों के दर्शक और अधिकृत मार्गदर्शक (गाइड) यद्यपि स्वयं को अपने विषय का अधिकारी विद्वान् मानते हैं किन्तु वे कनिंघम के निष्कर्षों से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं।

५. संगमरमर के भवन तथा उद्यान से सटी सामने की ओर एक लाल पत्थरों की दीवार है। ज्यों ही कोई ताजमहल की ओर उन्मुख होता है, बाईं ओर लाल पत्थर की दीवार में एक बहुमंजिला कुआँ है जिसकी प्रत्येक मंजिल में कक्ष बने हैं। कुआँ

के ये कक्ष प्रासाद का कोष रखने के काम में आते थे। यदि वहाँ के निवासियों को अकस्मात् कोई शत्रु आ दबोचे तो सम्पत्ति को कुएँ में डालने में सुविधा रहे। डाकू और लुटेरे, जो कुएँ के संकीर्ण निकासों और घुमावों को पार कर सहज ही कोष नहीं पा सकते थे इसलिए सामान्य स्थिति में उसे सुरक्षित रखने के लिए कुओं में रखा जाता था।

६. लाल पत्थर की दीवार के साथ दूर तक संगमरमर भवन के सामने लम्बे महराबदार वराण्डे हैं।

७. जब हम संगमरमर के ताजमहल को मुख्य द्वार की ओर से दूर से देखते हैं तो दाईं ओर लाल पत्थर की दीवार के बाहर अनेक कमरों से युक्त विशाल प्रांगण दिखाई देता है।

८. उद्यान के बाहर अनेक महराबदार वराण्डों तथा अनेक कमरों से युक्त विशाल प्रांगण है। इस विशाल प्रांगण का उपयोग उन राजकीय अतिथियों के स्वागत के लिए होता था जो अपने अनेक नौकर-चाकरों तथा सुरक्षा-सैनिकों के साथ आया करते थे। इसी प्रांगण में अंग-रक्षकों तथा सैनिकों से घिरे दरबारी, राजकुमार और शासक बाग से होकर ताजमहल में प्रवेश करने वाले प्रमुख अतिथि के सम्मान में पंक्तिबद्ध खड़े होते थे।

९. लाल पत्थर की दीवार के बाहर अंगरक्षकों, सचिवों, राजकुमारों और शासकों के निकट सम्बन्धियों के लिए अनेक कक्ष विद्यमान हैं।

१०. लाल पत्थर की दीवार के पूर्व की ओर दो ऊँचे बुर्ज हैं जिनके अनेक मंजिलों में अनेक कक्ष बने हैं। आजकल इस बुर्ज के चारों ओर गंदी नालियों का पानी बहता है जिससे कालान्तर में इसकी नींव खराब होने की सम्भावना है।

११. उद्यान के बाहर लाल पत्थर के प्रांगण में अश्वारोहियों तथा उनके सहायकों के लिए सैकड़ों कक्ष और अश्वशालाएँ हैं।

१२. इस प्रासाद परिसर के चारों ओर बहुत सुन्दरता से बनी दूकानों की पंक्तियाँ हैं, जिन्हें टैवर्नियर ने 'तासी मकान' के रूप में वर्णन किया है।

ताजमहल के आयाम प्रासादिक हैं

ताजमहल के आयाम तथा विशेषताएँ प्रासादिक हैं। इसके असंख्य प्रवेश-द्वार नुकीली कीलों वाले हैं। सम्पूर्ण भवन परसिर में ३ से ४ सौ तक कक्ष, एक बहुमंजिला कूप तथा मनोरंजनार्थ मंडप हैं।

ताजमहल तक पहुँचनेवाले मार्ग के दोनों ओर लाल पत्थर के बने महराबदार बरामदे हैं जो सभी राजपूती हिन्दू राजकीय भवनों में विशेषतया होते हैं। ऐसे बहुत से महराबदार बरामदे ताजमहल के उद्यान तथा बाहरी प्रांगण को भी घेरते हैं। इनके मध्य सैकड़ों कक्ष बने हैं जिनमें प्रासाद के कर्मचारी तथा पशु आदि के रहने की व्यवस्था होती है। मुसलमानी कल्पित कथाओं में उन्हें जिलो-खाना यो मनोरंजन-कक्ष बताया जाता है। शाहजहाँ जैसा क्रूर और अहंकारी बादशाह जन-सामान्य के लिए विलास-कक्ष बनाने की कृपा करे और उस मकबरे के ऊपर नानाविध समारोह हों जिस पर स्वयं शाहजहाँ (जैसा कि हमें बताया गया है) १६३० से १६६६ तक दिन और रात निरन्तर फूट-फूटकर रोया हो। राजस्थान के सभी प्राचीन हिन्दू प्रासादों और नगरों के बाहर ऐसे भंव्य प्रवेश द्वारा आज भी देखे जा सकते हैं।

प्रासाद के पीछे नदी के किनारे एक बढ़िया 'घाट' बना हुआ था। इसका एक भाग अभी भी विद्यमान है। ताजमहल के पिछले भाग में खुलनेवाले प्रवेश-द्वार (जो अब बन्द हैं) हिन्दू राज-परिवार के सदस्यों के स्नान और नौकाविहार के लिए बनाए गए थे।

ताजमहल भवन-परिसर के अनेक भवनों में एक नक्कारखाना भी है। इस नक्कारखाने का शिल्प राजपूती होने के साथ-साथ चित्तौड़, ग्वालियर और अजमेर में भी ऐसे नक्कारखाने होना लेखक के मत की पुष्टि का एक अन्य प्रमाण है। इस्लामी धार्मिक स्थानों में किसी भी प्रकार के संगीत की सख्त मनाही है और दूसरी

तरह भी दिवंगत आत्माओं के विश्राम-स्थल को क्षुब्ध करने के लिए उनके समीप नक्कारखाना कभी भी नहीं बनाया जा सकता। किन्तु हिन्दू प्रासादों में नक्कारखाना अनिवार्यरूपेण बनाया जाता है। ढोल और शहनाई-वादन का आयोजन प्रात:काल, राजकीय आगमन और प्रस्थान, अतिथियों का स्वागत, समारोहों और शासकीय घोषणाओं एवं अध्यादेशों की सूचनार्थ करवाया जाता था।

हमने एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका को, यह कहने[1] के लिए पहले ही उद्धृत कर दिया है कि "परिसर के बाहर दक्षिण की ओर अनेक उप-भवन हैं जैसे अश्वशाला, बाहरी कक्ष तथा आरक्षक-निवास।"

टैवर्नियर ने भी कहा है[2] कि "तासी मकान (ताज-ए-मकान अर्थात् राजभवन) छ: बड़े-बड़े आँगनोंवाला, जो कि मेहराबों से छाये हैं और जिनके नीचे सौदागरों के बैठने के लिए कक्ष बने हैं, बहुत बड़ा बाजार है।"

उन सभी भवनों के शिखरों पर विशाल छज्जे और गलियारे हैं। ताजमहल को देखने वाले यदि यह अनुभव करें कि यह प्रासाद है तो वे शीघ्रता में नकली कब्रों और भूतलीय कब्रों को देखकर ही सन्तुष्ट नहीं हो सकते। बरामदों, गलियारों और भूलभुलैयायुक्त भूगर्भ-कक्ष के भीतरी भागों में टहलते हुए जाना चाहेंगे। सरकारी पुरातत्त्व-अधिकारी, इतिहास के अध्यापक, छात्र और सामान्य यात्री को उचित निर्देश दिए जाने चाहिए जिससे कि वे ताजमहल का हिन्दू प्रासाद के रूप में दर्शन एवं अध्ययन कर सकें। तभी वे उसकी वास्तविकता सुन्दरता और भव्यता को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

ताज का स्थान, जो जयसिंहपुरा और खवासपुरा नाम से जाना जाता है, अनेक भवनों से घिरा हुआ है। ताज के चारों ओर बहुमंजिले भवन हैं जिनमें आरक्षी कर्मचारी, सेना की टुकड़ी, बैरे, खानसामे, रसोइए, परिचायक तथा अन्य कर्मचारी जो कि राजकीय घराने में होने आवश्यक हैं, निवास करते हैं। इसलिए उस क्षेत्र में बाजार, धर्मशाला, अतिथि-गृह और उन सबको जोड़नेवाली सड़कें थीं।

ताज के आयाम और उसकी सज्जा-सामग्री यह सब समृद्ध प्रासाद के अनुरूप हैं न कि किसी उदास मकबरे के अनुरूप। इसकी पुष्टि के लिए हम यहाँ

---

१. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, भाग २१, पृष्ठ ७५८
२. ट्रेवल्स इन इण्डिया, भाग १, पृष्ठ १०९-१११

मौलवी मोइनुद्दीन की पुस्तक के कुछ उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :

"भव्य प्रवेश-द्वार के सम्मुख विशाल २११-१/२ फुट लम्बा ८६-१/४ फुट चौड़ा चबूतरा है।"चार दीवारों से घिरा हुआ आयताकार भूखण्ड उत्तर और दक्षिण में १,८६० फुट लम्बा एवं पूर्व और पश्चिम में १,००० फुट चौड़ा कुल क्षेत्रफल २,०७,००० वर्ग गज या ४२ एकड़ से कुछ अधिक है। प्रवेश-द्वार १०० फुट ऊँचा है।

"प्रवेश-द्वार साढ़े दस फुट चौड़ा है, द्वार आठ विभिन्न धातुओं के मिश्रण से बना हुआ है तथा इसमें पीतल की कीलें जड़ी हुई हैं। भीतरी क्षेत्र असंगत अष्टकोणीय है जिसका कर्ण साढ़े इकतालीस फुट है।"

यहाँ हम इस बात की ओर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि अष्टकोणीय आकृति विशेषतया परम्परागत हिन्दू आकृति है। हिन्दू घरों में प्रवेश-द्वार के सम्मुख प्रायः पत्थर के चूर्ण से अष्टकोणीय मांगलिक चिह्न बनाया जाता है। प्राचीन युग में हाथ के पंखे भी अष्टकोणीय आकृति से हुआ करते थे। दीपावली उत्सव पर लटकाये जानेवाले कन्दील भी अष्टकोणीय होते हैं।

विशिष्ट धातु-सम्मिश्रण विद्या हिन्दू लौहकारों को ज्ञात थी और वे ही इसका निर्माण करते थे जैसा कि दिल्ली के प्रसिद्ध लौह-स्तम्भ, धार में रखा हुआ स्तम्भ आदि अनेक उदाहरणों से स्पष्ट है।

मकबरा तो फकीरों और निर्धनों के लिए २४ घंटे खुला रहता है। इसलिए इसमें नुकीली कीलों से जड़े द्वारों की आवश्यकता ही नहीं होती। केवल प्रासाद या दुर्ग के द्वार ही चमकीले पीतल की कीलों से जड़े हुए होते हैं, जिससे कि सम्भावित अनधिकार प्रवेश के समय मजबूती के कारण उनसे शत्रु का समावेश न हो सके।

मौलवी आगे कहता है :

"दूसरी मंजिल तक जाने के लिए १७ सीढ़ियाँ हैं। १७ सीढ़ियाँ और चढ़ने पर हम तीसरी मंजिल पर, जिसमें चार निवास-गृह हैं, पहुँचते हैं। चारों निवास-गृहों के आगे गलियारा होने से ये परस्पर सम्बद्ध हो जाते हैं। इस मंजिल के कोनों पर चार द्वार तथा एक ओर ऊपर जानेवाली सीढ़ीवाले अष्टकोणीय कक्ष हैं।

"चार सीढ़ियों में से दो नीचे पहली मंजिल पर जाती हैं और दो को बीच में ही बन्द कर दिया गया है।

"दक्षिण-पश्चिमी कोनों पर बने कक्षों में आर-पार मार्ग है जबकि उत्तर-पूर्वी कोनों पर बने कक्षों के मार्ग के मध्य में अवरुद्ध कर दिए गए हैं। विभिन्न कक्षों को मिलानेवाला एक गलियारा है जिसकी शाखाएँ सीढ़ियों तक पहुँचाती हैं।

"३४ सीढ़ियाँ चलने पर हम सबसे ऊपर छत पर पहुँच जाते हैं। यहाँ कोनों पर चार बुर्ज बने हैं जिनमें प्रत्येक में आठ द्वार हैं। बुर्जियाँ छत्र धारण किए हुए हैं निजके शिखर पर कलश बने हैं।"

ऊपर के उद्धरण से अन्तिम वाक्य में 'कलश' शब्द ध्यान देने योग्य है। मौलवी मोइनुद्दीन के ताज-सम्बन्धी विवरण में इस शब्द की अनेक बार पुनरावृत्ति हुई है। यह शब्द संस्कृत का है। यह ताज में कदापि नहीं लगाया जा सकता, विशेषतया मुसलमानी ताज में, जब तक कि ताज को मुसलमानों से पूर्व का न माना जाए। कलश शब्द सामान्यतया पीतल या स्वर्ण के चमकदार शिखर का द्योतक है। कलश शब्द का बार-बार प्रयोग भी यह सिद्ध करता है कि यह स्मारक मुस्लिम-पूर्व का प्रासाद है। कलश शब्द केवल अत्युच्च एवं भव्य मन्दिरों, प्रासादों और ऐसे अन्य हिन्दू स्मारकों के सन्दर्भ में आता है।

गुम्बद के चारों ओर के चार बुर्ज भी विशुद्ध राजपूत आकार के हैं। ताजमहल के चारों कोनों पर चार मीनारों के जो कक्ष हैं वे भी पूर्णतया राजपूत शैली के हैं।

गुम्बद के बारे में क्या कहते हो? यह पूछा जा सकता है। यह धारणा कि गुम्बद मुस्लिम आविष्कार है, नितान्त निराधार है। गुम्बद को मुस्लिम-संरचना कहना किसी-न-किसी रूप में इसको पैगम्बर मोहम्मद के जन्म से जोड़ना है। गुम्बद का वास्तुकला के रूप में रेखांकन और इस्लाम का उद्भव इन दोनों में परस्पर भला क्या तारतम्य हो सकता है?

ताजमहल के विषय में हमने पहले ही बादशाह बाबर, शाहजहाँ के दरबारी इतिहास—बादशाहनामा—तथा महान् अंग्रेज वास्तुकार हेवेल को यह सिद्ध करने के लिए उद्धृत किया है कि गुम्बद हिन्दू-निर्माणाकृति है।

वर्तमान केन्द्रीय इस्लामी पूजास्थल काबा स्वयं गुम्बद से ढका हुआ नहीं है।

केवल हिन्दुओं में ही आठ दिशाओं के लिए विशेष नाम प्रचलित हैं जैसे उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और इनके मध्य की अन्य चार दिशाओं के नाम संस्कृत के आधार पर हैं—ईशाण, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य—जो कि ताजमहल की

भाँति हिन्दू प्रासादों और मन्दिरों के अष्टकोणीय होने को इंगित करते हैं।

राजकीय कब्रों के पीछे भूगर्भ में १४ कक्षों का उल्लेख करते हुए मौलवी मोइनुद्दीन ने अपनी पुस्तक में लिखा है[१]—"अन्तिम दो कमरों में छल-छल करती नदी की ओर झाँकने के लिए झरोखे बने हैं"ये ही वे झरोखे हैं जो बहुत दिनों से छिपे हुए कमरों को प्रकाश में लाए हैं। सीढ़ियों के मुहाने पत्थर की शिलाओं से बन्द कर दिए गए थे। यह पता लगाना कठिन है कि ये भूगर्भीय कक्ष क्यों बनाए गए"।"

मौलवी मोइनुद्दीन सदृश मुसलमान का भी मकबरे के नीचे बने कमरों का स्पष्टीकरण कठिन बताना यह प्रकट करता है कि ताज की सम्पूर्ण कहानी किस प्रकार असंगत बातों को जोड़कर गढ़ ली गई है। किन्तु प्रासाद में भूगर्भीय कक्षों का होना न केवल अत्यन्त उपयोगी है अपितु वे अपरिहार्य हैं। प्रासाद में ऐसे कक्षों का उपयोग कोष को रखने, मित्रों को छिपाने, शत्रुओं को बन्दी बनाने और गुप्त मन्त्रणा के लिए होता था। मकबरे में भूगर्भीय कक्ष अनावश्यक हैं।

यह तथ्य कि उन भूगर्भीय कक्षों को बालू से भरकर अनुपयोगी बना देना, इस बात का और प्रमाण है कि स्मारक को जब एक बार मकबरे में बदल दिया तो फिर शाहजहाँ नहीं चाहता था कि आगन्तुक और रख-रखाव करनेवाले कर्मचारी उन कक्षों का निवास के रूप में प्रयोग करें। अतः विकृत किए गए प्रासाद के अनावश्यक कक्षों को भर दिया गया।

उसी पृष्ठ पर लेखक मौलवी मोइनुद्दीन आगे लिखते हैं, "फर्श पर यमुना की रेत की मोटी तह की विद्यमानता से यह अनुमान लगाना संगत हो सकता है कि उस पर घाट बना था जो बाद में किन्हीं अज्ञात कारणों से उपयोग में नहीं लाया गया। इस स्थिति में उसको बनाने का वास्तविक उद्देश्य 'रहस्य' ही बना रह जाता है।"

अनेक ऐसी बातें हैं जो उन लोगों के लिए निश्चित 'रहस्य' ही बनी रहेंगी जो ताजमहल का अध्ययन इस भ्रान्त धारणा के आधार पर करते हैं कि उसका निर्माण मकबरे के रूप में हुआ था। किन्तु इन सब रहस्यों का उद्घाटन उस समय हो जाता है जब यह मानकर अन्वेषण किया जाए कि शाहजहाँ के मस्तिष्क में

---

१. दि ताज एण्ड इट्स एनविरोनमेंट्स, पृष्ठ ३७—वास्तव में वहाँ २२ कमरे हैं।

इसको मकबरे का रूप देने का विचार आने से अनेक शताब्दी पूर्व ताजमहल राजपूत प्रासाद के रूप में विद्यमान था।

पृष्ठ ३८ पर मौलवी कहते हैं—"इन कक्षों के पश्चिम में एक मस्जिद है, जिसमें ५३९ श्रद्धालु समा सकते हैं।" हमें यह आश्चर्य होता है कि इस अंक ५३९ की कोई विशेषता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि प्रासाद के सिंहासन-कक्ष के पार्श्वस्थ आरक्षी-निवास ही आज की वह निर्दिष्ट मस्जिद है। यदि यह मस्जिद होती तो इसमें समा सकनेवाले मनुष्यों की संख्या सम, जैसे १,००० या १०,००० होती, ५३९ जैसी विषम नहीं।

ताजमहल के खुले चबूतरे के चारों कोनों पर स्थित संगमरमर की चार मीनारें हिन्दू प्रासाद के अनुसार चौकीदारी और प्रकाश-स्तम्भ दोनों ही काम में लाने के लिए हैं। रात्रि के समय शून्याकाश में अपने प्रकाश से चमकते हुए इन चार मीनारों के मध्य जगमगाता हुआ अति प्रकाशमान यह प्रासाद ऐसा अद्‌भुत प्रतीत होता था मानो उन चार मीनारों से जुड़ा हुआ हो।

भारत-अरब शिल्पकला के सिद्धान्त में अन्धानुयायी इससे अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं कि नींव अथवा चबूतरे से प्रारम्भ होनेवाली मीनारें प्राचीन भारतीय शिल्पकला की ही विशेषता हैं। अरब शैली की मीनारें तो भवन के स्कन्धों से आरम्भ होती हैं जैसा कि मस्जिदों में देखा जाता है और सामान्यतया ऐसी मीनारें न तो भीतर से खोखली होती है और न उनमें सीढ़ियाँ ही होती हैं। अनेक अन्य प्रमाणों के अतिरिक्त यह भी एक प्रमाण है जो तथाकथित कुतुबमीनार तथा ताजमहल की चार मीनारों के सम्बन्ध में पारम्परिक मुस्लिम दावे को झूठा सिद्ध करता है।

मन्दिर में पूजास्थल के रूप में, चाहे वह राजा द्वारा हो अथवा जन-सामान्य द्वारा, स्तम्भ-पीठ को चार मीनारोंवाला बनाना जगविख्यात प्राचीन भारतीय पद्धति है।

कनिंघम का यह कहना कि प्रथम बार हुमायूँ के स्मारक में चार कोनों में चार मीनारें देखी गईं, ब्रिटिश विद्वानों की सरलता का द्योतक है। यह मानने की अपेक्षा कि हुमायूँ का मकबरा एक पूर्ववर्ती हिन्दू प्रासाद है, जिसमें दूसरी पीढ़ी का मुगल बादशाह दफनाया गया है, वे अपने इस अनुमान से आरम्भ करते हैं कि वह विशाल भवन उसके दफनाए जाने के कारण बनाया गया। उसके बाद उनका ध्यान

उसकी चार मीनारों की ओर जाता है और उनको वे मुसलमानी शिल्पकला की नवीन पद्धति के रूप में चित्रित करते हैं। उसके बाद वे कल्पना करते हैं कि इन मीनारों की निर्माण-पद्धति में विकास हुआ और तब उनको प्रत्येक सम्राट् के मरने पर शनैः-शनैः मुख्य भवन से कुछ दूरी पर बनाया जाने लगा जिससे कि मुमताज़ की मृत्यु के समय तक वे स्तम्भपीठ के कोने पर बनने लगीं। यदि इसे इसी रूप में मान लिया जाय तो विकास के बीच की वे कड़ियाँ कहाँ हैं?

ब्रिटिश विद्वानों के, जो कि मुस्लिम इतिहास के प्रपंचों में फँसे हैं, भद्दे अनुमानों की ओर इंगित करने के उपरान्त हम पाठकों का ध्यान कनिंघम के निष्कर्षों के सत्यांश की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।

कनिंघम की यह मान्यता पूर्ण रूप से सही है कि भवन के चार कोनों पर चार मीनारें बनाना गैर-मुस्लिम पद्धति है। यदि वे दिल्ली में तथाकथित हुमायूँ के मकबरे के चारों कोनों पर और आगरे के ताजमहल के स्तम्भपीठीय कोनों पर पाई जाती हैं तो केवल इसीलिए कि दोनों ही मुस्लिम उपयोग के लिए हथियाए गए हिन्दू प्रासाद हैं।

जबकि ताज के पार्श्व में स्थित भवन को मस्जिद कहा जाता है तो दूसरे पार्श्ववाले भवन को अनुपयोगी एवं समानता बनाए रखने के लिए 'जवाब' के रूप में बताया जाता है। इस प्रकार ताज के विभिन्न भागों की व्याख्या ऐसे ढंग से की गई है कि असंगत और परस्पर विरोधी बातों से मनगढ़न्त सब बातें एवं सत्र इधर-उधर बिखर जाते हैं।

ताज परिसर के विषय में अपना सर्वेक्षण जारी रखते हुए मौलवी मोइनुद्दीन अहमद अपनी पुस्तक में लिखते हैं[१]—"मस्जिद की पिछली दीवार से सटा हुआ...बसई स्तम्भ है।" यह इसकी विशेषता या उपयोगिता को स्पष्ट करने में असमर्थ है। 'बसई' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत से है जिसका अर्थ निवास होता है। भारत में ऐसे अनेक प्राचीन नगर हैं जिनका नाम बसई है। जब हम ताजमहल को राजपूती प्रासाद मान लेते हैं जो कि शाहजहाँ से अनेक शती पूर्ववर्ती है तो फिर उस प्रासाद के भाग के रूप में बसई-स्तम्भ की व्याख्या सरल हो जाती है।

---

१. दि ताज एण्ड इट्स एनविरोनमेंट्स, पृष्ठ ३९। कदाचित् उनका अभिप्राय जबाब उर्फ जमायतखाना के सामने की ओर बहुमंजिली लाल पत्थर की इमारत से है।

मोइनुद्दीन अपनी पुस्तक के पृष्ठ ५० पर लिखते हैं कि बादशाहनामे के अनुसार यह कक्ष (जिसमें दोनों नकली कब्रें हैं) १० वर्ष में और ५० हजार रुपये की लागत से पूर्ण हुआ। इसका एक द्वार सूर्यकान्तमणि वाला था जिसकी लागत १० हजार रुपए थी।

स्पष्ट रूप से मकबरा सामान्यतया फकीरों और भिखारियों के लिए अधिकांश खुला रहता है, उसमें सूर्यकान्तमणिवाले द्वार की आवश्यकता नहीं। ऐसे व्यय-साध्य बहुमूल्य द्वार तो जीवित सम्राटों के भवनों के लिए होते हैं मृतकों के लिए नहीं।

ताज परिसर में स्थित अन्य भवनों के सम्बन्ध में मौलवी मोइनुद्दीन की पुस्तक के पृष्ठ ६४ पर अंकित है—"मकबरे के मुख्य द्वार और भवन के द्वार के मध्य का स्थान जिलोखाना कहलाता है।...भव्य भवन में एक बहुत बड़ा भाग, जो कि किसी समय ताज से सम्बद्ध था, ध्वस्त हो चुका है।...जिलोखाना की चारदीवारी के भीतर का क्षेत्र १२८ कमरों से युक्त था जिनमें से केवल अब ७६ कमरे शेष हैं। उद्यान की दीवार के निकट दो खवासपुर हैं, जिनमें से प्रत्येक में ३२ कमरे और अंगरक्षकों के लिए उतने ही प्रकोष्ठ हैं, (आजकल पश्चिमी 'पुरा' गमलों से भरा पड़ा है। अन्य पुरों में से आधे से अधिक पशुशाला बना दिए गए हैं।) आजकल भी ताजमहल परिसर में गौशाला की विद्यमानता ताजमहल के मूलतः हिन्दू भवन होने का एक अन्य स्पष्ट संकेत है।"

इस कथन के सावधानी से परीक्षण करने की आवश्यकता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ताज परिसर में सैकड़ों कमरों वाले ३-४ मंजिल ऊँचे-ऊँचे अनेक भवन थे। अनेक कमरों से युक्त भवनोंवाला स्थान कदापि किसी मकबरे का भाग नहीं हो सकता अपितु जब केन्द्रीय भवन प्रासाद हो तो उसके परिवार में यह सब होना नितान्त आवश्यक है।

'पुरा' प्रत्यय का प्रयोग उस समय से होता चला आ रहा है जब से कि ताजमहल राजपूतों के अधिकार में था, क्योंकि संस्कृत में 'पुरा' का अभिप्राय है भीड़-भरा स्थान, न कि कब्रगाह या उदास शान्ति का स्थान।

यहाँ तक कि 'खवास' शब्द जो कि 'खवासपुरा' का भाग है, राजपूती महत्त्व का है, क्योंकि 'खवास' लोग राजपूत शासकों के आश्रित थे। यह तथ्य कि ताज के उपभवनों में खवासपुरा का होना यह सिद्ध करता है कि जब राजपूत

केन्द्रस्थ ताज में निवास करते थे तो उनके आश्रित जन उन उपभवनों में रहते थे।

जैसा कि मूल्यवान् प्रासाद में होना स्वाभाविक है। ताजमहल के भूगर्भस्थ केन्द्रीय कक्ष भी सुन्दरता से सज्जित था। परन्तु चूँकि इस प्रासाद को मुसलमानी मकबरे को बदलने के लिए बलात् हथियाया गया था। इसलिए मुस्लिम शासन में गैर-मुसलमानों का इसके भूगर्भ-कक्ष में प्रवेश अवरुद्ध था। स्पष्टतया इसलिए कि इसके गैर-मुसलमानी होने का रहस्य प्रकट न हो जाए। शाहजहाँ के दरबार में आगन्तुक फ्रांसिस बर्नियर को यह बहाना करके भूगर्भ में प्रवेश से रोक दिया कि गैर-मुसलमान होने से उसका प्रवेश उस स्थान को अपवित्र कर सकता है। इससे हमारे निष्कर्षों की पुष्टि होती है। वह कहता है[१]—"गुम्बद के नीचे एक छोटा कक्ष है, जिससे सटा हुआ 'ताजे-महिल' का मकबरा है। बड़े समारोह के साथ वर्ष में एक बार केवल एक समय के लिए इसको खोला जाता है। कोई ईसाई इसके भीतर नहीं जा सकता, क्योंकि इससे उसकी पवित्रता नष्ट होती है। मैंने भीतरी भाग नहीं देखा परन्तु मैं समझता हूँ कि इससे अधिक मूल्यवान् और सुन्दर और कुछ नहीं हो सकता।" बर्नियर यह भी लिखता है कि अपनी कृपण प्रवृत्ति के बावजूद शाहजहाँ समृद्ध नहीं था। बर्नियर लिखता है[२]—"शाहजहाँ बहुत बड़ा अर्थशास्त्री था...जो...एकत्रित नहीं कर सका (अधिकाधिक) छः करोड़ रुपए।"

मुगलों के अत्यन्त समृद्धिशाली होने की सब कथाएँ किंवदन्ती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय जनता को बार-बार खुले आम लूटकर या फिर उन पर अनुचित कर तथा सुरक्षा शुल्क लगाकर उनसे अपार धन लूटा। किन्तु अपनी उस सम्पत्ति को अधिक समय तक सुरक्षित न रख सके। ज्यों ही यह धन एकत्रित होता था त्यों ही उसे दुष्ट एवं भ्रष्ट दरबारियों में इसलिए लुटाया जाता था कि जिससे वे ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने के लोभ में बादशाह के साथ विश्वासघात न कर सकें। इस प्रकार मुस्लिम दरबारी लूटमार की सम्पत्ति पर ऐश करते हुए बादशाह को हमेशा पैसे से तंग रखते थे।

इसलिए यह कहना अनैतिहासिक होगा कि शाहजहाँ जिसने अपने ३० वर्ष

---

१. ट्रैवल्स इन मुगल एम्पायर : लेखक फ्रांसिस बर्नियर, पृष्ठ ३३९ दो भागों में इर्विंग ब्रोक द्वारा अनूदित, १८२६ में लन्दन से प्रकाशित।

२. वही, पृष्ठ २५१

से भी कम के शासन में ४८ युद्ध लड़े और अकालों का सामना किया, उसने वैभवशाली ताजमहल, पुरानी दिल्ली का नगर जामा मस्जिद और दिल्ली का भव्य लाल किला, और वह भी पूर्णतया हिन्दू पद्धति से, बनवाया। तब प्रश्न यह उठता है कि शाहजहाँ ने यदि दिल्ली को बसाया और उसके केन्द्र में फतेहपुरी मस्जिद बनवाई, तब फिर जामा मस्जिद बनवाने की आवश्यकता कहाँ रह गई? भारत में मुसलमानी शासन के झूठे और कल्पित विवरणों से इतिहास के लिए सामग्री एकत्रित करते हुए इस प्रकार के तर्कयुक्त अनेक प्रश्नों पर विचार नहीं किया गया।

सर एच. एम. इलियट ने अपने आठ भागोंवाले इतिहास-ग्रन्थ के प्राक्कथन में ऐसे अनेक कल्पित और झूठे विवरणों का उल्लेख किया है। कीन ने तारीख-ए-ताजमहल अभिलेख को जालसाजी पाया है। इसी प्रकार पंजाब क्षेत्रीय इतिहास कांग्रेस ने अपने १९६६ के अधिवेशन में तत्कालीन मुगल बादशाह को लिखे गए नवाब मालेरकोटला के उस पत्र को जालसाजी करार दिया है जिसे गुरु गोविन्दसिंह द्वारा अपने दो पुत्रों के विषय में प्रार्थना बताया जाता था।

'दि गाइड टु दि ताज ऐट आगरा'[१] लिखता है—''ऐसा कहा जाता है कि ताज में प्रवेश के लिए दो चाँदी के द्वार थे।…''

मौलवी मोइनुद्दीन की पुस्तक के पृष्ठ २१ पर अंकित है—''मकबरे के चारों ओर सोने की रेलिंग थी (बाद में उसके स्थान पर संगमरमर की जालियाँ लगवा दी गईं) जो १६३२ तक तैयार हो गई थीं और शाहजहाँ ने मकबरे के रख-रखाव के लिए एक उपनगर की स्थापना की जिससे कि धनोपार्जन हो सके तथा आसपास की पहाड़ियों को इसलिए समतल करवा दिया कि वे उस उपनगर के विकास में बाधक सिद्ध न हों…ये विवरण विशेष महत्त्व के हैं, क्योंकि किसी अंग्रेज पर्यटक द्वारा प्रस्तुत इस समय का कोई अन्य विवरण उपलब्ध नहीं है।''

प्रसंगवशात् उपरिलिखित विवरण में जो 'पहाड़ी' शब्द आया है, वे वास्तव में राजपूत निर्माताओं द्वारा ताज की सुरक्षा के लिए बनाई गई थीं। ताज के समीप अभी भी उनमें से कुछ पहाड़ियाँ विद्यमान हैं।

यहाँ पर इन पहाड़ियों की स्थापना का उद्देश्य था कि शिलाक्षेपक यन्त्रों को निकट लाकर हिन्दू भवन पर शिलाओं की वर्षा को रोका जा सके।

---

१. दि गाइड टु दि ताज ऐट आगरा, पृष्ठ १४

इन सुरक्षात्मक पहाड़ियों के अतिरिक्त ताजप्रासाद की सुरक्षा के लिए एक अन्य सुरक्षा-सज्जा थी, वह थी परिखा। जबकि पृष्ठ भाग में स्वयं यमुना नदी परिखा का कार्य करती थी। ताजमहल के पूर्व की ओर लाल पत्थरों की दीवार के बाहर एक सूखी परिखा आज भी देखी जा सकती है।

ये सुरक्षात्मक संरचनाएँ भी यही सिद्ध करती हैं कि ताजमहल का निर्माण राजप्रासाद के रूप में हुआ था, मकबरे के रूप में नहीं।

उपर्युक्त उद्धरण का विवेचनात्मक अध्ययन आश्चर्यजनक है। कोई चाँदी के द्वारों की चर्चा करता है तो कोई मकबरे के चारों ओर सोने की रेलिंग की। यदि इनको शाहजहाँ द्वारा लगाया गया होता तो इसका कोई कारण और ऐसा उल्लेख भी नहीं कि क्यों और किसने उनको वहाँ से हटाया?

कीन अपनी पुस्तिका (हैंडबुक) के पृष्ठ १६३ पर लिखता है—''ऐसा कहा जाता है कि इसके चाँदी के दो दरवाजे थे, जिनकी लागत १ लाख २७ हजार रुपए थी।'' स्पष्ट है कि जब शाहजहाँ ने हिन्दू भवन को मकबरा बनाने के लिए हथियाया तो उसने वे द्वार निकलवाकर अपने खजाने में पिघलाने के लिए भेज दिए।

चाँदी के द्वार और सोने की रेलिंग प्रासादों में लगाए जाते हैं, मकबरों में नहीं। यह विश्वास करना कि शाहजहाँ ने अपनी पत्नी की कब्र पर लगवाए जबकि उसके अपने प्रासाद में इस प्रकार का कुछ भी नहीं था, नितान्त मूर्खता है।

यदि मुमताज़ की मृत्यु १६३० या १६३१ या १६३२ में हो गई थी तो सन् १६३२ में ठोस सोने की रेलिंग किस प्रकार लगाई जा सकती थी? मकबरे के लिए स्थान प्राप्त करना, उसकी रेखाकृति तैयार करना और उसके आधार पर नमूना तैयार करना, नींव खुदवाना, निर्माण-सामग्री को खरीदना, भवन बनाना, सोने की रेलिंग बनाने का आदेश देना, उसको यथास्थान लगवाना और उसकी सुरक्षा का प्रबन्ध करना, जिससे कि सोना चुराया न जा सके। इसमें कितने वर्ष लगेंगे? क्या यह सब एक या दो वर्ष में किया जा सकता है?

इसके अतिरिक्त हमारे पास सुनिश्चित, विवाद-रहित और स्पष्ट प्रमाण है कि ताजमहल का निर्माण कल्पित भारत-अरब शैली पर न होकर हिन्दू शिल्पशास्त्र के अनुसार हुआ है।

ताजमहल का तथा किसी हिन्दू मन्दिर का धरातल-रेखांकन उल्लेखनीय है।

इनकी अनुलम्बता और अनुप्रस्थता का प्रतिरूप विन्यास मन्दिर और राजप्रासाद में और देवता या राजा के मध्य स्थित कक्ष की अवस्थिति के अनुबन्धित निर्माण की ओर ध्यान दिया जाए। हिन्दू ताजप्रासाद में हिन्दू राजा के मयूर-सिंहासन का कक्ष मध्य में स्थित है जबकि मन्दिर के निर्माण में देवता की मूर्ति-स्थापना भी मध्य में होती है।

इसकी तीसरी विशेषता यह है कि चारों दिशाओं में प्रवेश-द्वार समरूप हैं। और तथाकथित मुस्लिम मकबरों के अग्रभाग भी ऐसे ही हैं, क्योंकि वे हथियाये गए हिन्दू राजप्रासाद या मन्दिर हैं।

ताजमहल की इस शिल्प-रेखाकृति की हिन्दू मन्दिर के साथ यह समानता पूर्वोद्धृत, महान् ब्रिटिश शिल्पशास्त्री हेवेल के इस निष्कर्ष से साम्य रखती है कि ताजमहल हिन्दू संरचना है। अतः पाठकों को इस बात में सन्देह नहीं करना चाहिए कि ताजमहल हिन्दू शिल्पशास्त्र की विशिष्टताओं के अनुरूप बना हुआ प्राचीन हिन्दू राजभवन है। बादशाहनामे में भी यह स्वीकार किया गया है कि यह गुम्बदयुक्त प्रासाद था।

सामने के उद्यान का क्षेत्रफल संगमरमर के ताजप्रासाद के संरचना-क्षेत्र से दुगुना है। यह वह उल्लेख है जिसे विंसेंट स्मिथ (अपनी पुस्तक 'अकबर दि ग्रेट मुगल' के पृष्ठ ९ पर) उद्यानवाले प्रासाद के रूप में करता है जिसमें प्रथम मुगल बादशाह बाबर की मृत्यु १५३० में अर्थात् शाहजहाँ की पत्नी (मुमताज़) की मृत्यु से एक शती पूर्व हुई थी।

इसी प्रासाद का बाबर ने अपने संस्मरणों में उल्लेख करते हुए लिखा है, "श्रेष्ठ स्तम्भों से सुसज्जित और मध्य में गुम्बद से युक्त।"

उत्कीर्ण शिला-लेख

ताजमहल-सम्बन्धी शाहजहाँई कथा की असत्यता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या होगा कि ताजमहल पर उत्कीर्ण असंख्य शिलालेखों में कहीं भी यह दावा नहीं किया गया है कि शाहजहाँ ने बनवाया।

ताजमहल पर कुरान के चौदह अध्यायों के अतिरिक्त कुछ धर्मेतर वचन भी उत्कीर्ण किए गए हैं किन्तु उनमें से किसी एक में भी ऐसा कोई संकेत अंकित नहीं है कि ताजमहल को शाहजहाँ ने बनवाया। शाहजहाँ ने ही यदि वास्तव में ताजमहल के निर्माण का आदेश दिया होता तो वह उत्कीर्ण शिलालेखों में भवन-निर्माण-सम्बन्धी अपना आद्योपान्त इतिहास अंकित करवाकर, उस भव्य मकबरे के निर्माण का श्रेय स्वयं क्यों न प्राप्त करता? यदि यह वास्तविकता होती तो क्या वह संसार के सम्मुख ऐसा सुस्पष्ट प्रमाण छोड़कर नहीं जाता कि संगमरमर और लाल पत्थर पर उत्कीर्ण उस कलाकृति का निर्माता वह था?

कीन की पुस्तक 'ए हैंडबुक फॉर विजिटर्स टु आगरा' के पृष्ठ १७०-१७४ पर ताजमहल में उत्कीर्ण शिलालेखों को उद्धृत किया गया है। कीन कहता है—"दीवारें और छत (नकली कब्रोंवाले कक्ष की) सुचारु रूप से सुसज्जित हैं और मेहराब की दीवारों पर कुरान की आयतें उत्कीर्ण हैं और उसके मध्य में जो स्थान है उसके शब्दों का अन्त इस प्रकार है, "साधारण प्राणी अमानत खाँ शीराजी द्वारा हिजरी सन् १०४८ और जहाँपनाह के शासन के १२वें वर्ष में लिखा गया" (सन् १९३९)।

जिस अमानत खाँ शिराजी को ऐसा महान् कलाकार चित्रित किया गया है जिसने ताजमहल का निर्माण किया वह और कुछ नहीं एक ऐसा साधारण उत्कीर्णक (कशीदाकार) निकला जो प्रायः बर्तन की दुकान पर बैठे अथवा गलियों में आवाज लगाते घूमते पाए जाते हैं।

शाहजहाँ की पत्नी मुमताज़, जिसके लिए कहा जाता है कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया, की नकली कब्र पर उत्कीर्ण लेख से भी कोई इस प्रकार का संकेत प्राप्त नहीं होता। कौन लिखता है—"नकली कब्र (मुमताज़ की) पर फारसी में कुरान की पुस्तक के आधार पर ईश्वर के ९९ नाम और यह साधारण स्मृति-लेख उत्कीर्ण है : 'सुन्दर कब्र अर्जुमन्दबानो बेगम जो मुमताज़ महल कहलाती थी, १०४० हिजरी में स्वर्ग सिधारी' (१६२९)।"

शाहजहाँ ने यदि अपनी पत्नी के लिए सुन्दर मकबरा बनवाया होता तो उसकी नकली कब्र पर अवश्य एवं निश्चित ही इसका कोई उल्लेख उत्कीर्ण होता। मध्ययुगीन समस्त मुस्लिम इतिहास में यह दावा किया जाता रहा है कि भारत में मुसलमान शासक अपने तथा अपने निकट सम्बन्धियों के लिए व्ययसाध्य मकबरे बनवाने में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा किया करते थे। निस्सन्देह यह दावा नितान्त असंगत और सामान्य मानव-व्यवहार के विरुद्ध है। इस पर भी इतिहासकारों के मिथ्या उल्लेखों को उनके शब्दों में ही स्वीकार कर लें तो हम उनसे पूछना चाहेंगे कि जो अपने पीछे ऐसे आश्चर्यजनक मकबरे छोड़कर जाने के लिए लालायित रहते थे तो क्या वे उन मकबरों पर अपने अधिकार का उल्लेख उत्कीर्ण कराने की इच्छा भी नहीं रखते थे।

उपरिउद्धृत उद्धरण में एक और महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि उसमें मुमताज़ की मरण तिथि १६२९ दी गई है। इससे पूर्व हमने देखा कि अन्य इतिहासकारों के अनुसार मुमताज़ की मरण-तिथि १६३० या १६३१ है। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि कोई नहीं जानता कि मुमताज़ कब मरी। विभिन्न विवरणों से जो कुछ हमें ज्ञात होता है वह यही है कि यह १६२९-१६३२ के मध्य कभी मरी होगी। एक ऐसी महिला की जिसके बारे में विश्वास किया जाता है कि वह बादशाह शाहजहाँ की आँखों का नूर थी, और जिसके लिए, जैसा कि संसार को विश्वास करने के लिए कहा जाता है, एक भव्य भवन निर्माण करने का आदेश दिया गया, उसकी मृत्यु की तिथि के विषय में चार वर्ष की अवधि का अनुमान छोड़ना कितना भद्दा है। जन-सामान्य को इस निम्नस्तरीय प्रसंग के सत्य से पृथक् रखा गया है। उनको किंवदन्ती के आधार पर लटकाया गया है। वे यह नहीं जानते कि जब हम इस विषय में सूक्ष्म विवेचन करेंगे तो सब शाहजहाँई कथाएँ कपोल-कल्पित और जालसाजी सिद्ध होकर इतिहास में विलीन हो जाएँगी। क्योंकि वह शाहजहाँ के

हरम की ५,००० औरतों में से एक थी इसलिए मुमताज़ की मृत्यु-तिथि का कोई उल्लेख कहीं उपलब्ध भी नहीं है।

मुमताज़ की नकली कब्र के ठीक नीचे भूगर्भ-कक्ष में उसकी (जैसा कि माना जाता है) वास्तविक कब्र है। कीन कहता है—"मुमताज़ की कब्र ठीक वैसी ही बनी है जैसी कि उसकी नकली कब्र।" इसका अभिप्राय है कि मुमताज़ की तथाकथित कब्र और नकली कब्र पर एकसमान लेख उत्कीर्ण हैं।

यदि यह मान भी लिया जाए कि शाहजहाँ इतना विनयशील था कि ताजमहल-निर्माण का श्रेय अपने ऊपर लेने से शरमाता था (यद्यपि वह दुराग्रही, क्रूर और अभिमानी मुगल बादशाह था) तो कम-से-कम उसकी मृत्यु के बाद अन्य लोग जब उसकी कब्र और मकबरे का लेख उत्कीर्ण करा रहे थे तब वे तो कुछ उल्लेख करवाते। किन्तु उनको भी यह सब करने का साहस नहीं हुआ। वे कैसे करते जबकि उसके समकालीनों को यह ज्ञात था कि मुमताज़ और शाहजहाँ को ऐसे भव्य हिन्दू भवन में दफनाया गया है जिसे कि जयसिंह से छीना गया था! इसलिए, हमारी दृष्टि में, शाहजहाँ की ओर से किसी प्रकार के दावे का न होना स्वाभाविक है।

शाहजहाँ की मृत्यु सन् १६६६ में अर्थात् अपनी पत्नी मुमताज़ की मृत्यु के ३६ वर्ष बाद हुई। कीन कहता है—"(शाहजहाँ की नकली कब्र पर) कुरान की आयतों के साथ फारसी में निम्नलिखित स्मृति-लेख भी अंकित है—'जहाँपनाह जिनका खिताब राजवाँ था और जो स्वर्गवासी होकर देवलोक में निवास करते हैं जो कि खुदा के प्रियजनों का निवास है, उन द्वितीय साहिब किरान बादशाह शाहजहाँ का भव्य एवं पवित्र विश्राम-स्थल है। उनका मकबरा सदा जगमगाता रहे और उनका निवास स्वर्ग में रहे। वे १०७६ हिजरी (सन् १६६६) में रजब मास की २८वीं तिथि की रात को इस नश्वर संसार से उस अनन्त संसार के लिए प्रस्थान कर गए।' "

नीचे, भूगर्भ-गृह में शाहजहाँ की कब्र पर संक्षिप्त-सा स्मृति-लेख है। उसमें लिखा है—"जहाँपनाह स्वर्गीय साहिब किरान द्वितीय बादशाह शाहजहाँ की पवित्र कब्र। उनका मकबरा सदा जगमगाता रहे १०७६," (सन् १६६६)।

शाहजहाँ ने जब से इसे हथियाया था तब से ही संगमरमर भवन के पश्चिम में एक अन्य भवन है जिसे 'मस्जिद' कहा जाता है। इसकी मेहराबों पर भी कुरान

की आयतें उत्कीर्ण हैं। इसके अतिरिक्त कौन कहता है, "वहाँ अन्य अनेक ऊपरी भाग हैं जिन पर 'या काफी (हे सर्वसम्पन्न!) और अल्लाह (परमेश्वर)' उत्कीर्ण है।"

इस प्रकार उन अनेक उद्धरणों में जिन्हें हमने उद्धृत किया है, कहीं भी इस प्रकार का उल्लेख नहीं है कि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया था। क्या यह कभी विश्वास किया जा सकता है कि जिस शासक ने समस्त भवन, नकली तथा असली कब्रों पर इतना सबकुछ आश्चर्यजनक रूप से उत्कीर्ण कराया और उसने इस सबके सम्बन्ध में स्वयं कोई श्रेय नहीं लेना चाहा? इस प्रकार के उल्लेख का न होना अन्य प्रमाणों के साथ जो हमने यहाँ प्रस्तुत किए हैं, इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि शाहजहाँ ने अपनी पत्नी को दफनाने के लिए हिन्दू भवन को हथियाया और उसने किसी प्रकार का निर्माण नहीं किया। ताजमहल पर उत्कीर्ण सभी शिलालेख किसी अन्य की सम्पत्ति पर उत्कीर्ण तथा क्षुद्र और सारहीन हैं। वे सभी उत्कीर्ण शिलालेख इंगित करते हैं कि ताजमहल शाहजहाँ की सम्पत्ति नहीं है।

ताजमहल सम्भावित मन्दिर प्रासाद

ताज भवन जिसे शाहजहाँ का अपना इतिहास (बादशाहनामा) हिन्दू भवन स्वीकार करता है, वह प्राचीन हिन्दू मन्दिर हो सकता है। हमें आश्चर्य होता है कि मुमताज़ की नकली कब्र का आकार-प्रकार क्या निश्चित किया जाए। यह न तो १७वीं शती की मुस्लिम महिला की ऊँचाई की है और न ही यह मुसलमानी कब्र की आनुपातिक ऊँचाई की है। हमारा सुझाव है कि मुमताज़ की नकली कब्र की ऊँचाई निर्धारित करते समय ताजमहल में प्रतिष्ठित हिन्दू शिवलिंग की ऊँचाई मुख्य आधार बन सकती है। तब यह माना जा सकता है कि नकली कब्र के अन्दर शिवलिंग को दबाया गया है तथा वास्तविक कब्र के अन्दर मुमताज़ का शव दफन है या नहीं यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि शव सदा भूमि में दफनाए जाते हैं, दो मंजिल ऊँचे संगमरमर के फर्श पर नहीं। पिछले अध्यायों में हमने स्पष्ट किया है कि किस प्रकार इसका निचला भाग हिन्दू मन्दिर से समता करता है। एक शिलालेख, जिसे बटेश्वर का शिलालेख नाम से जाना जाता है, जो लखनऊ (उत्तर प्रदेश की राजधानी) संग्रहालय में सुरक्षित है, इंगित करता है कि सम्भवतया ताजमहल लगभग सन् ११५५ में निर्मित शिव-मन्दिर है।

उक्त शिलालेख में संस्कृत भाषा के ३४ श्लोक हैं जिनमें से श्लोक २५, २६ और ३४ जो कि हमारे विषय से सम्बन्धित हैं, नीचे उद्धृत किए जा रहे हैं—

प्रासादो वैष्णवस्तेन निर्मितोऽन्तर्वहन्हरिः।
मूर्ध्नि स्पृशति यो नित्यं पदमस्यैव मध्यमम्॥२५॥
अकारयच्च स्फटिकावदातमसाविदं मन्दिरमिन्दुमौलेः।
न जातु यस्मिन्निवसन्सदेवः कैलाशवासाय चकार चेतः॥२६॥
पक्ष त्र्यक्ष मुखादित्य संख्ये विक्रमवत्सरे।
आश्विनशुक्ल पंचम्यां वासरे वासवे शितुः॥३४॥

इनका अभिप्राय है—

"उस (राजा परमार्दिदेव) ने एक प्रासाद बनवाया जिसके भीतर भगवान् विष्णु की प्रतिमा थी, जिसके चरणों में वह अपना मस्तक नवाता था।

"उसी प्रकार उसने, मस्तक पर जिसके चन्द्र सुशोभित हैं ऐसे भगवान् शिव का स्फटिक का ऐसा सुन्दर मन्दिर बनवाया जिसमें प्रतिष्ठित होने पर भगवान् शिव का कैलास पर जाने को भी मन नहीं करता था।

"यह शिलालेख रविवार, आश्विन शुक्ला पंचमी १२१२ विक्रमी सम्वत् को लिखा गया।"

उपरिलिखित उद्धरण डी. जी. काले की पुस्तक[१] खर्जुरवाहक अर्थात् वर्तमान खजुराहो तथा ऐपिग्राफिका इण्डिका के भाग १, पृष्ठ २७०-२७४ पर भी देखा जा सकता है।

अपनी पुस्तक के पृष्ठ १२४ पर श्री काले लिखते हैं—"उद्धृत शिलालेख आगरा के बटेश्वर गाँव से प्राप्त हुआ और वर्तमान में वह लखनऊ संग्रहालय में है। यह राजा परमार्दिदेव का विक्रम संवत् १२१२, आश्विन मास की शुक्लपक्ष की पंचमी रविवार का है। इसमें कुल ३४ श्लोक हैं जिनमें चन्द्रात्रेय (राज) वंश का मूल और उसके मुख्य-मुख्य शासकों का वर्णन है। यह शिलालेख बटेश्वर में एक मिट्टी के स्तूप में दबा हुआ पाया गया। बाद में इसे जनरल कनिंघम ने लखनऊ संग्रहालय में जमा करा दिया, जहाँ यह आज भी है। दो भव्य स्फटिक मन्दिर जिन्हें परमार्दिदेव ने बनवाया—एक भवन विष्णु का तथा दूसरा भगवान् शिव का—बाद में मुस्लिम आक्रमण के समय भ्रष्ट कर दिए गए। किसी चतुर (दूरदर्शी) ने, मंदिरों से सम्बन्धित इस शिलालेख को मिट्टी के ढेर में दबा दिया। यह वर्षों तक दबा रहा जबकि सन् १९०० में, उत्खनन के समय जनरल कनिंघम को यह प्राप्त हुआ।"

बटेश्वर जो कि अब आगरा नगर का ही एक भाग है, ताजमहल से लगभग चार मील की दूरी पर है।

श्री काले, जिनकी पुस्तक का उद्धरण हमने ऊपर दिया है, विशेषतया लिखते

---

१. एस. डी. काले तथा एम. डी. काले द्वारा प्रकाशित। मूल्य २.५० और एम. डी. काले, एडवोकेट, छतरपुर, मध्य प्रदेश से प्राप्य।

हैं कि वह स्थान जहाँ वह शिलालेख पाया गया, ऐसा लगता है कि किसी दूरदर्शी व्यक्ति ने बड़ी सावधानी से और जानबूझकर, ध्वंसकारी मुस्लिम आक्रमण के समय दबा दिया।

यद्यपि विद्वान् लेखक श्री काले ने दोनों भवनों को, जिनका उल्लेख शिलालेख में है, मन्दिर कहा है, हम उनको 'विष्णोः प्रासादः' राजा के प्रासाद के रूप में कहना चाहेंगे, क्योंकि (विष्णु राजा का द्योतक है और) यदि शिलालेख का अभिप्राय विष्णु मन्दिर ही होता तो, यह कहने की आवश्यकता न होती, जैसा कि इसमें कहा गया है, कि भवन के अन्दर भगवान विष्णु की प्रतिमा थी। अस्तु, यह साधारण-सी बात है।

इस शिलालेख का महत्त्व इस बात से और भी बढ़ जाता है जब यह आज से ८१८ वर्ष पूर्व आगरा में स्फटिक श्वेत पत्थर के दो भवनों के निर्माण का उल्लेख करता है। जनरल कनिंघम द्वारा बनाई गई चन्द्रात्रेय (या चन्देलों) की राजवंशावलियों को श्री काले ने अपनी पुस्तक के पृष्ठ १४०-१४१ पर उद्धृत किया है जिसमें परमार्दिदेव को सन् ११६५ या ११६७ का बताया है।

प्रसंगवशात्, यह शिलालेख बड़ी प्रभावपूर्ण रीति से उन अविवेकपूर्ण तथा अन्धविश्वासपूर्वक कथित कथनों को मिथ्या सिद्ध करता है जो यह कहते हैं कि भारत में संगमरमर के पत्थरों से भवन-निर्माण का कार्य मुसलमानों ने ही आरम्भ किया था। हम अपनी अन्य दो पुस्तकों में पहले ही यह सिद्ध कर चुके हैं कि भारत के मुस्लिम शासकों ने एक भी भवन, नहर, दुर्ग, प्रासाद, मकबरा या मस्जिद चाहे वह लाल पत्थर का हो अथवा संगमरमर का, नहीं बनवाया। उन्होंने पूर्ववर्ती हिन्दू भवनों का रूप-परिवर्तन कर उनका दुरुपयोग किया।

हमारी दृष्टि से बटेश्वर के शिलालेख में जिन दो भवनों का उल्लेख है वे अपनी स्फटिकीय भव्यता सहित अभी भी आगरा में विद्यमान हैं। वे हैं तथाकथित एतमादुद्दौला का मकबरा और ताजमहल।

जिसका उल्लेख शिलालेख में राजा के प्रासाद के रूप में है वह वर्तमान एतमादुद्दौला का मकबरा है। चन्द्रमौलीश्वर मन्दिर ताजमहल है।

भारतीय इतिहास के विद्वानों में सामान्यतया यह प्रवृत्ति रही है कि वे इस बात पर सरलता से विश्वास करते रहे कि बिना तदनुरूप प्रासादों के भी मुस्लिम मकबरों और मस्जिदों का भारत में प्राचुर्य हो सकता है। उदाहरणार्थ, जिसे सगर्व

एतमादुद्दौला का मकबरा कहा जाता है, तब तक उसका कोई अभिप्राय नहीं जब तक कि इतिहासकार हमें यह न बता दें कि वह प्रतापी दरबारी जीवित था तो वह किस प्रासाद में रहता था। हमारा स्पष्टीकरण यह है कि एतमादुद्दौला, उसी भवन में रहा करता था जिसमें कि उसको दफन बताया जाता है। और वह भवन हथियाया हुआ हिन्दू भवन था, स्पष्टतया यही वह भवन है जिसे बटेश्वर शिलालेख में राजा का प्रासाद कहा गया है।

शिव (चन्द्रमौलीश्वर) मन्दिर स्पष्टतया निम्नलिखित कारणों से ताजमहल है :

१. जैसाकि शिलालेख में अंकित है, यह स्फटिक श्वेत संगमरमर का है।
२. इसके शिखर कलश पर त्रिशूल है, जो केवल चन्द्रमौलीश्वर का ही चिह्न है।
३. उस भवन को इतना सौन्दर्यशील कहा गया है कि भगवान् चन्द्रमौलीश्वर (शिव) ने इसमें निवास करने के उपरान्त फिर हिमालय में कैलास पर जाने का विचार ही नहीं किया।
४. हमने इसी पुस्तक में अन्यत्र लिखा है कि ताजमहल के उद्यान में वे पेड़-पौधे थे जो हिन्दुओं में पवित्र माने जाते हैं। उनमें बेल और हरसिंगार हैं जिनके पत्ते और पुष्प भगवान् शिव की पूजा के लिए आवश्यक समझे जाते हैं।
५. ताजमहल का केन्द्रीय कक्ष जिसमें बादशाह और उसकी पत्नी अर्जुमन्दबानो की नकली कब्रें बताई जाती हैं, उसके चारों ओर दस चतुर्भुजीय कक्ष हैं जो भक्तों के परिक्रमा-मार्ग का काम देते थे जैसी कि हिन्दू रीति थी।
६. ज्यों ही भक्त परिक्रमा करते हुए उन कमरों से निकलता है तो उन कमरों के गवाक्षों से उस अष्टकोणीय कक्ष का दृश्य दिखाई देता है जहाँ भगवान् चन्द्रमौलीश्वर की प्रतिमा प्रतिस्थापित रही होगी।
७. ताजमहल के केन्द्रीय कक्ष का ऊँचा गुम्बद अपनी प्रतिनिनादित करनेवाली विशिष्टता के कारण उस आह्लादकारी तुमुल नाद के लिए परमोपयुक्त था जो भगवान् शिवजी की पूजा के लिए उस समय आवश्यक होता है जब समझा जाता है कि वे मँजीरों, नगाड़ों तथा

घंटियों के महान् कोलाहल में ताण्डव नृत्य करते हैं।

८. शिव मन्दिरों में ऊँचे गुम्बद होना इसलिए भी सामान्य बात है कि शिवलिंग पर अनवरत जल की एक धार-सी गिराने के लिए जल-कलश लटकाया जा सके।

९. ताजमहल की सज्जा में वर्णित वस्तुओं के रूप में चाँदी के द्वार और सोने के जंगलों का आज भी विद्यमान हिन्दू मन्दिरों में होना सामान्य बात है। यदि सोने के जंगले मुमताज़ के मकबरे से बाद में निकाल लिए गए होते तो उसके चिह्न-रूप में छिद्र अवश्य दिखाई देते। किन्तु ऐसे छिद्र वहाँ नहीं हैं। इसका अभिप्राय यह है कि शाहजहाँ ने प्राचीन शिव मन्दिर के उन सोने के जंगलों को मन्दिर का मकबरे के रूप में प्रयोग करने से पूर्व निकलवाकर अपने कोष में भिजवा दिया था।

१०. आज भी ताजमहल के मार्गदर्शक मकबरे के ऊँचे गुम्बद से अन्दर की कब्र पर वर्षा की बूँद-बूँद कर गिरने की परम्परा की चर्चा करते हैं। स्पष्टतया यह शिवलिंग पर धार के रूप में जल चढ़ाने की प्राचीन परम्परा की अवशिष्ट स्मृति है।

११. टैवर्नियर ताजमहल परिसर में छः आँगनों का उल्लेख करता है, जहाँ बाजार लगा करता था। यह सर्वविदित है कि मन्दिर के चारों ओर बाजार और मेलों का लगना परम्परागत है जो कि हिन्दू जीवन का प्रमुख लक्षण है।

१२. ताजमहल के संगमरमर के मुख्य द्वार की मेहराबों के ऊपरी भाग पर भगवान शिव का अनन्य अस्त्र त्रिशूल अंकित है। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि शैव हिन्दू अपने मस्तक पर चन्दन धारण करते हैं, यह लाल और श्वेत रेखाओं से बना है। इसका मुख्य द्वार पर गुम्बद की महराबों के ऊपरी भाग पर अंकित होना सिद्ध करता है कि यह निर्भ्रान्त रूप में शिवमन्दिर है और, इसीलिए ताजमहल मूलतया निश्चित ही शिवमन्दिर है।

१३. संगमरमर भवन के सम्मुख खड़े होकर जब हम उसकी ओर दृष्टिपात करते हैं तो हमें दिखाई देता है कि ताजमहल के दाईं ओर जो लाल पत्थर का भवन है उसके ऊपरी गुंबद पर भी पूर्ण त्रिशूल का चिह्न

अंकित है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि इसका मूल हिन्दू ही था, क्योंकि हिन्दू शिल्पकला में यह परम्परा रही है कि प्रत्येक हिन्दू भवन में कहीं-न-कहीं उपयुक्त स्थान पर त्रिशूल के अंकन की व्यवस्था अवश्य होती है। जहाँ तक ताजमहल का सम्बन्ध है उसमें उसी अनुपात और प्रमाण में त्रिशूल का अंकन हुआ है जो कि शिवमन्दिर बनाने में प्रयुक्त किया जाता है।

ऐसा कहा जाता है कि ताजमहल के गुम्बद पर जो स्वर्णिम त्रिशूल कलश है उस पर अरबी लिपि में 'अल्लाहो अकबर' अर्थात् 'ईश्वर महान् है' अंकित है। शाहजहाँ द्वारा हिन्दू मन्दिर को मुसलमानी प्रयोग के लिए हथियाये जाने के उपरान्त ही त्रिशूल पर ये शब्द अंकित कराये गए हैं। यह इस बात से सिद्ध होता है कि दाहिनी ओर लाल पत्थर के आँगन में जो त्रिशूल पर रेखाचित्र है उस पर यह अंकित नहीं है।

संगमरमर के चबूतरे के पीछे लाल पत्थर के कगार के नीचे, नदी की ओर उन्मुख विशाल एवं सज्जित कक्षों की पंक्ति है और उन कक्षों के सम्मुख एक लम्बा बरामदा है। यदि ताजमहल इस्लामी मकबरा होता तो भूगर्भीय कक्षों में स्थित कब्रों के नीचे भी इतने सुसज्जित कमरे एवं बरामदे के होने का कोई प्रयोजन नहीं था। मुमताज़ का शव, यदि वह ताजमहल में ही दफन है तो, न तो निचली मंजिल पर अष्टकोणीय कक्ष में है और न ही भूगर्भीय कक्ष में।

तथाकथित कब्र के ठीक नीचे के कक्ष जिन्हें ईंट और गारे से यों ही बेतरतीब पाट दिया गया है, सम्भवतया उनमें हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ और शिलालेख रखे हैं। और संगमरमर के चबूतरे के पूर्व और पश्चिम में लाल पत्थर के कगार के नीचे जो बरामदे हैं वे भी बन्द कर दिए गए प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार वे ऊँचे द्वार और गवाक्ष भी, जो कि उन कक्षों की पंक्ति में लाल पत्थर के कगार के नीचे नदी की ओर उन्मुख हैं, बड़ी निर्दयता से बन्द कर दिये गये हैं। यदि इन सबको बन्द करनेवाले मलबे को निकलवाकर उन सबकी सफाई की जाए तो ताजमहल के इन भूगर्भीय कक्षों का वास्तविक सौंदर्य प्रकट हो और यमुना नदी से आनेवाला शीतल वायु भी प्रवाहित होने लगे तथा सूर्य-

किरणें भी उसको प्रकाशमान कर सकें। तब अनेक रंगों से सज्जित इन कक्षों की चित्रकारी एक बार दर्शकों को उसी प्रकार मोहित करने लगी जिस प्रकार शाहजहाँ द्वारा इसे विकृत किए जाने से पूर्व मोहित किया करती थी। इस प्रकार यह भी सम्भव है कि संगमरमर के चबूतरे से यमुना नदी की सतह पर नीचे की ओर चार मंजिलें और भी हों।

१४. ताजमहल शब्द का फारसी भाषा से दूर का भी नाता नहीं है। यह संस्कृत के 'तेज-महा-आलय' शब्द, जिसका अभिप्राय है 'देदीप्यमान मन्दिर', का अपभ्रंश रूप है। यह देदीप्यमान मन्दिर इसीलिए कहा जाता था, क्योंकि सूर्य एवं चन्द्र के प्रकाश में यह अद्‌भुत प्रभा विकीर्ण करता था। इस नाम का इससे यों भी सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि भगवान् शिव के तृतीय नेत्र से तेज की ज्वाला प्रभासित होती थी। गहन परीक्षण से यह प्रचलित अनुमान कि मुमताज़ महल के नाम पर इसका नाम ताजमहल पड़ा, निराधार सिद्ध होता है। प्रथमत:, शाहजहाँ के दरबारी इतिहास में, जो महिला यहाँ दफन की गई समझी जाती है उसका नाम मुमताज़ुल जमानी है न कि मुमताज़ महल। द्वितीयत:, प्रमुख उपसर्ग 'मुम' को भवन के नामकरण के लिए त्याग कर मात्र निरर्थक 'ताजमहल' नहीं रखा जा सकता। तृतीयत:, यदि कोई 'ताजमहल' शब्द से किसी प्रकार का अर्थ भी निकालना चाहे तो वह 'राजकीय आवास' ही निकालेगा, मकबरा नहीं। चतुर्थत:, समस्त मुस्लिम कथानकों और इतिहास में कहीं भी 'ताजमहल' का पर्यायवाची शब्द उपलब्ध नहीं है। यदि 'ताजमहल' शब्द सामान्यतया प्रचलित होता तो संसार के अन्य भागों में मुसलमानी मकबरे या प्रासादों के लिए कहीं-न-कहीं इसका उल्लेख अवश्य उपलब्ध होता।

१५. बटेश्वर शिलालेख हमको कम-से-कम ८१८ वर्ष से आज तक के ताजमहल के इतिहास को खोजने में सहायता देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ताजमहल उर्फ तेज-महा-आलय ११५५ में मूलतया शिवमन्दिर था। शिव-प्रतिमा की स्थापना आश्विन शुक्ला पंचमी को रविवार के दिन उसी वर्ष की गई थी। सन् १२०६ के बाद कभी जब मूर्तिभंजक विदेशी मुसलमान शासन दिल्ली में स्थापित हुआ उस समय इस मन्दिर

पर अधिकार कर लिया गया तथा उसमें स्थापित प्रतिमाओं को फेंक दिया गया और भवन का प्रासाद के रूप में दुरुपयोग किया गया। हम इस निष्कर्ष पर प्रथम मुगल बादशाह बाबर के अपने संस्मरणों में ३७१ (१५२६) वर्ष बाद यह संकेत करने, कि उसने इसे अपने पूर्ववर्ती इब्राहीम लोदी से छीना था, के आधार पर पहुँचे हैं। जब बाबर के पुत्र हुमायूँ की पराजय पर पराजय होती रही तो सन् १५३८ के आसपास ताजमहल अर्थात् तेज-महा-आलय को हिन्दुओं ने पुनः जीत लिया। हम इस निष्कर्ष पर इस आधार पर पहुँचे हैं, क्योंकि ५ नवम्बर, १५५३ को हुमायूँ के पुत्र अकबर ने दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी को पानीपत के युद्ध में हिन्दू योद्धा हेमू को पराजित कर, अपने अधिकार में कर लिया किन्तु अकबर ने ताजमहल से जयपुर के राजघराने को अपदस्थ इसलिए नहीं किया, क्योंकि उसके हिन्दू समर्थकों में जयपुर राजघराना प्रबल था और उसके वंशज भगवानदास और मानसिंह उसके अत्यन्त विश्वस्त सेनापति थे। वे मुगल शासक के नातेदार भी थे। शाहजहाँ के इतिहास से यह स्पष्ट है कि हुमायूँ की पराजय के बाद ताजमहल जयपुर राजघराने के अधिकार में था और वह स्वीकार करता है कि ताजमहल को जयपुर राजवंश के तत्कालीन उत्तराधिकारी जयसिंह से हथियाया गया। इस प्रकार हमारे पास सन् ११५५ से अब तक का क्रमिक एवं सुसंगत उल्लेख प्राप्त होता है। अपने आठ सौ अठारह वर्ष के काल में ताजमहल को मूलतया शिव मन्दिर के रूप में बनाया गया और वह सौ वर्ष तक इसी रूप में विद्यमान रहा। उसके बाद लगभग ३०० वर्ष तक इसका प्रासाद के रूप में दुरुपयोग किया गया किन्तु इसे पुनः मन्दिर के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। सन् १६३० से आगे यह देदीप्यमान भवन (तेज-महा-आलय) दफ्नगाह के परिवर्तित रूप में स्थिर है।

१६. त्रिशूल-संयुत कलश के अतिरिक्त भी वहाँ इसके हिन्दू मूल के होने के अन्य प्रमाण—यथा स्वस्तिक, कमल और देवनागरी लिपि में अंकित पवित्र हिन्दू मन्त्र 'ॐ' भी उपलब्ध हैं।

ताजमहल के दर्शक उसकी संगमरमर की भीतरी दीवारों पर फूलों की

नक्काशी में 'ॐ' अक्षर उभरा हुआ देख सकते हैं। भूगर्भ में उतरनेवाली सीढ़ियों के शिखर पर खड़े होकर (जिन्हें वास्तविक कब्रें कहते हैं) देखने से मकबरे की दीवारों पर गर्दन तक की ऊँचाई पर कोई भी उस गुप्त पवित्र हिन्दू अक्षर 'ॐ' को संगमरमर के नक्काशे हुए फूलों की प्रतिकृति में देख सकता है।

मकबरे के चारों ओर लगे जालीदार कठहरे के किनारों पर अंकित लाल कमल भी देखा जा सकता है।

'ॐ' अक्षर, त्रिशूल और संगमरमर के चबूतरे के नीचे कक्षों की पंक्तियों को देखते हुए अनुसन्धाता विचार कर सकते हैं कि मुसलमानों के अधिकार में आने से पूर्व ताजमहल कहीं किन्हीं महान् शैव हिन्दू तांत्रिक पंथ के अनुयायियों का केन्द्र तो नहीं था। जाट समुदाय जिसका आगरा क्षेत्र में बाहुल्य है, शिव के तृतीय नेत्र से विकसित होनेवाली ज्योति की आराधना के लिए परम्परागत रूप से तेज मन्दिरों की स्थापना के लिए प्रसिद्ध है।

जब कोई भूगर्भस्थ तथाकथित कब्रों को देखने के लिए उन सीढ़ियों से नीचे उतरता है तो सात सीढ़ियाँ उतरने के बाद उसे दोनों ओर दीवारों पर दो महराब दिखाई देती हैं। यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि दाईं ओर की महराब को संगमरमर के विषम शिलाखण्डों से पाट दिया गया है। कहने का अभिप्राय है कि जिस आकार-प्रकार के शिलाखण्ड दाईं ओर लगे हैं बाईं ओर वैसे नहीं हैं। यह इस बात का संकेत है कि संगमरमर के चबूतरे के नीचे स्थित, जिसके चारों ओर तथाकथित कब्रें हैं, उन कमरों की ओर जाने के लिए ये गलियारे शाहजहाँ ने उस समय बन्द करवा दिए जब उसने ताज मन्दिर को इस्लामी कब्रगाह में परिवर्तित करने के लिए उसी प्रकार जिस प्रकार कि फतेहपुर सीकरी का भवन समूह और जिन्हें आजकल भ्रमवशात् अकबर, हुमायूँ, सफदरजंग और अन्य अनेकों के मकबरे कहा जाता है, हथिया लिया था।

वास्तुविद्या के छात्र और विद्वान्, इसलिए तेज-महा-आलय अर्थात् ताजमहल को प्राचीन हिन्दू मन्दिर निर्माण कला के 'उत्तम पुष्प' के रूप में देखें और अध्ययन करें न कि मुस्लिम भवन-निर्माण कला के रूप में। मुस्लिम, भवन-निर्माण-कला, कम-से-कम भारत में तो कहीं भी अस्तित्व में नहीं है। सभी मध्ययुगीन तथाकथित मुस्लिम मकबरे और मस्जिद प्राचीन हिन्दू मन्दिर और प्रासाद हैं। ताजमहल इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है कि किस प्रकार सारे संसार को

तीन शताब्दियों तक यह विश्वास करने के लिए भ्रम और धोखे में रखा गया कि ताजमहल का निर्माण मकबरे के रूप में किया गया था। आमेर (वर्तमान जयपुर) के किले के भीतर विद्यमान काली (भवानी) मन्दिर और आगरा के तेज महालय के संगमरमर और नक्काशी की सजावट में नितान्त सादृश्य है, जो इस बात का और भी प्रमाण है कि ताजमहल (तेज-महा-आलय) को पहले प्रासाद और फिर मकबरे में परिवर्तित करने से पूर्व वह हिन्दू मन्दिर था। विगत ३४४ वर्ष से मूल ताजमहल शिव मन्दिर को मुसलमानी बेगम के स्मारक का खेल खेलना पड़ रहा है। कौन जानता है! हो सकता है कि भाग्य फिर पलटा खाए और प्रगति-उन्मुख भारत के हाथों ताजमहल पुनः अपने हिन्दू शिव मन्दिर के मूल गौरव को प्राप्त करे।

ताजमहल कदाचित् प्राचीन हिन्दू नगर का केन्द्रीय मन्दिर तेज-महा-आलय होगा इसकी पुष्टि कीन की पुस्तक (हैंडबुक) के पृष्ठ १७९ पर होती है। वह कहता है—"अकबर से भी शताब्दियों पूर्व प्राचीन आगरा नगर की दीवार पर ताजगंज (नामक स्थान पर) एक कलन्दर दरवाजा था, जिसे उस दीवार का प्रवेश-द्वार माना जाता है।" यह विवरण हमारे इस कथन की पुष्टि करता है कि ताजमहल के आसपास का क्षेत्र आगरा नगर का अत्यन्त प्राचीन भाग है। आगरा के इस भाग में अपना शिव मन्दिर था जो तेज-महा-आलय कहलाता था। जैसा कि प्राचीन तथा मध्ययुगीन भारत में प्रचलित था, यह मंदिर नगर की दीवार से सटा हुआ था। वास्तव में कलन्दर दरवाजा किसी संस्कृत नाम का मुस्लिम अपभ्रंश है जो या तो किसी और द्वार का या फिर, जो आज ताजगंज दरवाजा कहलाता है, जो ताजमहल की ओर जाता है उसका ही नाम है। वास्तव में हमारी दृष्टि में प्राचीन समय से ही प्रमुख प्रवेश ताजंगज द्वार से ही होता था। यह विशाल कोष्ठ-द्वार वहाँ अभी विद्यमान है।

ताजमहल की ही भाँति असंख्य प्राचीन और मध्ययुगीन भारत के हिन्दू भवन मुसलमानों के अधिकार में होने के कारण उन्हें मूल रूप से मुस्लिम निर्मित मकबरे, मस्जिद और दुर्ग बतलाया गया तथा उन पर झूठी नक्काशी की गई। इस कपटजाल का अनजाने में ही अमेरिकन पर्यटक बेयर्ड टेलर द्वारा पर्दाफाश हो गया। कीन की पुस्तक (हैंडबुक) के पृष्ठ १७७ पर उसका उद्धरण उल्लिखित है। टेलर कहता है—"मुझे केवल एक इसी तथ्य से आश्चर्य होता है कि जहाँ मुसलमानी

साम्राज्य का केन्द्र था वहाँ तो मुस्लिम कला कहीं-कहीं—वह भी बहुत कम मात्रा में दिखाई देती है, किन्तु इसके विपरीत और बहुत दूर सीमान्तों पर (अर्थात् स्पेन और भारत में) वह बड़ी तीव्रता से अपने चरम उत्सर्ग पर पहुँच गई है।''

टेलर महोदय जो कहना चाहते हैं उसका अभिप्राय है कि स्पेन और भारत जैसे दूरस्थ देशों में मुस्लिम आक्रमणकारियों ने प्रत्यक्षत: विशाल एवं भव्य स्मारक बनवाए किन्तु सीरिया, इराक और अरब जैसे अपने ही देशों में वे इस प्रकार की कला का बहुत ही कम प्रदर्शन कर पाए।

हमें टेलर और तत्सम सभी सरलहृदय व्यक्तियों पर दया आती है। उन्हें बुरी तरह से धोखा दिया गया है। स्पेन और भारत जैसे देशों में जिन भवनों के विषय में उन्हें विश्वास करने को कहा जाता है कि वे मुस्लिम भवन हैं, वे किंचिन्मात्र भी मुस्लिम संरचनाएँ नहीं हैं। वे सभी एतद्देशीय शासकों द्वारा मुसलमानी शासन से पूर्व बनवाए गए भवन हैं जो कि आक्रमण के समय हथिया लिये गए थे। उन्हें मुसलमान विजेताओं ने केवल अपनी इच्छानुसार तोड़ा-मरोड़ा और आडम्बरयुक्त आवरणों तथा झूठे इतिहासों के माध्यम से उन्हें कपटपूर्ण इस्लामी निर्माण कहकर प्रस्तुत किया। हमारी यह खोज स्पेन को उसके प्राचीन भवनों को मुसलमानी न मानने में सहायक होगी।

सूचना के रूप में हम इतना और कहना चाहेंगे कि दिल्ली की तथाकथित कुतुबमीनार से ताजमहल कुछ थोड़ा ऊँचा है। अपनी पुस्तक के पृष्ठ १७४ पर कीन लिखता है कि मुख्य गुम्बद के उद्यान के समतल तथा त्रिशूल कलश शिखर की दूरी (ऊँचाई) २४३.५ फुट है जबकि दिल्ली की तथाकथित कुतुबमीनार २३८ फुट और एक इंच है। क्योंकि पर्यटक ताजमहल के त्रिशूल कलश शिखर तक पहुँचने में असमर्थ रहते हैं और वे उससे बहुत नीचे होते हैं इसलिए वे उसकी कलशयुक्त शिखर तक की पूर्ण ऊँचाई समझने में असमर्थ रहते हैं।

''मुख्य गुम्बद के शिखर लौह छड़ पर प्रारम्भ में भवन का जीर्णोद्धार करने वाले कुछ व्यक्तियों के नाम खुदे हुए हैं।'' कतिपय अंग्रेजों के नाम सहित।

इस प्रकार लौह छड़ पर भी शाहजहाँ की ओर से किसी प्रकार का दावा अंकित नहीं है।

●

प्रख्यात मयूर-सिंहासन हिन्दू कलाकृति

हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं कि ताज़ हिन्दू प्रासाद का भूगर्भ-कक्ष और पहली मंजिल का केन्द्रीय कक्ष किस प्रकार अत्यधिक सुसज्जित थे। पहली मंजिल के कक्ष में चाँदी के द्वार, सोने की रेलिंग और एक बरामदा जिसे संगमरमर की रत्नजड़ित जाली से ढका गया था, ऐसे बरामदे में क्या होगा? निश्चित ही इसमें भी वैसी ही अत्यधिक आकर्षक वस्तु होगी। स्वर्णिम चौखटा यों ही साधारण चित्र धारण नहीं करता। उसी प्रकार चमकदार पहली मंजिल जिसमें मूल्यवान् धातु और बहुमूल्य रत्न जड़ित हों और ऐसी आकर्षक सज्जा जो कि हिन्दू मयूर-सिंहासन के गौरव के अनुरूप हो। हम इस निष्कर्ष पर इस कारण पहुँचते हैं क्योंकि ताजमहल और मयूर-सिंहासन दोनों ही लगभग एक साथ ही शाहजहाँ शासन के कल्पित लेखे-जोखे से अंकित हैं।

मध्ययुगीन धर्मान्ध मुस्लिम शासक, उसमें जो भी अधिक धर्मान्ध मौलवियों से घिरा हुआ हो वह मयूर-सिंहासन के निर्माण का आदेश नहीं दे सकता। अपने दशाब्दियों के भारत में शासन की अवधि में उनका एक उद्देश्य था मूर्ति-भंजन न कि मूर्ति-निर्माण।

वास्तव में हिन्दू ताजमहल को अपने अधिकार में लेने का शाहजहाँ का केवल यही उद्देश्य नहीं था, एक शक्तिशाली और समृद्ध गृहस्वामी को गृहविहीन कर दिया जाए और ताजमहल की अपार सम्पत्ति को हथियाकर स्वयं समृद्ध बन जाए। ताजमहल को हथियाने के बाद शाहजहाँ ने उसके चाँदी के द्वार, सोने के खम्भे उखड़वा दिए, सुन्दर संगमरमर की रत्नजड़ित जालियों में से रत्नों को निकलवा दिया (अब उसमें केवल छिद्र ही दिखाई देते हैं) और सर्वाधिक प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन को उसने अपने अधिकार में कर लिया।

मयूर-सिंहासन केवल किसी हिन्दू प्रासाद का ही सज्जा-उपकरण हो सकता है, क्योंकि परम्परा से हिन्दू सिंहासनों में किसी-न-किसी सुन्दर पक्षी अथवा पशु की आकृति अनिवार्य रूप से बनाई जाती रही है। हिन्दू पारिभाषिक शब्दावली के अनुसार राजा के आसन को 'सिंहासन' कहा जाता है।

हिन्दू देवी-देवता और राजाओं के सिंहासनों पर उनके प्रिय पशु-पक्षी की आकृति अंकित होती थी। हिन्दू पुराणों में गरुड़, सिंह, व्याघ्र, मयूर तथा अन्य अनेक पशु और पक्षियों का सम्बन्ध विभिन्न देवी-देवताओं के सिंहासनों या उनके वाहनों से स्थापित किया जाता है। इसके विपरीत मुस्लिम धार्मिक परम्परा में किसी भी प्रकार की आकृति और प्रतिमा-निर्माण का सर्वथा निषेध किया गया है। इन सब पर विचार करते हुए इतिहास के गहन अध्येता को यह अनुमान लगाना कठिन नहीं होगा कि शाहजहाँ के आदेशानुसार मयूर-सिंहासन बनाए जाने की अतिरंजित कल्पना शाहजहाँ के निर्माण-कार्यों में चालाकी से केवल यह छिपाने के लिए जोड़ दी गई है कि ताजमहल को उसके स्वामी जयसिंह से हथियाने के बाद शीघ्र ही शाहजहाँ ने हिन्दू मयूर-सिंहासन भी उस राजभवन से हटवाकर अपने अधिकार में ले लिया था।

ऐसा प्रतीत होता है कि सुसज्जित सिंहासन के चारों ओर मूल्यवान् मोतियों की लड़ियाँ जड़ी हुई थीं और इस पर मूल्यवान् छत्र था। ताजप्रासाद को इस प्रकार की असीम सम्पत्ति से नग्न करने के लिए शाहजहाँ ने अपने कोष को रत्नागार बना दिया और मात्र पत्थरों का भवन मुमताज़ तथा हरम की अन्य बेगमों को दफनाने के लिए छोड़ दिया।

वह मयूर-सिंहासन कालान्तर में मुस्लिम आक्रमणकर्ता नादिरशाह फारस ले गया, जो अब नष्ट हो गया है। उसको तोड़कर या तो आपस में बाँट लिया गया या लूट लिया गया, क्योंकि मूर्तिभंजक मुसलमानों की धर्मान्धता में मूर्तियुक्त अपवित्र सिंहासन की विद्यमानता उनके लिए अभिशाप-रूप थी।

मयूर-सिंहासन का उल्लेख शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी ने शाहजहाँ के शासन के आठवें वर्ष[१] के विवरण में जो कि १६३४ के लगभग होता है, किया है। यह ध्यान देने योग्य है कि मुमताज़ की मृत्यु लगभग

१. इलियट एण्ड डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ ४५

१६३० में हुई और ताजमहल से सम्बन्धित कल्पित विवरण के अनुसार इस व्ययसाध्य स्वप्नलोकीय स्मारक का निर्माण उसकी मृत्यु के एक वर्ष के भीतर आरम्भ हो गया था। यह भी कहा जाता है कि यह कार्य १० से २२ वर्ष तक चला। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि[१] ६ फरवरी, १६२८ को सिंहासनारूढ़ होने के तुरन्त बाद आरम्भ के कुछ वर्ष शाहजहाँ ने अपने विरोधियों की हत्या करने में लगाए। जब १६३० और १६३१ के मध्य मुमताज़ मरी तो कहा जाता है कि शाहजहाँ ने फकीरों और जरूरतमंदों को बहुत सारा धन दिया जैसा कि प्रस्तुत पुस्तक में बादशाहनामे के उद्धरणों से हमें ज्ञात होता है। बाद में, जैसा कि बताया जाता है, शाहजहाँ ने ताजमहल परिसर-निर्माण आरम्भ किया।

कार्य प्रारम्भ ही हुआ था कि तब हमें बताया जाता है कि १६३५ के लगभग शाहजहाँ के पास हीरे-मोती के इतने अम्बार लग गए, शासनारूढ़ होने के ६ वर्ष के भीतर ही कि वह सोच ही नहीं पाया कि क्या किया जाए। तब उसने भव्य मयूर-सिंहासन बनाने का आदेश दिया। मुल्ला अब्दुल[२] कहता है—"वर्ष बीतते-बीतते राजकीय रत्नागार में मूल्यवान् रत्न आ गए।" इस प्रकार की जालसाजी में विश्वास करने के लिए साधारण सहजता की भी आवश्यकता नहीं है। इन विवरणों की तर्कसंगतता के विषय में किसी ने भी किसी प्रकार की छानबीन, तुलना और प्रामाणिकता की ओर ध्यान देने की चिन्ता नहीं की। यदि हमें इस प्रकार की असंगत बातों पर विश्वास करना है तो कहना होगा कि मुगलों पर निरन्तर मुद्राओं और रत्नों की वर्षा होती रहती होगी।

इसलिए हमें इस सारी शेखचिल्ली की कहानी की उपेक्षा कर शाहजहाँ द्वारा मयूर-सिंहासन बनाए जाने की बात को भूलकर अपना ध्यान इसके आयाम और इस पर हुए व्यय की खोज की ओर लगाना होगा। सिंहासन-निर्माण में प्रयुक्त रत्नों तथा मुद्राओं का अब्दुल हमीद द्वारा दिया गया विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो सकता है तथापि उसके वर्णन से पाठकों को शाहजहाँ द्वारा अपहृत प्राचीन हिन्दू सिंहासन की भव्यता का कुछ तो आभास हो ही जाएगा।

शाहजहाँ के दरबारी इतिहास-लेखक[३] के अनुसार ऐसा लगता है कि मयूर-

१. इलियट एण्ड डौसन का इतिहास, भाग ७, पृष्ठ ६
२. वही, पृष्ठ ४५
३. वही पृष्ठ ४५-४६

सिंहासन "तीन गज लम्बा, ढाई गज चौड़ा, पाँच गज ऊँचा और ८६ लाख मूल्य के जवाहरात से जड़ा हुआ था। इसका छत्र १२ मणियुक्त स्तम्भों का था। प्रत्येक स्तम्भ के शिखर पर मयूरों का एक जोड़ा रत्नों से जड़ा हुआ स्थित था, प्रत्येक मयूर-युगल के मध्य में मोती, हीरे, पन्ना आदि से जड़ा हुआ एक-एक वृत्त बनाया हुआ था, सिंहासन का मूल्य एक करोड़ रुपया था।" और यह भी कहा जाता है कि इसे बनाने में सात वर्ष लगे थे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ताजमहल के साथ ही शाहजहाँ को उसके समान ही व्ययसाध्य मयूर-सिंहासन के निर्माण का कार्य भी करवाना पड़ा था। यह तो अलिफ-लैला की कहानी से भी अधिक विस्मयकारक है। सिंहासन में ग्यारह आसन थे, जिनमें मध्य का आसन स्वयं शासक का था।

इस बात का पता लगाने का एक सम्भव उपाय यह है कि किस हिन्दू राजा ने यह सिंहासन बनवाया था, जो अन्त में शाहजहाँ के हाथ में चला गया?

हिन्दू परम्परा के अनुसार राज्याभिषेक तथा अन्य राजकीय उत्सवों पर राजा के साथ उसकी रानी, पुत्र अथवा भाई सदा साथ ही होते हैं। भगवान् राम को सदा अपनी महारानी सीता तथा तीनों भाइयों के साथ बैठे हुए दिखाया जाता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि जिस हिन्दू राजा ने इस सिंहासन को बनवाया था, उसके नौ पुत्र थे, मयूर-सिंहासन के ग्यारह आसन राजा, रानी और उनके नौ पुत्रों के लिए बने थे। यदि भारत के प्राग्-मुस्लिम इतिहास में हम ऐसे हिन्दू राजा को पहचान सकें जो अपने प्रताप और विशाल राज्य के लिए प्रसिद्ध था तो निश्चित ही उसी प्रतापी राजा ने यह सिंहासन बनवाया होगा।

यह भी सम्भावना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य का उपनाम उसके मयूर-सिंहासन से ही व्युत्पन्न हो। क्योंकि मयूर का (संस्कृत में) अर्थ होता है मोर और मौर्य मयूर शब्द का साधित शब्द हो सकता है। ऐसी स्थिति में प्रसिद्ध मयूर-सिंहासन जिसका शाहजहाँ ने अपहरण कर लिया था, उसके विषय में कम-से-कम चन्द्रगुप्त मौर्य तक के भूतकाल तक खोज के लिए जाना होगा।

एक अन्य सम्भावना यह भी हो सकती है कि उस हिन्दू शासक ने वह मयूर-सिंहासन बनवाया हो जो साहित्यिक प्रतिभासम्पन्न और महाप्रतापी दोनों ही हो; क्योंकि हिन्दू पुराणों के अनुसार विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती और योद्धा देव सेनापति कार्तिकेय स्वामी दोनों का ही वाहन मयूर बताया गया है। प्राचीन

भारत में ऐसा एक शासक जो अपने पराक्रम, विद्वत्ता और सत्यनिष्ठा के लिए प्रसिद्ध था, जिसने ईसा से ५७ वर्ष पूर्व विक्रम संवत् प्रचलित किया था, वह विक्रमादित्य था। शाहजहाँ ने ताजमहल के साथ ही जिस मयूर-सिंहासन को हथिया लिया था, मूल रूप से उसका निर्माण अरब के विजेता सम्राट विक्रमादित्य ने करवाया हो।

दन्तकथा की असंगतियाँ

परम्परागत विश्वास के विपरीत, मध्ययुगीन मुस्लिम शासकों के दरबार दुष्कृत्यों, षड्यन्त्रों, दुराचारों, क्रूरताओं और नृशंसताओं से भरपूर थे। ऐसे वातावरण में कला अथवा जीवन के अन्य उच्चादर्शों की प्रगति के लिए वहाँ कोई अवसर नहीं था, इसलिए नृत्य, चित्रकारी, संगीत और भवन-निर्माण आदि कलाओं के प्रोत्साहन की सब बातें निराधार हैं। वास्तव में मुस्लिम घुसपैठ के प्रारम्भ होते ही सारी प्रगति अवरुद्ध हो गई, क्योंकि अधिकांश जन अपने तथा अपने बाल-बच्चों के जीवन की सुरक्षा के लिए चिन्तित रहते थे। इस प्रकार के अत्यन्त भयावह वातावरण में कुछ भी पनपना सम्भव नहीं था। ताजमहल जैसा भव्य भवन तो सुदीर्घ शान्ति और सम्पन्नता के समय का आभास देता है।

श्री केशवचन्द्र मजूमदार कहते हैं[१]—"एतमाद-उद-दौला, नूरजहाँ का पिता, हमें बताता है कि ५,००० के लगभग औरतें मुगलों के हरमों में छटपटाती रहती थीं``उनमें से कुछ के पुत्रों को आजीवन एकान्त बन्दीगृह में रहना पड़ता था।" जब शासक की अपनी सन्तान का ही अन्त हो तो जन-साधारण, जिनमें अधिकांश वे तिरस्कृत हिन्दू होते थे जो अपना धर्म और संस्कृति शासकों से श्रेष्ठ समझते थे, की दुर्दशा का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त हम भली प्रकार जानते हैं कि राजघरानों और नवाबों में कितना यौनाचार होता था, यही कारण था कि असंख्य नपुंसक मुस्लिम दरबार का अनिवार्य अंग बन गए थे। क्या इस प्रकार का वातावरण विविध कलाओं के मूलोच्छेदन के लिए पर्याप्त नहीं था?

निरन्तर युद्ध की तैयारी, नौकरों की विशाल सेना, नवाबों का धन के लिए

---

१. के. सी. मजूमदार लिखित 'इंपीरियल आगरा ऑफ दि मुगल्स', पृष्ठ ५

लालायित रहना, हरमों का रख-रखाव, इन सबको देखते हुए भारत में मुसलमान शासकों के पास सदा धन की कमी ही रही। जन-साधारण की भाषा में कहा जाए तो यही कि वे दो समय तक का भोजन भी नहीं जुटा पाते थे। इसलिए, इस्लामी दरबारों में अपार सम्पत्ति बखान करनेवाले सभी विवरण असत्य हैं। इसमें सन्देह नहीं कि धन आता था, निस्सहाय जनता को लूटकर धन एकत्रित होता था और जैसे ही वह एकत्रित होता था वैसे ही वह तुरन्त खर्च करना पड़ता था। इस प्रकार दरबार में धन एकत्रित होता और हड़प लिया जाता। वास्तव में इस लालच की पूर्ति के लिए शासक द्वारा निस्सहाय प्रजा पर अत्याचार करना आवश्यक हो गया था। और ज्यों ही लूट की सम्पत्ति एकत्रित होती उसे तुरन्त बाँट दिया जाता था। इस प्रकार करोड़ों रुपए खर्च कर मृत महारानी के शव को दफनाने के लिए इतने बड़े ताजमहल के निर्माण के लिए शासकीय कोष में धन था ही नहीं। विपरीत इसके मध्ययुगीन मुसलमान इतिहासकारों द्वारा लिखित दरबार की सम्पत्ति और वैभव के असंगत वर्णन का उद्देश्य शासकों की चापलूसी करके स्वयं वैभवशाली बनना था। वे तथाकथित इतिहासकार शाही कृपा प्राप्त करने के लिए उनकी चापलूसी करते हुए उनके वैभव का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन कर लूट के हिस्से में स्वयं भागीदार बनने के यत्न में लगे रहते थे।

भारतीय स्मारक तथा उनकी वास्तुकला का इतिहास किस प्रकार व्यर्थ के अनुमानों पर आधारित है, इसका एक विचित्र उदाहरण कीन की हैंडबुक[१] में प्राप्त है—"अली मर्दान खाँ (कन्धार का सूबेदार) ने सम्भवतया गुम्बद का प्रचलन किया, जिसे कुछ लोग भारत में अरबी शिल्पकला का ह्रास-सूचक मानते हैं। इसका प्रमुख उदाहरण ताजमहल का गुम्बद है।" इससे प्रकट होता है कि पारस्परिक मान्यताएँ कल्पित और पानी के बुदबुदे की भाँति अनन्त 'संभावनाओं' से भरी पड़ी हैं। पृष्ठ २०९ पर कीन कहता है—"चौंसठ खम्भा बक्शी सलाबत खाँ (शाहजहाँ का मुख्य कोषाध्यक्ष) का मकबरा माना जाता है।" चौंसठ खम्भा गैर-मुस्लिम शब्द है। क्या इतिहास के अध्येता स्वयं से यह प्रश्न नहीं पूछना चाहेंगे कि मुगलकालीन इन ऐरे-गैरे नत्थू-खैरे जिनमें नपुंसक, फौजदार, वेश्याएँ, फकीर, बेटे, पोते और परपोते सम्मिलित हैं, इन सबके मकबरों पर हुआ व्यय

१. कीन की हैंडबुक, पृष्ठ ३८ पर पाद-टिप्पणी।

किसने भुगताया? क्या यह किसी एक व्यक्ति के लिए सम्भव था? क्या यह सम्भव है कि जिन्होंने स्वयं अपने अथवा अपने वंशजों के लिए कोई प्रासाद नहीं बनवाए वे क्या अपने उन पूर्वजों के लिए मकबरे बनवाएँगे, जिनसे कि वे घृणा करते थे?

कीन अपनी हैंडबुक के पृष्ठ १५० पर पाठकों को बताता है कि "...दो बारादरियाँ और मनोरंजन के लिए अन्य मंडपों की व्यवस्था यहाँ मुमताज़ के दफनाए जाने के बाद की गई...।" यह कल्पना करना अभद्रता होगी कि जो बादशाह अपनी पत्नी की मृत्यु पर शोकाकुल हो, वह अपने ही व्यय से अपनी पत्नी की कब्र के पास जन-सामान्य दर्शक के आमोद-प्रमोद के लिए—वह भी शाहजहाँ के शासनकाल में, जबकि मानव का कोई मूल्य ही नहीं था—ऐसे मण्डपों का निर्माण करेगा। किन्तु आनन्द-मण्डपों की वहाँ पर विद्यमानता इस बात का एक और प्रमाण है कि, क्योंकि ताजमहल मूलतया राजपूत प्रासाद था इसलिए वहाँ बारादरियों का होना स्वाभाविक है।

किस प्रकार ताजमहल के निर्माण की सम्पूर्ण कहानी जालसाजी और धोखेबाजी है यह उन पारम्परिक कथाओं की एक और कमी से स्पष्ट होता है। अपनी पुस्तक के पृष्ठ १६५ पर कीन लिखता है—"यह बहुत सम्भव है कि मुमताज़ के अवशेष (छः मास तक बुरहानपुर में दबे रहने के बाद वहाँ से लाए जाने पर) नौ वर्ष तक बावली मस्जिद के निकट अस्थायी मकबरे में पड़े रहे।...वे अन्तिम रूप से इस मकबरे में (तथाकथित ताजमहल के भूगर्भ में) कब लाए गए, यह आधिकारिक रूप से ज्ञात नहीं है।" क्योंकि मुमताज़ के पिण्ड को स्थायी विश्रान्ति-स्थल पर ले जाने जैसा महत्त्वपूर्ण विवरण अप्राप्य है जबकि शाहजहाँ ने उसके दफन के लिए विशेषतया एक मकबरा बनवाया, तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि वास्तव में ताज में मुमताज़ और शाहजहाँ के शव हैं भी अथवा केवल प्राचीन हिन्दू प्रासाद को भ्रष्ट करने के उद्देश्य से मात्र नकली कब्रें ही वहाँ पर विद्यमान हैं।

ताजमहल के प्रत्येक विवरण को जालसाजी सिद्ध करनेवाली न्यूनताओं एवं असंगतियों का एक अन्य उदाहरण नकली कब्रों के चारों ओर बनी संगमरमर की जालियों से सम्बन्धित है। इनके सम्बन्ध में कीन की हैंडबुक के पृष्ठ १७१ में लिखा है—"कब्रों के कक्ष के केन्द्रीय भाग को अष्टकोणीय क्षेत्र में घेरनेवाली संगमरमर की जालियाँ, बादशाहनामे के अनुसार शाहजहाँ द्वारा १६४२ में यहाँ

स्थापित की गई थीं"'किन्तु विषय के आधिकारिक विद्वानों के कथनानुसार ये जालियाँ यहाँ पर औरंगजेब द्वारा अपने पिता के अवशेष दफनाने के बाद लगाई गई हैं।''

यह उद्धरण सूक्ष्म परीक्षण चाहता है। यह ध्यान देने योग्य है कि स्वयं बादशाह के आदेश पर लिखे गए बादशाहनामे के विवरण को कीन विश्वसनीय नहीं मानता, क्योंकि उसने अन्य अधिकारी विद्वानों की मान्यताओं को अधिक उचित माना है। जहाँ तक कीन का बादशाहनामे पर विश्वास न करना है, वह उचित है, क्योंकि जैसे कि हमने तथा अन्य इतिहास के विवेकशील अनेक अध्येताओं ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास तो, बादशाह की कृपादृष्टि प्राप्त करने के उद्देश्य से, चाटुकारिता से भरपूर है। किन्तु वहाँ पर गलत है जहाँ वह अन्य अधिकारी विद्वानों को विश्वसनीय बताता है। चाटुकार तो, वे फिर शाहजहाँ के दरबार में हों अथवा औरंगजेब के, सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। एकमात्र सम्भावित निष्कर्ष जो हम निकाल सकते हैं वह यह है कि ताजमहल के राजपूत स्वामियों के मयूर-सिंहासन को वे संगमरमर की जालियाँ आरम्भ से ही घेरे हुए वहाँ पर विद्यमान थीं। औरंगजेब ऐसा व्यक्ति नहीं था जो कि अपने उस पिता का, जिससे वह घृणा करता था, मकबरा सजाने में एक पैसा भी व्यय करे।

स्लीमन[१] कहता है कि महारानी के मकबरे पर खुदी कुरान की आयत इन शब्दों के साथ समाप्त होती है—''और हमारी विश्वास न करनेवालों की जाति से रक्षा करो।'' ऐसा समाप्तीकरण महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि लक्ष्य यही सिद्ध करना है कि ताजमहल को एक 'विश्वास न करनेवाले' परिवार से इसलिए छीना गया था कि उस जाति को समाप्त किया जा सके। मुमताज के मकबरे पर उद्धृत किए जानेवाले उद्धरण का चयन इस उद्देश्य के साथ विश्वासघात करता है।

किस प्रकार, अनेक शताब्दियों से निर्बाध चला आ रहा असीम आग्रहात्मक प्रचार सामान्य जनों, इतिहास और वास्तुकला के विद्वानों की पीढ़ियों को भ्रमित करनेवाला तथा उन्हें यह विश्वास दिलाने में सफल हुआ है कि विशाल एवं भव्य मध्यकालीन स्मारक मुस्लिम हैं, यद्यपि वे मुस्लिम काल के पूर्ववर्ती हैं, यह तथ्य

---

१. 'रैंबल्स एण्ड रिफलेक्शन्स ऑफ एन इंडियन औफिशियल', पृष्ठ २४

स्लीमन के अनुभव से स्पष्ट किया जा सकता है। अपनी पुस्तक के अध्याय ४ के पृष्ठ २९ पर, आगरा-स्थित स्मारकों के भ्रमण का वर्णन करते हुए लेखक कहता है—''मैं एतमाद-उद-दौला का मकबरा देखने के लिए एक दिन प्रात:काल यमुना नदी पार कर गया।...वापस होते हुए मैंने एक नाविक, जो मेरी नाव चला रहा था, से पूछा, 'किले के अन्दर जो एक नया-सा मकबरा मुझे दिखाई दिया वह किसने बनाया?' ''

'' 'किसी बादशाह ने ही।' उसने कहा।

'' 'तुम यह किस आधार पर कहते हो?'

'' 'क्योंकि ऐसी वस्तुएँ केवल बादशाह ही बनवाते हैं।' उसने बड़ी शान्ति से उत्तर दिया।

'' 'ठीक, बिल्कुल ठीक।' मेरा अनुसरण करने के उद्देश्य से उतरनेवाले एक वृद्ध मुसलमान ने विषाद से अपना सिर हिलाते हुए कहा, 'ठीक ही तो है! बादशाह के अतिरिक्त कौन इन जैसी वस्तुओं का निर्माण करा सकता है?' ''

''उससे उत्साहित होकर नाविक कहने लगा, 'जाट और मराठों ने जब यहाँ अपना अभिशप्त राज्य स्थापित किया तो भवनों को गिराने और नष्ट करने के अतिरिक्त उन्होंने कुछ किया ही नहीं...' ''

उपरिलिखित उद्धरण में हमें यह सूत्र हस्तगत होता है जिससे पश्चिमी विद्वान् और पर्यटकों को निहित स्वार्थी व्यक्तियों के प्रलाप से भ्रमित किया जाता रहा है। मराठों तथा जाटों पर आरोपित अभियोग प्रत्यक्षतया कितना भद्दा है यह तो ताज और एतमाद-उद-दौला के तथाकथित मकबरे की विद्यमानता से देखा ही जा सकता है। यह नहीं कि वे मूलतया मुस्लिम भवन थे किन्तु जब से उनको मुस्लिम मकबरों के रूप में प्रयुक्त करना आरम्भ किया गया तब से जाट और मराठों ने उन पर एक खरोंच भी नहीं लगाई, किन्तु किसी प्रकार यह प्रचार अपने उद्देश्य में सफल हो गया कि लोग इस गलत बात पर विश्वास करने लगे कि मध्यकालीन स्मारक मुस्लिम मूल के हैं।

हमारा स्वयं का भी स्लीमन की भाँति एक अनुभव है।

एक बार जब हम आगरा दुर्ग देखने गए तो एक दाढ़ीवाले मुसलमान से जो बाल्टी भरे हुए नहाने की तैयारी में था, हमने पूछा कि दुर्ग के किस भाग में औरंगजेब ने शिवाजी को बन्दी बनाकर रखा था। यह प्रश्न पूछने का हमारा उद्देश्य

केवल प्रचलित धारणा का परीक्षण करना था, क्योंकि हम अपने मस्तिष्क में स्पष्ट थे कि शिवाजी को किले के बाहर रामसिंह के घर में बन्दी बनाकर रखा गया था। किन्तु उस मुसलमान ने तो बिना पलक झपकाए या उत्तर देने के लिए तनिक-सी भी झिझक दिखाने की अपेक्षा विभाजक दीवार से दूर एक ऐसे स्थान की ओर संकेत कर दिया जो सेना के अधिकार-क्षेत्र के भीतर था, इसलिए पर्यटक का वहाँ पहुँच सकना सम्भव नहीं था। तब हमें स्वयं के अनुभव से यह अनुभूति हुई कि किस प्रकार जन-सामान्य और उसी प्रकार इतिहास के अध्येता दोनों को ही असंदिग्ध व्यक्तियों द्वारा झूठे लिखित वक्तव्यों एवं उन मध्यकालीन ग्रन्थों द्वारा भ्रमित किया जाता रहा है जिनको तत्कालीन घटनाओं का आधिकारिक अभिलेख माना जाता है।

उपरिवर्णित अनेक सूत्रों से यह प्रकट हो गया है कि ताजमहल का निर्माण प्रासाद के रूप में हुआ, मकबरे के रूप में नहीं। इसकी भव्यता, मनोरंजन-मंडप, संगमरमर की जालियाँ, पच्चीकारी किया हुआ फर्श, समृद्धिशाली चाँदी के द्वार और सोने की जंजीरें, सैकड़ों कमरे, खवासपुरा और जयसिंहपुरा जैसे नाम, राजपूतों में पवित्र समझे जानेवाले पुष्प और रसीले फलों के उद्यान और इसी प्रकार की अन्य अनेक बातें इसका प्रमाण हैं।

मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों की असत्यता के प्रसंग में कीन उल्लेख करता है[१]—"भारतीय इतिहासकार अपने साम्राज्यीय संरक्षकों के कार्यों का गुणगान करते हुए उन्होंने प्रायः ऐसे वक्तव्य दिए हैं जो भावी छानबीन के समुज्ज्वल प्रकाश में नितान्त असत्य पाए जाते हैं। कीन उनको भारतीय कहने में भूलकर रहा है। वे तो विदेशी मुसलमान थे।"

अगले पृष्ठों में वह पुष्टि करता है कि "शाहजहाँ की कब्र...असमान रूप से बनी है (पृ० १७२)। नदी की ओर के भूगर्भ में १४ कमरे हैं (पृ० १७७)।" उन कमरों के विषय में कीन कहता है—"विशाल भूगर्भ के सम्मुख आँगन के नीचे मध्य भाग में १४ भूगर्भ कक्षों की पंक्ति है। प्रत्येक कक्ष उन कमरों की पूरी लम्बाई में भीतरी द्वारों द्वारा पूर्व-पश्चिम तक एक-दूसरे से सम्बन्धित है। बरामदे के दोनों छोरों से नीचे जाने के लिए सीढ़ियाँ उतरती हैं, जहाँ उनका प्रवेश-द्वार

---

१. कीन की हैंडबुक, पृष्ठ १७१, वास्तव में कमरे २२ हैं।

लाल पत्थरों की शिलाओं से बन्द कर दिया गया है। वे तब तक अज्ञात रहे जबकि कुछ वर्ष पहले पूर्व में स्थित कुछ कक्षों के अधूरे बन्द किए हुए छिद्र दिखाई न दिए। वे कमरे जो कभी चित्रित तथा अन्यथा सज्जित थे, अब अन्धकार से भरे हैं जिनमें चिमगादड़ों ने अपना निवास बना लिया है, बिना प्रकाश के उनके भीतर कुछ देख पाना सम्भव नहीं है। क्या इन कक्षों में से नदी के घाट पर उतरने का मार्ग था और नदी की ओर से ये ताज में प्रवेश के द्वार थे या फिर इनके झरोखे ठंडी हवा के लिए ग्रीष्म ऋतु में नदी की ओर खोले जाते थे, इनका निर्णय अभी नहीं किया जा सकता।''

उपरिलिखित विवरण वह महत्त्वपूर्ण छिद्र है जो यह बतलाता है कि जन-साधारण से ताजमहल में क्या-क्या छिपा हुआ है। सामान्य पर्यटक नकली कब्रों वाले कक्ष से झाँककर सन्तुष्ट हो बाहर निकल आता है और सोचता है कि अनन्य प्रेमी शाहजहाँ की उत्कृष्ट कल्पना का साकार रूप उसने आज देख लिया, उसका यह दिन सफल हुआ, किन्तु वह बुरी तरह से छला गया है। कीन ने ठीक ही लिखा है कि भूगर्भ के अनेक कक्ष लाल पत्थर से बन्द किए हुए हैं। हिन्दू भवन को मुस्लिम मकबरे में परिवर्तित करने के बाद शाहजहाँ को उनकी आवश्यकता नहीं रही और उसने उन्हें बन्द करवा दिया। इस प्रकार किसी भवन का निर्माण करने की अपेक्षा शाहजहाँ ने ताजमहल के बहुत बड़े भाग को या तो बन्द करवा दिया या तुड़वा दिया। यही सबकुछ मध्यकालीन प्रायः सभी मकबरों के साथ लागू होता है चाहे वे आज हुमायूँ, एतमादुद्दौला, सफदरजंग, अकबर या किसी और के मकबरे क्यों न हों।

पर्यटक ताजमहल के पीछे लाल पत्थर के विस्तृत छज्जे पर खड़ा होकर नीचे बहती हुई यमुना नदी को देख भली प्रकार यह अनुमान लगा सकता है कि नदी के सामने एक ही पंक्ति में २२ कक्ष बने हुए हैं तो फिर संगमरमर के विशाल स्तम्भपीठ के नीचे कुल कितने भूगर्भ कक्ष होंगे?

पर्यटक यह अनुमान भी लगा सकते हैं कि जब लाल पत्थर के छज्जे के नीचे अनेक कक्ष बने हैं तो फिर यमुना के समतल तक भूगर्भ की अनेक मंजिलों में कितने ही कक्ष बने होने चाहिए? इस प्रकार भूतल से संगमरमर के चबूतरे तक अनेक भूगर्भ मंजिल होनी चाहिए और प्रत्येक मंजिल में अनेक कक्ष होने चाहिए। पर्यटक को इनमें से कोई भी नहीं दिखाई जाती। शाहजहाँ ने जब हिन्दू भवन को

मुस्लिम मकबरे के रूप में परिवर्तित किया तब से उन सब कक्षों को पर्यटकों के देखने के लिए बन्द कर दिया गया। दुर्भाग्य से, आज भी जबकि हम स्वतन्त्र हैं, स्वतन्त्र भारत का स्वतन्त्र नागरिक अभी भी महान् ताजमहल के सभी भागों को स्वतन्त्र अनुमान लगाने के अपने अधिकार से वंचित है। इसके विपरीत उसको शाहजहाँ-मुमताज़ के कल्पित प्रेम की मनगढ़न्त कथा सुनाकर धोखा दिया जा रहा है।

बर्नियर के कथन से यह स्पष्ट है कि ताजमहल के भूगर्भ कक्ष में पर्यटकों का प्रवेश तब से वर्जित हुआ जब १६३० में इस हिन्दू भवन को शाहजहाँ ने अपने अधिकार में लिया। बर्नियर फ्रांस का पर्यटक था जो शाहजहाँ के शासनकाल में भारत आया था।

लाल पत्थर के छज्जे के नीचे के भूगर्भ कक्ष के अतिरिक्त ताजमहल में संगमरमर के चबूतरे के नीचे अनेक कमरोंवाला एक और भूगर्भ-कक्ष होना चाहिए। जो पर्यटक नकली कब्र से भूगर्भ की ओर उतरता है,तो उसको कह दिया जाता है कि नीचे केवल एक ही बड़ा कक्ष है जिसमें असली कब्रें हैं। किन्तु यह सत्य से बहुत दूर है। उन कक्षों के गहनतम अंधकार में अनेक रहस्य छिपे हुए हैं जिनके विषय में पर्यटक को अंधकार में ही रखा जाता है।

बहुत-से पर्यटक शीघ्रता होने के कारण इस धारणा को लेकर वहाँ से बाहर आते हैं कि संगमरमर के उस भवन में कब्रों का एक कक्ष तो भूतल पर है और एक भूगर्भ में। किन्तु उनके चारों ओर अनेक विशाल आगार और कक्ष हैं। अपनी हैंडबुक के पृष्ठ १७४ पर कीन लिखता है—"मकबरे के भीतरी भाग में नकली कब्रोंवाले केन्द्रीय कक्ष के चारों ओर चार बड़े-बड़े वर्गाकार दालान हैं जो प्रत्येक अर्धवृत्ताकार के पीछे हैं और तीन छोटे-छोटे कोनेवाले अर्धवृत्ताकार जोड़े के साथ चार अष्टकोणीय कक्ष हैं। ये आगार बीच के दालान मार्ग से परस्पर सम्बन्धित हैं जिससे कि वर्गाकार आगार से असली कब्रोंवाले भूगर्भ-कक्ष में सरलता से आवागमन किया जा सके। दक्षिण दिशा-स्थित प्रत्येक अष्टकोणीय आगार से ऊपरी मंजिल में जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं, जैसे आगार और दालान निचली मंजिल पर हैं वैसे ही ऊपरी मंजिल पर भी हैं..."

क्योंकि संगमरमर भवन के भूतल पर अनेक आगार और अष्टकोणीय कक्ष हैं अतः स्पष्ट है कि तदनुरूप ही भूगर्भ में भी आगार और कक्ष अपेक्षित हैं। यदि

वे कक्ष व उनमें जाने के मार्ग पर्यटक को दिखाई नहीं देते तो इससे यही स्पष्ट होता है कि उनमें जाने के मार्गों को भी अवरुद्ध कर दिया गया। अतः ताजमहल में संगमरमर के चबूतरे से लेकर यमुना के स्तर तक बहुत कुछ खोजने, अवरोधों को दूर करने और तथ्य प्राप्त करने की नितान्त आवश्यकता है। यदि उन अनेक भूगर्भ मंजिलों के वे सब कक्ष प्रकाश में लाए जाएँ जो शाहजहाँ द्वारा हिन्दू भवन को हथियाने से सम्बन्धित कथा के टुकड़ों को जोड़ने में सुविधा होगी।

हम पाठकों का ध्यान कीन की इस टिप्पणी की ओर दिलाना चाहते हैं कि भूगर्भस्थ कक्ष दीवारों पर चित्रकला तथा अन्य प्रकार से सज्जित हैं। उसके हिन्दू भवन होने का यह एक अन्य प्रमाण है। शाहजहाँ भूगर्भ में अनेक सज्जित कक्षों का निर्माण कराकर फिर उन्हें बन्द नहीं कर सकता था। बादशाहनामे के अनुसार मुमताज़ाबाद (जो स्पष्टतया जयसिंहपुर और खवासपुर का परिवर्तित नाम है) में चार सराय थीं और प्रत्येक में १३६ कमरे थे और एक मध्यस्थ (वर्गाकार) चौक था जिससे समकोणों पर सड़कें फूटती थीं। यह एक और प्रमाण है कि प्राचीन राजपूत प्रासाद जो अब ताजमहल के नाम से पुकारा जाता है, चारों ओर से बड़े-बड़े भवनों से घिरा था जो उन सड़कों से जुड़े हुए थे। वास्तव में संस्कृत में 'पुर' शब्द यही प्रकट करता है। इतने बड़े विशाल भवन परिसर का औचित्य तभी उपयुक्त है जबकि उन सबका आकर्षण-केन्द्र कोई प्रासाद हो। मकबरे के लिए न तो इसकी आवश्यकता होती है और न कोई उसका व्यय-भार सँभाल ही सकता है।

ताज से सम्बन्धित पुस्तकों एवं लेखों से परम्परागत ताज-कथा को असत्य सिद्ध करनेवाले उपरिलिखित प्रमाण चयन करने एवं उनको प्रस्तुत कर यह सिद्ध करने के बाद कि ताजमहल मूलतया प्रासाद था न कि मकबरा, अब हम स्वयं को इस भवन के सर्वेक्षण से सम्बद्ध करेंगे।

क्योंकि विंसेंट स्मिथ अपनी पुस्तक 'अकबर दि ग्रेट मुगल' के पृष्ठ ९ में लिखता है कि बाबर अपने उद्यान-प्रासाद आगरा में मरा। इससे यह स्पष्ट है कि शाहजहाँ के सभी पूर्वज और उत्तराधिकारी जिन्होंने आगरा पर शासन किया निश्चित ही ताजप्रासाद में उन्होंने कुछ दिन या घंटे उसके पूर्ण स्वामी अथवा राजपूत सरदार मानसिंह और जयसिंह जो अन्ततः ताज के स्वामी सिद्ध होते हैं, उनके अतिथि के रूप में अवश्य बिताए होंगे। फारसी कवि सलमान के अनुसार

घमासान युद्ध के उपरान्त ही मुहम्मद गजनी ने आगरा दुर्ग को जयपाल से छीना था। जिसने भी दुर्ग पर शासन किया, ताजमहल उसी का हुआ। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जयपाल ताजमहल का स्वामी था और वह इसमें रहा था। उसके बाद कम-से-कम कभी-कभी तो गजनी भी इसमें रहा होगा, भले ही सुरक्षा की दृष्टि से अधिकांशतया उसने दुर्ग में ही रहना उचित समझा हो। अन्य लोग, जिन्होंने २६ कमरोंवाले संगमरमर के ताजमहल के स्वामित्व का उपभोग किया वे हैं : मोहम्मद गजनी के आक्रमण के बाद पुनः सत्तासीन तोमरवंशी राजपूत, विशालदेव चौहान, बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, जलाल खाँ पुनः हुमायूँ, अकबर, मानसिंह, जगतसिंह और जयसिंह। जैसा कि सभी कथन निस्संदिग्धरूपेण स्वीकार करते हैं कि ताजमहल के अन्तिम स्वामी से शाहजहाँ ने मकबरे में परिवर्तित करने के लिए ताज-सम्पत्ति को अधिग्रहीत किया।

जैसे कि ताज पीढ़ियों से आगरा पर शासन करनेवालों का राजकीय आवास रहा, इससे यह स्पष्ट है कि यह अनेक राजकीय व्यक्तियों के जन्म एवं मरण का स्थल रहा होगा जैसाकि इसमें बाबर की मृत्यु के सन्दर्भ से स्पष्ट है।

ताजमहल के सम्मुख वाली आगरा दुर्ग की दीर्घा की दीवार में एक छोटा-सा दर्पण ताज को देखने के लिए जड़ा हुआ है। ताज-कथा में गढ़नेवालों ने बड़ी सुगमता से इस तथ्य को भी अपने पक्ष में गढ़कर उस पुराण-कथा में सम्मोहकता जोड़ दी है। प्रासादों के मेहराबदार पोलों में तथा महिलाओं के परिधान में छोटे-छोटे और गोल शीशे के टुकड़े जड़ना सामान्य और अत्यन्त प्रचलित राजपूत पद्धति है। शीशे के ऐसे प्रतिबिम्बक आज भी अगणित संख्या में राजस्थान के प्राचीन प्रासादों में देखे जाते हैं और महिलाओं के परिधानों में सज्जा के रूप में भी वे आज भी प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं। अरब शैली नाम की यदि कोई शिल्पकला रही भी हो, तो उसको 'परदे' में अथवा छिपाने में आस्था होनी चाहिए, काँच के प्रतिबिम्बों के विषय में तो वह शैली सोच भी नहीं सकती। आगरा दुर्ग की दीर्घा में आरोपित दर्पण राजपूत शासक स्वामी को दुर्ग से ही ताजप्रासाद का दूरेक्ष्य दृश्य देखने में समर्थ बनाता था। शाहजहाँ जब दुर्ग में बन्दी था उस अवधि में उसको उस स्थान पर जाने की कभी अनुमति मिली ही नहीं जहाँ से ताज दिखाई देता है। इसलिए यह तर्क भद्दा है कि अपने बन्दी-काल में वह उस छोटे-से दर्पण के माध्यम से ताज को देखकर स्वयं को सान्त्वना दे लेता था। इससे भी अधिक बेहूदी

असंगत बात यह है कि वृद्ध सम्राट्, झुकी कमरवाला, अपनी धुँधली दृष्टि पर जोर डालता हुआ हर समय खड़ा रहकर एक छोटे-से दर्पण में ताज का चंचल दृश्य देखता रहता, जबकि ताज की ओर मुख करने पर उसका पूर्ण, स्पष्ट और सीधा दृश्य देख सकता था? क्या इस प्रकार की स्थिति से उसकी गर्दन में पीड़ा नहीं होती थी? यह इस बात का एक और उदाहरण है कि इतिहास के अध्येता, पुरातत्त्ववेत्ता और सामान्य पर्यटकों ने ताज-कथा के विभिन्न पहलुओं का मूल्यांकन करने की न तो कभी चिन्ता की और न ही कभी यह यत्न किया कि चाहे ये सब कपोल-कल्पित हैं तथापि इनको पुनः एक बार ऐसे जोड़कर रखा जाए कि ये कम-से-कम विश्वासकारी और तर्कयुक्त तो प्रतीत हों?

अनीस अहमद नामक एक सरकारी चपरासी ने हमें बताया कि यह छोटा-सा दर्पण, लगभग ४० वर्ष पूर्व उसके पिता इंशा अल्ला खाँ ने वहाँ पर लगाया था। यह बात यदि सत्य है तो शाहजहाँ द्वारा उस दर्पण में ताजमहल का प्रतिबिम्ब देखने की दन्तकथा बहुत ही भद्दा मजाक है।

मध्यकालीन स्मारक-समाधियों के निर्माण पर लगा समय, परिश्रम और धन के फलस्वरूप उपलब्धियों का तथ्यात्मक अनुमान पाठकों को उनकी तुलना आधुनिक काल के नए निर्माण से करने पर हो सकेगा, अतः हम महात्मा गांधी की समाधि की तुलना ताजमहल से करें, यदि ताजमहल को मूल रूप में मकबरा माना जाता हो तो।

महात्मा गांधी की समाधि भी लगभग १७ वर्ष तक निर्माणाधीन रही। इसके चारों ओर एक उद्यान है। उसके निर्माण में करोड़ों रुपए व्यय हुए हैं। अतः स्थूल रूप में महात्मा गांधी की समाधि पर व्यय किया गया समय, श्रम और धन ताज पर व्यय किए गए समय, श्रम और धन के सर्वाधिक अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से सामंजस्य रखता है। किन्तु तदपि परिणामों में विशाल अन्तर है। महात्मा गांधी की समाधि ताजमहल की सुन्दरता, भव्यता, स्थान की विशालता, साज-सज्जा और सौन्दर्य की तुलना में कुछ भी नहीं है। यह तो तब है जब कि महात्मा गांधी को विश्वभर का सम्मान और अधिक जनसंख्या तथा विशालतर क्षेत्र का प्रेम उपलब्ध था। स्थापत्यकला की भव्यता के अतिरिक्त ताजमहल में रत्नजड़ित संगमरमर की जालियाँ, सोने की रेलिंग एवं चाँदी के द्वार होने का भी विश्वास किया जाता है। पाठकगण स्वयं ही इनका मूल्य उसमें जोड़ सकते हैं। यह सब तो कल्पनातीत

राशि बन जाएगी। कदाचित् सारे मुगल बादशाह सम्मिलितरूपेण भी एक स्मारक पर इतना व्यय नहीं कर सकते थे। इसके साथ ही ऐसे स्मारक पर कौन अन्धाधुंध व्यय करेगा जो फकीरों और भिखारियों का शरणस्थल हो? इससे भी अधिक, मकबरे के लिए मुक्तहस्त से किया गया इतना व्यय अनुपयुक्त प्रतीत होता है। यह तो केवल मन्दिर अथवा प्रासाद ही हैं जो ऐसी भव्यता से सम्पन्न हो सकते हैं।

लाल पत्थर वाले चतुष्कोण से ताज-प्रांगण में प्रवेश तथा मजारोंवाले कक्ष में प्रवेश-द्वार, दोनों का ही मुख दक्षिण की ओर है। यदि ताज मूल रूप में ही समाधि-स्थल होता तो इसके प्रवेश-द्वारों का मुख पश्चिम की ओर होता, क्योंकि जीवित और मृत दोनों ही प्रकार के लिए ईश्वर से सम्पर्क-स्थापन इस्लाम में केवल पश्चिम द्वार से ही होता है। इस परम्परागत दावे को कि ताजमहल मूलतया मकबरे के रूप में ही प्रारम्भ किया गया था, स्वीकार न करने के लिए यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

कतिपय अपवादों को छोड़कर मध्यकालीन मुस्लिम-स्मारक प्रायः मकबरों के रूप में ही हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इन बहिर्मुखी बादशाहों ने मकबरे तो अनेक बनवाए किन्तु कोई प्रासाद कदाचित् ही बनवाया हो। यह और भी आश्चर्य की बात है कि जिस वंशज ने अपने पूर्वज के लिए विशाल मकबरा बनवाया, प्रचलित परम्परा के अनुसार वही उस पूर्वज के शासनकाल में उसके रक्त का प्यासा रहा। तर्क के लिए यदि हम उपरिलिखित दोनों बातों को सत्य मान लेते हैं तो मकबरे बनाने की इस पद्धति में किसी प्रकार की एकरूपता एवं समता तो होनी ही चाहिए थी। इस दृष्टिकोण के आधार पर हमें तथाकथित हुमायूँ, अकबर और मुमताज़ के मकबरों की परस्पर तुलना करने दीजिए। हुमायूँ कठिनाई से भारत में पुनःस्थापित हुआ ही था कि छः मास बाद उसकी मृत्यु हो गई। अतः इसका बहुत बड़ा साम्राज्य होने की शेखी नहीं बघारी जा सकती। किन्तु फिर भी दिल्ली में उसका कथाकथित मकबरा एक बड़े भारी प्रासाद-सदृश ही है। अकबर जो मुगलों में सर्वाधिक शक्तिशाली माना जाता है, सिकन्दरा में उसका मकबरा तुलनात्मक दृष्टि से बहुत ही साधारण है। शाहजहाँ की द्वितीय पत्नी मुमताज़ तथा उसकी सहस्रों रखेलों में से एक, सर्वोत्तम मकबरेवाली है। भव्यता और वैभवपूर्णता में ताजमहल, हुमायूँ का मकबरा तथा अकबर का मकबरा क्रमशः प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के हैं।

अब पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं कि जिनके ये भवन मकबरे कहे जाते हैं क्या इतिहास में भी उनका स्थान इसी श्रेणी में है? यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वे सब भवन राजप्रासाद हैं और पूर्णतया हिन्दू शैली के हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रश्न तो केवल जो कोई राजपूत प्रासाद या मन्दिर हाथ लग जाय उसी को शव गाड़ने के लिए उपयोग में लाने का है न कि कोई नया मकबरा निर्माण करने का। यही कारण है कि जिस व्यक्ति की स्मृति में वे मकबरे सँजोये हुए हैं न तो वे उसके महत्त्व के अनुरूप हैं और न ही उनमें कहीं एकरूपता या समता है। प्रत्येक मुस्लिम शासक की मृत्यु के बाद होनेवाला संक्षोभ और परस्पर विनाशकारी संघर्ष से भी किसी प्रकार के विशेष मकबरे के निर्माण की सम्भावना समाप्त हो जाती है। किसी का भी कोष पर एकाधिकार नहीं रहा, और यदि रहता तो भी उत्तराधिकार का युद्ध जीतने की अपेक्षा वह अपने मृत पूर्ववर्ती को गाड़ने के निष्फल भावुकतापूर्ण कार्य पर अपव्यय का कष्ट क्यों उठाता? भवन-निर्माण का निरीक्षण-परीक्षण कौन और किस प्रकार करता?

परस्पर विरोधी बातों, भ्रांत कल्पनाओं और असंगतियों के ताने-बाने से ताज-कथा का जो पट बुना गया है, उसमें केवल एक ही विशेष उल्लेखनीय तत्त्व ऐसा है जो आधुनिक या मध्ययुगीन वर्णनों और जो मुस्लिम इतिहासकारों अथवा गैर-मुस्लिम इतिहासकारों की रचनाओं में सदैव एक ही रूप रखे हुए है, वह निर्विवाद एवं प्रश्नरहित विवरण है, 'ताज' के स्वामित्व के विषय में कि वह मानसिंह के पौत्र जयसिंह का था। वहीं से वर्तमान जयपुर राज्य-परिवार का निर्गमन हुआ था।

यह भी ध्यान में रखा जा सकता है कि नई दिल्ली का तथाकथित हुमायूँ का मकबरा अभी भी 'जयपुर सम्पत्ति' का भाग माना जाता है। इसलिए जयपुर के हिन्दू शासकों के दिल्ली में जो प्रासाद थे, उनमें से यह एक था। उसी परिवार का आगरा में ताजमहल नामक प्रासाद था। केवल ताजमहल की भव्यता, विशालता तथा सौन्दर्य दिल्ली के स्मारक से बढ़कर होने के अतिरिक्त शिल्पकला की दृष्टि से दोनों समान ही हैं।

शाहजहाँ द्वारा अपने अधिकार में लिये जाने से पूर्व 'ताज'-सम्पत्ति पर जयसिंह का निर्विवाद स्वामित्व नितान्त निर्णयात्मक विवरण है। वास्तव में विशाल रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित प्रमाणों में 'ताज'-सम्पत्ति पर जयसिंह का स्वामित्व

सबसे बड़ी मेखला अथवा धुरी है जिस पर सारा मामला प्रचलित धारणानुसार शाहजहाँ द्वारा मूल रूप में बदलकर पूर्वकालिक राजपूत उद्गम की ओर उन्मुख हो जाता है।

कोई भी न्यायाधिकरण जहाँ सांसारिक ज्ञानवान् व्यक्ति पीठासीन हों और जो अपने निर्णय को मनगढ़न्त कल्पनाओं से प्रभावित नहीं होने देते हों, वे ताज-सम्पत्ति पर जयसिंह के स्वामित्व की सर्वसम्मत बात को तुरन्त ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रूप में देखेंगे। इतिहास के विद्वानों ने इसी स्थल पर विशेष रूप से भूल की है। यह मानते हुए कि शाहजहाँ ने वास्तव में ही मकबरा बनवाया था, तब वे पूर्णतया कल्पना करते गए कि उसने केवल जयसिंह से भूमि का एक खाली टुकड़ा ही लिया था। किन्तु अत्यन्त सूक्ष्म विवेचन के आधार पर हम जान चुके हैं कि ताज की कथा आदि से अन्त तक मनगढ़न्त है। इसलिए इसका एकमेव निष्कर्ष यही है कि शाहजहाँ ने पूर्वनिर्मित प्रासाद को अधिकृत कर मकबरे के रूप में उसका दुरुपयोग किया।

यद्यपि हम यह पर्यवेक्षण कर चुके हैं कि जयसिंह का स्वामित्व इस विषय का समाधान कर देता है तदपि ऐसे अनेक अन्य प्रमाण भी हैं जो हमारी इस धारणा को निश्चित बल प्रदान करते हैं कि ताजमहल का निर्माण राजपूत प्रासाद के रूप में हुआ था। ताजमहल के भीतर की सारी चित्र-यवनिका भारतीय पुष्प शैली के आधार पर है।

यदि शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया होता तो उसने कभी यह अनुमति नहीं दी होती कि जिस मकबरे में उसकी पत्नी दफन है, उसकी चित्र-यवनिका प्रमुख रूप से भारतीय पुष्प-शैली पर आधारित हो। यह तर्क नितान्त असंगत है कि ताजमहल पर कार्यरत कर्मचारी हिन्दू थे। अतः इसकी सजावट में हिन्दू पुष्प शैली सम्मिलित हो गई। यह स्मरण रखना चाहिए कि वादक सदा गृहस्वामी की आज्ञानुसार ही अपनी धुनें बजाया करता है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि जब दिवंगत आत्मा की शान्ति का प्रश्न है तब ताजमहल के रूपांकन में तिरस्कृत सम्प्रदाय के लक्षणों तथा पुष्पों का ताज की अलंकृत सजावट में समावेश कभी भी अपेक्षित नहीं हो सकता था। वास्तव में मकबरे को सजावट के साथ बनवाने तथा उसमें शानदार नमूने बनाने का सम्पूर्ण विचार ही इस्लामी सम्प्रदाय तथा परम्परा के अनुसार घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। किन्तु शाहजहाँ के सम्मुख इनको उनमें

बने रहने देने के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही नहीं रह गया था, क्योंकि उसने तो 'मूर्तिपूजक' का महल अपने अधीन किया था।

जो लोग यह तर्क देते हैं कि मुसलमान शासकगण अपने स्मारकों में हिन्दू शैली और कला को स्वतन्त्रतापूर्वक अपनाने देते थे, उनको यह अवश्य विचार करना चाहिए कि बीसवीं शताब्दी में भी जबकि रूढ़िवादिता की धार कुन्द हो गई है, मुस्लिमों का कोई भी वर्ग अपना मकबरा या मस्जिद मन्दिर की शैली में बनाने की कल्पना अथवा साहस नहीं करेगा।

हिन्दू कर्मचारियों की नियुक्ति के आधार पर ताज के अलंकृत नमूनों में हिन्दू रूपांकन एवं पुष्प-सजावट की विद्यमानता को तर्कसंगत ठहराना दूसरे आधार पर भी निरर्थक है। प्रचलित मुस्लिम अभिलेखों (जिन्हें हमने काल्पनिक सिद्ध कर दिया है) में ताज के डिजाइनर तथा कलाकारों के रूप में मुस्लिम नामों की भी सूची प्रस्तुत की है, हिन्दू कलाकृतियों के प्रति उनका प्रेम अथवा रुझान होने का तो प्रश्न ही नहीं। यह तो अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासक का प्रथम एवं प्रमुख उद्देश्य भारतीय मन्दिर, कलाकृतियाँ, लेख, शास्त्र, संस्कृति और धर्म को नष्ट करना था। ऐसे शासक अपने स्मारकों में भारतीय कला के नमूनों और लक्षणों को किस प्रकार सहन कर सकते थे अथवा उनको प्रोत्साहन दे सकते थे? यह सब विचार हमको यह विश्वास दिलाने में समर्थ होने चाहिए कि इतिहासकारों तथा शिल्पज्ञों ने सामान्य रूप से ही व्यर्थ की धारणा पर मध्यकालीन मस्जिदों और मकबरों को मौलिक मुस्लिम निर्मिति समझकर उन भवनों के मूल को खोजने की आवश्यकता ही नहीं समझी।

जो सबसे बुरी बात है वह यह कि जब इन इतिहासज्ञों और शिल्पज्ञों को असंख्य उदाहरणों द्वारा अपनी भ्रान्ति का ज्ञान हुआ कि लिखित दावों के विपरीत ये भवन उन लोगों की मृत्यु से भी पहले विद्यमान थे, जिनके ये मकबरे समझे जाते हैं, तब उन्होंने अनुमानतया यह स्पष्टीकरण दे दिया कि मृतक ने स्वयं ही मरणपूर्व अपनी कब्र खुदवा ली थी, इस प्रकार माण्डू (मध्य भारत) में होशंगशाह का मकबरा, सिकन्दरा में अकबर का मकबरा और दिल्ली में गियासुद्दीन तुगलक का मकबरा—ये उन बादशाहों द्वारा स्वयं बनवाए कहे जाते हैं जो किसी को भी फाँसी पर लटकाने के लिए कभी भी तैयार रहते थे, या जीवित रहने पर मनमर्जी करते थे तथा सोचते थे कि मैं ही एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो कभी मरनेवाला नहीं। यह

विश्वास करना भद्देपन की पराकाष्ठा है कि मृतक बादशाह ने स्वयं अपने मकबरे बनवाए। इससे तुच्छ और उपहासास्पद और कुछ नहीं हो सकता। सीधा, सत्य और अकाट्य स्पष्टीकरण यह है कि राजपूतों के बनवाए हुए पुराने भवनों को मुस्लिम बादशाहों को दफनाने के उपयोग में लाया गया। क्योंकि यह व्यावहारिक दृष्टि से उचित नहीं मालूम होता था कि जो अपने जीवनपर्यन्त शासन करते रहे उनके उत्तराधिकारियों द्वारा कोई उचित स्थान उनके दफनाने के लिए नहीं दिया गया। इसलिए उन उत्तराधिकारियों ने झूठे विवरण लिखकर रख दिए कि उन्होंने अपने पूर्वजों के मकबरे बनवाए जैसा कि जहाँगीर दावा करता है कि उसने अकबर का मकबरा बनवाया। इतिहासज्ञों और शिल्पज्ञों को अब पता लग गया है कि वे उल्लेख जहाँगीर और उस जैसे अन्यों के कि उन्होंने अपने पूर्वजों के मकबरे बनवाए, झूठे हैं और अपनी ही कथा को सत्य सिद्ध करने के लिए स्वयं ही भ्रमपूर्ण मन्तव्य प्रस्तुत कर दिए। अब समय आ गया है कि ऐसी विकृतियों एवं दोषों को, वे चाहे जानबूझकर किए गए हों अथवा सहज ही बन पड़े हों, उनको भारतीय इतिहास की पुस्तकों में से निकाल दिया जाना चाहिए।

ताजमहल की आलंकारिक रेखाओं में यत्र-तत्र कमल छितरे पड़े हैं, हिन्दुओं के लिए कमल न केवल परम पवित्र हैं अपितु हिन्दू आलंकारिक कला के वे अभिन्न अंग हैं। उनकी विद्यमानता इस बात पर पुनः बल प्रदान करती है कि ताजमहल का मूल राजपूती ही है।

जयसिंहपुर नगर की चारदीवारीवाली दीवार भी बिना किसी व्यवधान के लगातार ताजमहल के चारों ओर विद्यमान है, यदि शाहजहाँ ने ताजमहल को मकबरे के रूप में बनवाया होता तो उसकी चारदीवारी शान्ति एवं एकान्तता की दृष्टि से नगर की चारदीवारी से सर्वथा अलग और नई होती। क्योंकि ताजमहल चारदीवारी से सटा हुआ है अतः यह तथ्य हमारी इस खोज की पुनर्पुष्टि करता है कि ताजमहल प्रासाद अथवा मन्दिर के रूप में नगर का ही एक भाग है। ताजमहल (प्रासाद अथवा मन्दिर) का मुख्य प्रवेश-द्वार भी जो आजकल ताजगंज कहा जाता है उसी विशाल द्वार की ओर से ही है। वाराणसी में काशी विश्वनाथ नाम से जाना जानेवाला प्रसिद्ध शिव मन्दिर नगर का ही एक भाग है और उसका प्रवेश-द्वार नगर के अन्दर से ही है।

घाट और नावों के उतरने के स्थानों की ताज के निकट विद्यमानता भी इसी

अवश्यम्भावी निष्कर्ष की ओर संकेत करती है कि ताजमहल प्रासाद ही था। २२ भूगर्भस्थ कमरे जहाँ मकबरे के लिए अनावश्यक हैं वहाँ प्रासाद में उनकी नितान्त आवश्यकता है। यही बात बसई स्तम्भ तथा अनेक संलग्न छत्रों, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, के लिए भी लागू होती है।

जबकि सब विवरण इस बात पर सहमत हैं कि शाहजहाँ के इसको लेने से पूर्व 'ताज'-सम्पत्ति का स्वामी जयसिंह था, किन्तु वे इसके अधिग्रहण के सम्बन्ध में एकमत नहीं हैं। हम देख चुके हैं कि शाहजहाँ का दरबारी इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद लिखता है कि ताजप्रासाद का विनिमय शाहजहाँ के उपनिवेश में कहीं एक और अच्छे भूखण्ड के लिए किया गया था। किन्तु बी. पी. सक्सेना अपनी पुस्तक[1] में लिखते हैं कि "भूखण्ड नाममात्र के मूल्य पर अधिग्रहण किया गया।" यह उल्लेखनीय है कि अब्दुल हमीद यह नहीं लिख पाया कि विनिमय में कौन-सा भूखण्ड दिया जैसे कि सक्सेना यह नहीं लिख पाए कि कितना नाममात्र का मूल्य चुकाया गया।

शाहजहाँ को प्रक्षिप्तांश अथवा झूठा वर्णन लिखने के लिए आदेश देने में किसी प्रकार का संकोच नहीं था। यह बात इतिहासकार जानते हैं। शाहजहाँ जब राजकुमार था तब उसने अपने शासक पिता जहाँगीर से विद्रोह किया था। अत: जहाँगीर की आज्ञानुसार लिखवाए गए जहाँगीर के शासन के वर्णनों में शाहजहाँ के विषय में अत्यन्त निकृष्ट तथा अपशब्दों का प्रयोग किया गया है। जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा उस समय आधिकारिक रूप में प्रसारित उस इतिहास की प्रतिलिपियाँ सभी दरबारियों के पास विद्यमान थीं। इस प्रकार का विनाशक इतिहास, शाहजहाँ के शासन प्रारम्भ करने के उपरान्त भी दरबारियों के पास रहे, यह उसको सह्य नहीं था। इसलिए उसने जाली जहाँगीरनामा लिखने का आदेश दिया और उसे अपने पिता के आदेश पर लिखे गए इतिहास के स्थान पर प्रसारित करवाया। अत: यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि यदि रहस्यमय ताजमहल बनाने का श्रेय प्राप्त करने के लिए शाहजहाँ की प्रेरणा और प्रोत्साहन से झूठा एवं बनावटी विवरण लिखवा लिया हो।

प्राय: यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि पश्चिमी एशिया में कुछ ऐसे

---

१. हिस्ट्री ऑफ दि शाहजहाँ ऑफ देहली, लेखक प्रो. बी. पी. सक्सेना।

स्मारक हैं, जो मध्यकालीन भारत के समरूप यथा तथाकथित कुतुबमीनार और ताजमहल के समान हैं, इसलिए भारत के वे मुसलमान शासक ही हो सकते हैं जिन्होंने इन स्मारकों का निर्माण कराया। इस विचार के पोषक यह सहज ही भुला देते हैं कि मुहम्मद गजनी, तैमूरलंग तथा अन्य आक्रामकों ने अभिलेखों में यह स्वीकार कर रखा है कि भारत में प्रवेश करते ही भारतीय नदियों के घाट देखकर ही उनकी आँखें फटी-सी रह गईं। मन्दिरों और प्रासादों का तो कहना ही क्या। भारतीय निपुणता एवं श्रम की तुलना में पश्चिमी एशिया की भवन-निर्माणकला तो प्राथमिक अवस्था में ही थी। जब भारतीय क्षत्रियों ने पश्चिमी एशिया पर अधिकार किया तो उस समय विस्मयकारी स्मारकों का निर्माण किया गया।[१] किन्तु उनके शासन में शिथिलता के कारण विद्रोह का युग प्रारम्भ हो गया। विस्तृत रूप से कोलाहल और विध्वंस के कारण अशान्ति फैली जिसमें समस्त कला और शिक्षा का विनाश हो गया। अपने भूखण्ड में जीवित रहने का साधन अनुपलब्ध होने के कारण और कोई भी कार्य शान्तिपूर्वक सम्पन्न न हो पाने के कारण बड़े-बड़े सरदारों के नेतृत्व में बड़े दलों के रूप में भारत जैसे समृद्ध देशों पर ललचाई आँखें दौड़ाईं।

अपने आत्मचरित में तैमूरलंग ने लिखा है कि हिन्दुओं का संहार करते समय वह पत्थरों के कारीगर तथा भवन-निर्माण से सम्बन्धित अन्य कर्मचारी एवं कलाकारों को छोड़ दिया करता था ताकि उन लोगों को पंजाब तथा अन्य उत्तरी क्षेत्रों के मार्ग से पश्चिम एशिया में ले जाकर उनसे जैसे उसने भारत में विशाल स्मारक देख हैं, उनके समान भव्य मकबरे और मस्जिदें बनवाई जा सकें।

क्योंकि तैमूरलंग तथा अन्य आक्रमणकारी एक समान पद्धति का अनुसरण करते रहे इसलिए तैमूरलंग का पर्यवेक्षण उस पद्धति का परिचायक है जिसमें समस्त मध्यकालीन मुस्लिम आक्रमणकारी सैकड़ों और सहस्रों की संख्या में भारतीय शिल्पज्ञों को पश्चिम एशिया भेजकर उन्हें इस्लाम में परिवर्तित कर उन्हें वहीं बसाकर भारत से लूटे गए वैभव और उपकरणों के माध्यम से वे पश्चिमी एशिया में स्मारक-निर्माण के लिए उन्हें विवश करते थे।

---

१. लेखक की पुस्तक 'भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें' में एक विशिष्ट अध्याय में इस विषय पर विस्तार से चर्चा की गई है।

भारतीय इतिहास और शिल्पकला के विद्वान् तथा विद्यार्थियों को यह अनुभव करना चाहिए कि भारत-अरब शिल्पकला के सिद्धांत को विपरीततया लागू करने की आवश्यकता है। भारत के स्मारक भारत-अरब शैली की मुसलमानी नकल और नमूने पर बने होने की अपेक्षा अरब क्षेत्रों के स्मारक ही भारतीय नमूने पर भारतीय उपकरणों तथा धन की सहायता से भारतीय कलाकारों द्वारा बनाए गए थे। इससे भारतीय मध्यकालीन स्मारकों से पश्चिमी एशिया के देशों में पाए जानेवाले स्मारकों की समानता, यदि वह है तो, का स्पष्टीकरण हो जाता है।

उपरिलिखित साक्ष्य के आधार पर यह सिद्ध कर देने पर कि तथाकथित ताजमहल मूलतया मकबरा नहीं किन्तु मुस्लिम-पूर्व का प्रासाद है, यह खोज करना उपयुक्त होगा कि इसे किसने और कब बनाया। इस सम्बन्ध में कदाचित् १६३० के लगभग जयपुर राजघराने और फतेहपुर सीकरी नाम से ज्ञात स्थान के संस्थापक सीकरवाल राजपूतों के 'पोथीखाना' (अभिलेखागार) में प्राप्त अभिलेख कुछ प्रकाश डालने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उन अभिलेखों तक जिन लोगों की पहुँच है, वे उनको पढ़ सकते हैं। ऐसा प्रयत्न निश्चित ही फलदायक सिद्ध होगा। यहाँ तक कि मध्यकालीन इतिहास जो कि वर्तमान में भ्रामक और योजनाबद्ध षड्यन्त्र का जाल-सा बना हुआ है, उसके अनेक रहस्यों का भेदन भी करेगा।

जो यह समझते हैं कि ताजमहल भवन का नाम इसके नीचे दफन की गई मुमताज़ महल के नाम पर है, वे भूल करते हैं। प्रथमतः, वह उसके अन्दर दफन ही न हो। द्वितीयतः, उसका नाम मुमताज़ महल नहीं अपितु मुमताज़-उल-जमानी था। तृतीयतः, फारसी लिपि में मुमताज के नाम का अन्तिम अक्षर 'ज़' है जबकि ताज का 'ज', इसलिए ताज शब्द मुमताज़ से लिया गया नहीं है। उस धनी विधवा के समान जिसकी सम्पत्ति लूट ली गई हो, उसकी समस्त शोभाकारक वस्तुओं से हीन अपने नग्न रूप में, करुण तथा विषण्ण ताजमहल आज भी भव्य दिखाई पड़ता है। अपनी राजोचित भव्यता के दिनों में तो यह कैसा अनुपम, अवर्णनीय भव्यता एवं रूप का समुच्चय प्रतीत होता होगा, जबकि यह जगमगाती अचल वस्तुओं, साज-सज्जा तथा भूषणों—यथा दुर्लभ पुष्पों से पूरित उद्यान, रतन-द्वार, सोने की रेलिंग, रत्नजड़ित संगमरमर की जालियाँ तथा ज्योतित मयूर-सिंहासन—से सुशोभित था। इसकी दीवारें बलशाली राजपूत शासक परिवार की महानता से प्रतिध्वनित होती रहती थीं।

यात्रियों का जो समूह आगरा रेलवे स्टेशन से अथवा बस अड्डे से दिन-रात ताज को देखने आता-जाता रहता है वह एक नहीं अनेक प्रकार से वास्तव में 'भयंकर' है। ऐसे दर्शकों द्वारा अल्प मात्रा में नहीं अपितु विशाल परिमाण में भ्रामक ताजकथा का प्रसार होता है। प्रचलित विवरण के आधार पर ताज के सम्बन्ध में सामान्य पर्यटक जब तक ताज पर पहुँचता है पहले ही वह मुग्धावस्था को प्राप्त हो चुका होता है। उसकी विचार-शक्ति क्षीण हो जाती है और वह विचारशक्ति तब और भी क्षीण हो जाती है जब वेतनभोगी अथवा स्वयंसेवी सूचना-प्रदाता तोते की भाँति रटे हुए वाक्यों द्वारा उसके कानों को भर देता है।

पर्यटक इतना पूर्णतया व्यग्र, मन्दमति, भ्रमित, त्रस्त और मुग्ध हो जाता है कि वह ताजमहल के भूगर्भ के मकबरे, धरातल की नकली कब्रें और नकली कब्रों के ऊपर पहली मंजिल में २० कक्ष और अष्टकोणीय संगमरमर भवन के विषय में बिलकुल ही भूल जाता है। यह मोती-सा श्वेत संगमरमर का राजपूती प्रासाद था। केवल मात्र परिवर्तन जो शाहजहाँ ने किए लगते हैं, वे हैं मेहराबों की सपाट दीवारों पर कुरान की आयतें खुदवाना, भूगर्भ में दफन के लिए टीला बनवाना तथा मयूर-सिंहासन-कक्ष में नकली कब्र बनवाना। प्रचलित विश्वास के विपरीत, कुरान की आयतें बहुत थोड़ी, वह भी सपाट दीवारों पर कुछ ही मेहराबों पर खोदी गई हैं।

ताज से वापस आनेवाले यात्री सामान्यतया यही धारणा बनाकर आते हैं कि वहाँ भूगर्भ में कब्र के लिए एक कक्ष है और एक कक्ष उसके ऊपर नकली कब्र के लिए है। यदि उन्हें यह बताया जाए कि तीनों संगमरमर के फर्शों पर कुल मिलाकर २३ से भी अधिक कमरे हैं जो कि प्रासादीय विशालता के अनुरूप हैं, तो वे आश्चर्य व्यक्त करने लगते हैं।

किन्तु यही सब नहीं है। संगमरमर के चबूतरे के नीचे यमुना के समतल तक कदाचित् ३ और मंजिलें हैं जिनमें अनेक कमरे हैं।

जैसे ही कोई व्यक्ति नगर से ताज की ओर प्रस्थान करता है ताज परिसीमा यद्यपि बाहरी प्रवेश-द्वार से भी आधा मील दूर रहती है तदपि उसे मार्ग से दाईं ओर केवल दस गज की दूरी पर लाल पत्थर का स्तम्भ पृथ्वी में आधा गड़ा हुआ स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पाषाण-स्तम्भ से ऊँचे उठते हुए भू-भाग पर उभरती हुई एक दीवार देखी जा सकती है जो डामर की सड़क के साथ विषम कोण पर ओझल हो

जाती है। दोनों ओर आसपास बने घास से दबे मिट्टी के अनेक टीले आज भी अपनी कथा कहते हुए दीख पड़ते हैं। जिस समय ताज राजप्रासाद के रूप में था और उसे मकबरे के रूप में परिणत नहीं किया गया था, उस समय ये टीले स्पष्टतया सुरक्षात्मकता के प्रतीक थे।

उक्त स्तम्भ यह प्रकट करता है कि बुर्जों से युक्त एक अन्य सुरक्षात्मक दीवार से ताज के चारों ओर का विस्तृत क्षेत्र परिवेष्टित था। यह दीवार ताज के चारों ओर खवासपुरा और जयसिंहपुरा बस्तियों से लगी हुई होगी। कहने का अभिप्राय है कि ताज तो शासक का प्रासाद था और उसके चारों ओर नागरिकों के आवास थे। स्तम्भ के दोनों ओर मलबा, जिससे कि यह दीवार दब गई है, साफ करवाकर इस क्षेत्र में खुदाई होनी चाहिए।

बाहरी प्रवेश-द्वार पर नगर से डामर के मार्ग द्वारा जैसे ही कोई व्यक्ति स्वागत-आयतन पर पहुँचता है, वहाँ पर लाल पत्थर के अनेक मण्डप हैं। यह सब यह प्रकट करता है कि मकबरे के रूप में निर्माण से दूर ताज प्राचीन आगरा नगरी का केन्द्रीय प्रासाद था।

शाहजहाँ स्वभावतया इस भव्य भवन को राजपूती आवास के रूप में सहन न कर सका तो उसने निश्चय किया कि उसे आवासीय प्रयोजन के लिए सर्वथा अनुपयुक्त बना दिया जाए और उसने इसको मकबरे के रूप में परिवर्तित कर दिया, अतः राजपूत प्रासादों एवं मन्दिरों को मकबरों में बदल देने की भारत में मध्यकालीन १०० वर्ष की पुरानी परम्परा में ही ताजमहल भी एक कड़ी है। यही सब निकटतम फतेहपुर सीकरी में भी दोहराया गया।

प्रचलित ताज-कथा में कुछ लोगों के मस्तिष्क इतनी बुरी तरह भ्रमित हो चुके हैं कि वे शाहजहाँ के मुमताज़ के प्रति प्रेम को ही ताज के निर्माण का कारण मानकर आत्मतुष्ट रहना चाहते हैं, अपेक्षया इसके कि ताज के मूल के सम्बन्ध में वास्तविक विवरण को स्वीकार करें। वास्तव में ताज का मूलतया राजप्रासाद होना अधिक शोभनीय और सम्भाव्य है अपेक्षया शोकजनक मकबरे के। किन्तु जो इतिहास की अपेक्षा भ्रम को तथा सत्य की अपेक्षा रूढ़ि को अधिक श्रेयस्कर समझते हैं उनका न कोई उपचार है और न उनसे कुछ कहा जा सकता है। ऐसे लोगों में सामान्य पाठक तथा वे जो स्वयं को इतिहास का अध्येता, विशेषज्ञ और विद्वान् मानते हैं, सम्मिलित हैं। अन्य उन्मुक्त मस्तिष्कवाले व्यक्ति तो पिछले पृष्ठों

में दिए गए साक्ष्य पर अवश्य ही गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे।

किन्तु प्रस्तुत पुस्तक को उस भवन के इतिहास के सम्बन्ध में जिसे वर्तमान में ताजमहल कहा जाता है, अन्तिम प्रमाण नहीं माना जाना चाहिए। वास्तव में नई दिशा की ओर यह प्रथम प्रयास है। जो खोजने में हम सफल होने का दावा करते हैं वह यह कि ताजमहल सत्रहवीं शती का मुस्लिम मकबरा नहीं अपितु प्राचीन हिन्दू भवन है। इसका निर्माण मूलतया मन्दिर अथवा प्रासाद अथवा मन्दिर-प्रासाद परिसर के रूप में हुआ इस विषय में हम स्पष्ट नहीं हो पाए, क्योंकि इन भव्य भवन के प्रत्येक कोने को देखने के लिए न तो हमारे पास साधन थे और न ही अधिकार।

पाठकों ने ध्यान दिया होगा कि हमने अपनी प्रथम पुस्तक 'ताजमहल राजपूत प्रासाद था' की भूमिका में अस्पष्ट अनुमान प्रकट किया था कि ताजमहल चौथी शती का हिन्दू प्रासाद हो सकता है। जब हमने बादशाहनामा में यह स्वीकृति पढ़ी कि शाहजहाँ ने यह भवन, जो मानसिंह का भवन कहा जाता था, उसके पौत्र जयसिंह से अधिग्रहण किया तो हमें अपने अनुमान की सत्यता प्रतीत हुई। यद्यपि इससे यह स्पष्ट नहीं हो पाया कि किस हिन्दू शासक ने इस भवन को बनवाया था।

कालान्तर में हमें बटेश्वर अभिलेख देखने को मिला जिसमें उल्लेख है कि ११५५ के लगभग आगरा के आसपास भगवान् शिव का स्फटिक श्वेत मन्दिर बनाया गया।

अब यह अन्य शोधकर्ताओं तथा शासकीय पुरातत्त्व विभागवालों का कर्तव्य है कि वे ताजमहल के हिन्दू इतिहास को खोज निकालें। हमें इस बात का पूर्ण सन्देह है कि शाहजहाँ ने ताजमहल के हिन्दू मूल से सम्बन्धित मूल्यवान् प्रमाणों को संगमरमर के चबूतरे के नीचेवाली मंजिल में, जिसमें कहा जाता है कि मुमताज़ की वास्तविक कब्र है, दबा दिया है। कीन ने लिखा है कि जो दो सीढ़ियाँ नीचे की ओर जाती हैं उनको अवरुद्ध कर दिया गया है। सौभाग्य से अब उस मंजिल के नदी-तट की ओर की सीढ़ियों से जाया जा सकता है। किन्तु उस मंजिल का मुख्य भाग सीधे संगमरमर के चबूतरे के नीचे होने के कारण उसे शाहजहाँ ने ईंट और चूने से बन्द करवा दिया है।

यदि शाहजहाँ को कुछ छिपाना नहीं था तो वह संगमरमर के चबूतरे के नीचे यमुना के स्तर तक की मंजिल और सम्भवतया भूतल के नीचे की भूगर्भस्थ

मंजिल को बन्द नहीं करवाता।

हमारी खोज कि ताजमहल शाहजहाँ-पूर्व का हिन्दू भवन था, को कोई यह कहकर अस्वीकार नहीं कर सकता कि हम दृढ़तया शाहजहाँ-पूर्व के इतिहास की स्थापना में असमर्थ रहे हैं।

हमारा यह निष्कर्ष कि शाहजहाँ ताजमहल का निर्माता नहीं है उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि किसी न्यायाधिकरण का वह निष्कर्ष जो किसी व्यक्ति को किसी अन्य व्यक्ति की सम्पत्ति की चोरी के अपराध में दण्डित करता है। न्यायालय का निर्णय केवल इस बात पर अमान्य नहीं हो सकता, क्योंकि न्यायालय यह पता लगाने में समर्थ नहीं हो पाया कि चोरी की गई सम्पत्ति का स्वामी कौन है? ताजमहल के निर्माता की खोज करना हमारे अन्वेषण का दूसरा चरण होगा किन्तु उस प्रचलित विश्वास को कि शाहजहाँ ताजमहल का निर्माता था अमान्य करना हमारी खोज का वह प्रथम महत्त्वपूर्ण चरण है जो भावी खोज को उचित दिशा का संकेत देता है।

हम संसार को न केवल इस बात से सावधान करने में ही समर्थ हुए हैं कि जो शाहजहाँ को ताजमहल का निर्माता मानते हैं वे बुरी तरह से मूर्ख बनाए गए हैं, अपितु हम यह संकेत करने में भी समर्थ हुए हैं कि ताजमहल का निर्माता कोई पूर्ववर्ती हिन्दू शासक था। आगामी खोज के लिए जो अत्यन्त मूल्यवान् सहायता हमने प्रदान की है वह है हमारा उस प्रमुख स्थान की ओर स्पष्ट संकेत कर देना जो ताजमहल के मूल के सम्बन्ध में रहस्य को बनाए रखने के लिए छिपा दिया गया था।

भावी शोधकार ताजमहल के संगमरमर के चबूतरे के पीछे लाल पत्थर के चबूतरे पर जाएँ, वहाँ दोनों छोरों पर उन्हें नीचे उतरने की सीढ़ियाँ दिखाई देंगी, उन दोनों में से किसी भी सीढ़ी के नीचे की मंजिल पर पहुँचा जा सकता है।

इसके भीतर का दृश्य विस्मयकारी है। नदी की ओर पहले २२ राजकीय कक्षों की पंक्ति है जिसकी दीवारों तथा छतों पर आज भी प्राचीन हिन्दू चित्रकला विद्यमान है। नदी की ओर खुलनेवाली बड़ी-बड़ी खिड़कियों को शाहजहाँ द्वारा बेतरतीब ईंट और चूने से बन्द करवा दिया गया है। यह कार्य इतनी बेरुखी से किया गया है कि ईंट और चूने को समतल करने के लिए प्लास्टर भी नहीं किया गया और कहीं-कहीं पर मचान के छिद्र भी विद्यमान हैं। यह दृश्य विपरीतता की

चरम सीमा पर है, क्योंकि ३०० लम्बी शताब्दियों तक ऐतिहासिक कल्पना शाहजहाँ को भव्य, स्फटिक श्वेत, कोमल संगमरमर का स्मारक-निर्माता का श्रेय देती आ रही है, किन्तु ये छिपे हुए कक्ष इस बात की पोल खोल देते हैं कि वह क्रूर, लुटेरा और पापी था जो सुन्दर भवन की मंजिलों को भी दीवारों से बन्द करने में नहीं हिचकिचाया, यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि जब भारत विदेशी शासक के अधिकार में था तो किस प्रकार भारतीय इतिहास को उलटा-सीधा किया गया।

कक्षों के आकार-प्रकार १२ से १५ फुट चौड़ा और २० से २२ फुट लम्बा, इस प्रकार अलग-अलग है। ऊँचाई १२ फुट हो सकती है। शाहजहाँ द्वारा विशाल झरोखों को दीवार द्वारा बन्द कर दिए जाने के कारण ये कक्ष अन्धकारयुक्त हो गए हैं। सीढ़ियों के छोरों पर के दो लौह द्वार जब खुलें तभी वहाँ कुछ प्रकाश का प्रवेश हो सकता है।

शाहजहाँ ने इस कार्य में इतनी सावधानी बरती कि लाल पत्थर के चबूतरे की ओर से प्रविष्ट होने पर सीढ़ियों के मुहाने पर लाल पत्थर की शिलाएँ रखकर द्वार बन्द करा दिए। कालान्तर में ब्रिटिश शासन के दिनों में उन शिलाओं को हटा दिया गया। कक्षों की उस पंक्ति की जो नदी के बराबर है लम्बाई लगभग ३०० फुट होगी। भीतर की ओर कक्षों के साथ सटा उतना ही लम्बा बरामदा है जिसे शाहजहाँ की असभ्यता ने अन्धकारयुक्त कर दिया है। वह बरामदा लगभग १० फुट चौड़ा और ३०० फुट लम्बा है। उसका भीतरी किनारा वहाँ पर समाप्त होता है जहाँ पर ऊपर के बरामदे की संगमरमर की चिनाई आरम्भ होती है। उस दीवार पर बरामदे के पूर्वी और पश्चिमी द्वार पर दो द्वार हैं। ये संगमरमर की भूगर्भस्थ मंजिल की ओर जाते हैं। उन दोनों द्वारों को भी बड़ी बेतरतीबी से ईंट और चूने से बिना प्लास्टर के बन्द कर दिया गया है। उनकी बाहरी परत गिरकर ढेर बन गई है, पर चूँकि प्राचीन प्राचीर बड़ी मोटी थी इसलिए कुछ श्रमिकों को लगाकर भराव को हटा छिपाई हुई और बन्द की गई मंजिल का मार्ग खुल सकता है।

मुझे प्रबल सन्देह है कि उन्हीं कक्षों में ताजमहल के हिन्दू मूल के प्रमाण को छिपाकर रखा गया है। यह सम्भव है कि शाहजहाँ ने संस्कृत शब्दों एवं हिन्दू प्रतिमाओं को ताजमहल से उखाड़कर उन निचली मंजिलों में भर दिया हो और इस प्रकार उन प्रमाणों को छिपाकर निचली मंजिलों को बन्द कर दिया हो।

भारत सरकार का पुरातत्त्व विभाग किस प्रकार शिथिल रहा यह उसका स्पष्ट उदाहरण है। अपने प्रशासकीय केन्द्र से बहुत दूर खुले जंगली मैदानों में खुदाई का कार्य करने में वे करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष व्यय करते हैं किन्तु अभी तक भी ताजमहल के लाल पत्थर के बरामदे से नीचे को भूतल तक कदाचित् उससे भी नीचे नदी के जल-स्तर तक की मंजिलों को खोलने में आनाकानी करते जा रहे हैं। उपरिलिखित दो द्वारों में लगी ईंटों को उखाड़ने में सौ रुपए भी कदाचित् व्यय न हों और तब भी स्वयं ताजमहल के सम्बन्ध में और इतिहास के अन्य पहलुओं से सम्बन्धित छिपे हुए शिलालेख, पाण्डुलिपि, कोश, प्रतिमाएँ और अन्य कक्षों तथा मंजिलों की ओर जानेवाली छिपी हुई सीढ़ियाँ आदि अनेक बहुमूल्य प्रमाण उपलब्ध होंगे।

हमारी यह खोज कि ताजमहल १७वीं सदी का इस्लामिक स्मारक होने से दूर यह कहीं अधिक प्राचीन हिन्दू प्रासाद है, पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर रहा है। अनेक पर्यटन अधिकरण और गाइडों ने अब ताजमहल को यौन-प्रेम का प्रतीक बताना बन्द कर दिया है। विशेष आग्रह करने पर अब गाइड लोग प्रचलित परम्परा के विपरीत हमारी खोज के विषय में भी बता देते हैं।

एक और उल्लेखनीय प्रतिक्रिया पाकिस्तान के उर्दू दैनिक नवा-ए-वक्त के फरवरी १९७४ के एक अंक में प्रकाशित एक विवरण से व्यक्त हुई है। उस विवरण में आशंका व्यक्त की गई है कि भारत सरकार ताजमहल का नाम अशोक महल के रूप में परिवर्तित करने का विचार कर रही है। यह तथ्य उस समय प्रकट हुआ जब पाकिस्तान की राष्ट्रीय असेम्बली में एक सदस्य ने पाकिस्तान सरकार से आग्रह किया कि ताज के नाम-परिवर्तन के सम्बन्ध में भारत सरकार के पास शिकायत दर्ज करें।

स्पष्टतया भ्रान्तियों का पुलिन्दा इस सारे के विषय में फैला हुआ है। प्रथमतः, भारत सरकार ने ताज के नाम-परिवर्तन के विषय में कभी सोचा ही नहीं, द्वितीयतः, भारत सरकार स्वयमेव ताजमहल का नाम अशोक महल नहीं रख सकती जब तक कि वह सुनिश्चित खोज द्वारा यह निश्चित नहीं कर लेती कि ताजमहल का निर्माण प्राचीन सम्राट् अशोक ने किया था। तृतीयतः, यदि ताजमहल का नाम परिवर्तित करना ही हो तो पाकिस्तान का इससे कुछ लेना-देना नहीं, क्योंकि ताजमहल भारतीय सम्पत्ति है। चतुर्थतः, ३०० वर्ष पुरानी धारणा कि ताजमहल

शब्द इस्लामिक है, क्योंकि इसका आधार मुमताज़ है, स्वयं में असंगत है। मुमताज़ शब्द का अन्त 'ज़' से होता है जबकि ताज का 'ज' से, जो इस बात का स्पष्ट संकेत है कि ताज का मुमताज़ से कोई सम्बन्ध नहीं है। सर्वाधिक, यह तो सन्देहास्पद है कि ताजमहल के अन्दर मुमताज़ दफन भी है कि नहीं, क्योंकि सुदूर बुरहानपुर में उसका मकबरा सही-सलामत है और इसलिए कि भी समस्त शाहजहाँ की कहानी में मुमंताज़ के ताजमहल में दफनाए जाने की कोई भी तिथि उल्लिखित नहीं है। यह भी महत्त्वपूर्ण है कि मुमताज़ के ताजमहल में दफनाए जाने से भी पूर्व यह भवन ताजमहल नाम से प्रख्यात था जैसा कि समकालीन फ्रांसीसी पर्यटक टैवर्नियर ने इसका उल्लेख किया है।

साक्ष्यों का संतुलन-पत्र

प्रस्तुत अध्याय में हम ताजमहल सम्बन्धी प्रचलित कथा के पक्ष एवं विपक्ष में प्रमाणों का संक्षिप्तीकरण प्रस्तुत करेंगे जिससे कि पाठक प्रचलित ताज-कथा की निस्सारता एवं असत्यता को समझ वास्तविकता को जान सकें। हमने ताजमहल के सम्बन्ध में जो प्रमाण प्रस्तुत किए हैं उनसे वह प्राचीन हिन्दू प्रासाद था और उसे शाहजहाँ ने अधिग्रहण करके उसमें कुछ व्यर्थ के परिवर्तन कर उसको अपनी एक रखेल के मकबरे के रूप में प्रवर्तित किया, उनकी शक्ति और मात्रा का लेखा-जोखा प्रस्तुत करेंगे।

प्रचलित धारणा, कि यह शाहजहाँ था जिसने ताजमहल बनवाया, के पक्ष में हम तीन प्रमाण प्रस्तुत करेंगे और वे भी बिना किसी पुष्ट प्रमाण के नहीं :

(१) हम स्वीकार करते हैं कि ताज के केन्द्रीय कक्ष में कब्रों जैसे दो मिट्टी के स्तूप हैं जिनमें से एक शाहजहाँ की सहस्रों रखेलों में से एक मुमताज़ का होगा, और दूसरा स्वयं शाहजहाँ का। इसे स्वीकार करने के बाद अब हम अपनी बात की ओर संकेत करेंगे। यह भली भाँति विदित है कि ऐसे अनेक स्तूप जाली है। ऐसे स्तूप कभी-कभी ऐसे ऐतिहासिक भवनों के बरामदों में भी प्राप्त हुए हैं, जहाँ किसी मृतक को नहीं दफनाया जा सकता। दूसरी बात यह है कि मुमताज़ के दफन किए जाने की कोई तिथि उल्लिखित नहीं है, इसलिए यह सन्देहास्पद है कि उसको वहाँ दफनाया भी गया है कि नहीं। उसके दफन के समय भी उसकी मृत्यु से ६ मास और नौ वर्ष के मध्य बताया जाता है यहाँ तक कि उसके शव के लिए ऐसा विशिष्ट भव्य प्रासाद स्मारक बनाने की बात के बाद भी इस प्रकार की अस्पष्टता नितान्त सन्देह का कारण है। औरंगजेब के शासनकाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक अधिकारी मनूची ने लिखा है कि अकबर का मकबरा खाली है।

कौन जानता है कि तब इसी प्रकार मुमताज़ का मकबरा भी खाली न हो। इतने सुस्पष्ट प्रमाणों के होने पर भी हम यह अनुमान लगाने के लिए तैयार हैं कि वे दो मकबरे मुमताज़ और शाहजहाँ के हो सकते हैं।

(२) प्रचलित ताज-कथा के पक्ष में दूसरी बात है, मकबरे और कुछ मेहराबों के बाहरी भागों में कुरान की आयतें खुदी हुई हैं। हमारा इस बात पर प्रबल कथन यह है कि अजमेर स्थित 'अढ़ाई दिन का झोपड़ा' और दिल्ली की तथाकथित कुतुबमीनार पर भी ऐसी आयतें खुदी हुई हैं, किन्तु उन सब को छलना माना जाता है। इसलिए ताज पर की गई खुदाई तो हमारे सन्देह को पुष्ट करनेवाला वाली है।

(३) प्रचलित विवरण के पक्ष में तीसरी बात है कि कुछ इतिहास ताज के निर्माण का श्रेय शाहजहाँ को देते हैं। इस बात पर हमारी आपत्तियाँ अनेक हैं। इतिहासकारों में मुल्ला अब्दुल हमीद जैसे व्यक्ति तो केवल अपने संरक्षक की प्रशंसा और प्रसन्नता द्वारा सरलता से अपनी आजीविका अर्जन करनेवालों में हैं। द्वितीयतः, शाहजहाँ का अपना दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है कि अर्ज़ुमन्दबानो बेगम उर्फ मुमताज़ को मानसिंह के प्रासाद में दफनाया गया।

प्रचलित कथा के पक्ष में दिए गए तर्क कितने असत्य हैं, यह सिद्ध करने के उपरान्त हम आगामी पृष्ठों में अपने प्रबल तथ्यों का सार प्रस्तुत करेंगे।

हमने पाँच ऐसे स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जो यह प्रस्थापित करते हैं कि ताज प्राचीन हिन्दू प्रासाद है। वे हैं :

१. शाहजहाँ के दरबारी इतिहासकार मुल्ला अब्दुल हमीद की स्वीकारोक्ति।
२. मियाँ नूरुल हसन सिद्दीकी की पुस्तक 'दि सिटी ऑफ ताज' में इसी आशय की पुनरावृत्ति की गई है।
३. टैवर्नियर का साक्ष्य भी यह स्थापित करता है कि मुमताज़ को दफनाने के लिए एक भव्य प्रासाद अधिग्रहण किया गया और वह मुमताज़ को दफनाए जाने से पूर्व भी विश्वभर के पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र था।
४. शाहजहाँ के प्रपितामह बाबर के संस्मरणों में मुमताज़ की मृत्यु से १०४ वर्ष पूर्व, जिसका कि यह मकबरा समझा जाता है, ताजमहल का उल्लेख आया है।

५. एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का उद्धरण यह सिद्ध करने के लिए दिया गया है कि ताजमहल-भवन समूह में अतिथि-कक्ष, आरक्षी-निवास और अश्वशाला थे। ये सब प्रासाद के अंग हो सकते हैं, किन्तु किसी मकबरे के नहीं।

उपरिलिखित तथ्यों के अतिरिक्त हमने परवर्ती पृष्ठों पर अन्य अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं जो निम्न प्रकार हैं :

६. ताजमहल के नाम का अभिप्राय भवन शिरोमणि अथवा जाज्वल्यमान पवित्र पीठ (तेज-महा-आलय) होता है न कि मकबरा।

७. भारत के अन्य मुसलमान शासकों की भाँति शाहजहाँ का शासनकाल भी विद्रोहों और युद्धों का काल था। इसलिए उसके पास कोई सम्पत्ति, शान्ति, सुरक्षा अथवा प्रेरणा नहीं थी जो ताजमहल जैसे भव्य भवन के निर्माण की बात सोच सके।

८. शाहजहाँ की कामुकता और क्रूरता मुमताज़, जिसका मकबरा ताजमहल बताया जाता है, उसके प्रति विशेष लगाव को असत्य सिद्ध करती है।

९. शाहजहाँ क्रूर, निर्दयी और जिद्दी था अत: कला के प्रति कोमल हृदय और ऐसे उदात्त संरक्षक की उदारता उसमें कभी नहीं रही जो कि शव को दफनाने के लिए किसी भव्य भवन का निर्माण करे।

१०. दरबारी इतिहास-लेखक मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी किसी वास्तुकार का उल्लेख नहीं करता और जो कार्य किया गया उसकी लागत ४० सहस्र लिखता है। जो स्पष्ट प्रकट करता है कि इससे कोई नया भवन नहीं बनाया गया।

११. शाहजहाँ, जिसका शासन इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है, ताजमहल के निर्माण के सम्बन्धित एक कागज का टुकड़ा भी छोड़कर नहीं गया। ताज-निर्माण के सम्बन्ध में कोई अधिकृत आदेशों का उल्लेख भी उपलब्ध नहीं है। भूमि के अधिग्रहण अथवा क्रय-सम्बन्धी क़ागज-पत्र भी उपलबध नहीं हैं। कोई प्रारूप नहीं, न कोई बिल और न कोई रसीद और न कोई खर्च का लेखा-जोखा ही उपलब्ध है। जो कागज-पत्र दिखाई गए हैं वे सब जालसाजी हैं, यह पहले ही सिद्ध हो चुका है।

१२. यदि शाहजहाँ वास्तव में ताजमहल का निर्माता होता तो वह मुल्ला अब्दुल हमीद लाहौरी को विशेषतया निर्देश नहीं करता कि वह इसके निर्माण का विवरण दरबारी इतिहास में लिखना न भूले। क्योंकि ताज की भव्यता और विशालता शासक-सम्राट् के अन्यतम उपलब्धि के विषय में वेतनभोगी इतिहासकार उल्लेख न करे, यह सम्भव नहीं था।

१३. ऐसे स्वर्गिक भवन-निर्माण की शाहजहाँ स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता था यह तथ्य उन मनगढ़न्त विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि उसने श्रमिकों को पारिश्रमिक रूप में एक कौड़ी भी दिए बिना केवल थोड़ी और साधारण-सी भोजन सामग्री देकर उन्हें कार्य करने के लिए बाध्य किया था। टैवर्नियर लिखता है कि शाहजहाँ तो केवल मचान बँधवाने के लिए पर्याप्त लकड़ियाँ भी एकत्रित नहीं करा पाया था। कहीं-कहीं यह विवरण मिलता है कि शाहजहाँ ने राजा-महाराजाओं को लागत के रूप में पर्याप्त धन देने के लिए विवश किया। इस प्रकार हिन्दू प्रासाद को मुसलमानी मकबरे में परिवर्तित करने के लिए जो परिवर्तन और परिवर्द्धन अपेक्षित थे उनके लिए भी या तो श्रमिकों को अत्यल्प खाद्य सामग्री देकर काम के लिए विवश किया गया या फिर अधीनस्थ शासकों पर अधिभार लादा गया।

१४. यदि ताजमहल जैसा भव्य भवन विशेष रूप से किसी संगिनी को दफनाने के लिए बनवाया जाता तो उसकी विधिवत् दफनाने की कोई तिथि होती जो कहीं-न-कहीं अंकित हुए बिना न रहती। परन्तु न केवल दफनाने की तिथि का कोई उल्लेख उपलब्ध नहीं अपितु वह अनुमानित समय जिसमें अर्जुमन्दबानो बेगम ताजमहल में दफन की गई, वह भी उसकी मृत्यु के छह मास से नौ वर्ष की अवधि तक का होने से अनिश्चित है।

१५. मुमताज़ का जब शाहजहाँ के साथ विवाह हुआ उस समय शाहजहाँ की आयु २१ वर्ष थी। उस काल में राजघराने के बच्चों का विवाह उनकी किशोरावस्था में ही हो जाया करता था। इससे यह लक्षित होता है कि अर्जुमन्दबानो शाहजहाँ की किशोरावस्था की पत्नी नहीं थी। इसलिए, इस प्रकार, उसके किसी विशिष्ट मकबरे में दफनाए जाने का कोई औचित्य नहीं है।

१६. जन्मतया किसी साधारण घराने की होने के कारण अर्जुमन्दबानो किसी विशेष मकबरे की अधिकारिणी नहीं थी।

१७. इतिहास इन दोनों में, जैसाकि जहाँगीर और नूरजहाँ में था, किसी विशेष प्रेमाचार का उल्लेख नहीं करता। इससे यह प्रकट होता है कि उसके शव पर ताज के निर्माण की कथा को सत्य सिद्ध करने की दृष्टि से उनके प्रेमाचार की कल्पित कथा प्रचलित की गई।

१८. शाहजहाँ कदापि कला का संरक्षक नहीं था। यदि वह ऐसा होता तो जिन्होंने उसकी पत्नी के लिए परिश्रमपूर्वक मकबरा बनवाया था वह निर्दयता से उनके हाथों को कटवा न देता। कोई कलाप्रेमी, विशेषतया जो अपनी पत्नी की मृत्यु पर शोकाकुल हो, वह परिश्रमी कारीगरों को अंगहीन करने का उत्साह प्रकट न करता। किन्तु अंगहीन करने की कथा स्पष्टतया सत्य है, क्योंकि बिना किसी प्रकार का पारिश्रमिक दिए केवल अत्यल्प खाद्य सामग्री पर, अपने हिन्दू स्वामी से अपहृत प्रासाद को मकबरे में बदलवाने में निर्दयतापूर्वक कार्य कराने के विरोधस्वरूप उन्होंने विद्रोह कर दिया था।

१९. इतिहास में इस बात का कोई उल्लेख नहीं है कि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति कोई विशेष लगाव था। वास्तव में इतिहास बताता है कि वह तो अपनी पुत्री से लेकर नौकरानियों तक अन्य अनेक औरतों के पीछे भागा करता था।

२०. पृष्ठ भाग में घाट का होना यह सिद्ध करता है कि वह प्रासाद था, मकबरा नहीं।

२१. केन्द्रीय संगमरमर भवन में २३ कक्षों की विद्यमानता संगमरमरी प्रासाद होने का सूचक है जो कि मकबरे के लिए नितान्त अनुपयोगी है।

२२. ताजमहल का रेखांकन, प्राचीन भारतीय वास्तुकला–पद्धति के अनुसार हुआ है।

२३. समस्त ताज भवन परिसर के दो भूगर्भीय मंजिलों, ऊपरी मंजिलों तथा उसके अनेक स्तम्भों में ३५० या इससे भी अधिक बरामदेयुक्त कमरे हैं जो स्पष्टतया यह सिद्ध करता है कि इसका निर्माण प्रासाद के लिए हुआ था।

२४. अनेक संलग्न भवन, आरक्षी-निवास और अतिथि-कक्ष आदि प्रमाणित करते हैं कि यह प्रासाद है। ताज-परिसर में मनोरंजन-मंडप की विद्यमानता मकबरे में कभी नहीं हो सकती, वह तो केवल प्रासाद में ही हो सकता है।

२५. ताज-परिसर में एक नक्कारखाना भी है। किसी मकबरे में नक्कारखाना न केवल वयर्थ अपितु वह नितान्त अनुपयोगी है; क्योंकि मृतात्मा को शान्ति और विश्राम की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत राजप्रासाद में नक्कारखाने का होना नितान्त आवश्यक है, क्योंकि अतिथियों के स्वागत तथा विदाई के समय उनका उपयोग होता है, नगरवासियों को राजाज्ञा की घोषणा की सूचना देते समय उनको एकत्रित करने के लिए भी उसका उपयोग होता है।

२६. ताज-भवन परिसर में एक गोशाला भी है जो हिन्दू राजकीय भवन का एक भाग होती है।

२७. संस्कृत शब्द 'कलश' और 'प्राची' (गुम्बद और भवन के चारों ओर खुली जगह के अन्य कठघरे) ताज में कभी प्रयुक्त न होते यदि इसका निर्माण मुस्लिम मकबरे के रूप में होता।

२८. ताजमहल की सम्पूर्ण आलंकारिक सज्जा न केवल भारतीय पेड़-पौधों के रूप में रेखांकित हुई है अपितु कमल इत्यादि पवित्र भारतीय हिन्दू प्रतीक भी अंकित हैं जो इस्लामी विश्वास के आधार पर 'काफिराना' हैं और दफनाई गई, यदि वह दफनाई गई है तो मृतक महिला की आत्मा को शान्ति प्रदान नहीं कर सकते।

२९. गलियारे, मेहराब, स्तम्भ, गुम्बद सभी पूर्णरूप से हिन्दू पद्धति पर हैं, जो सारे राजस्थान में देखे जा सकते हैं।

३०. ताज के सम्बन्ध में अन्य सभी विषयों की भाँति इसके निर्माण की अवधि भी अनेक लोगों ने अनेक प्रकार से १०, १२, १३, १७ और २२ वर्ष बताई है जो यह सिद्ध करता है कि प्रचलित कथा कपोल-कल्पित है।

३१. यहाँ तक कि टैवर्नियर का साक्ष्य कि उसने कार्य का आरम्भ और अन्त देखा था, जहाँ प्रचलित विश्वास को दुर्बल करता है वहाँ हमारी बात को बल प्रदान करता है।

३२. ये विवरण कि शाहजहाँ ने राजाओं और महाराजाओं पर प्रभूत मात्रा में कर लगाया था और तथाकथित कार्य (विकृतीकरण को १०, १२, १३, १७ अथवा यहाँ तक कि २२ वर्ष लगे थे) सब सत्य हैं। हम उनको पूर्णतया स्वीकार करते हैं। वे हमारी धारणा से सामंजस्य रखते हैं, क्योंकि शाहजहाँ नितान्त चतुर और निर्दय था, वह अपने कोष से एक पाई भी व्यय नहीं कर सकता था। उसने स्थानीय लोगों को दण्ड देने और जुरमाना वसूल करने का अवसर नहीं खोया। उसने तो अपनी पत्नी की मृत्यु से भी राजनीतिक लाभ उठाया। जहाँ उसने एक ओर राजा-महाराजाओं को, उनके ही किसी निकट सम्बन्धी के प्रासाद को मकबरे के रूप में परिवर्तित करने के लिए बलपूर्वक भेंट देने के लिए विवश किया वहाँ दूसरी ओर अत्यल्प भोजन सामग्री पर श्रमिकों एवं कारीगरों को भी कार्य करने के लिए विवश किया। यही कारण है कि यह कार्य चींटी की चाल से वर्षों तक चलता गया।

३३. वास्तुकार के विषय में पश्चिमी विद्वानों का कथन है कि वे योरोपियन थे और मुसलमानों का कथन है कि वे मुसलमान थे जबकि इंपीरियल लाइब्रेरी की पाण्डुलिपि में हिन्दू नामों का उल्लेख है। प्रचलित ताज कथा के सम्बन्ध में झूठे दावों के इससे बड़े और कौन-से प्रमाण की आवश्यकता है?

३४. ताजमहल में एक बहुत बड़ा उद्यान था। कब्रिस्तान में रसीले फलों एवं सुगन्धित पुष्पोंवाले पौधों का होना निषिद्ध माना गया है। इसलिये उद्यान केवल प्रासाद का ही अंग हो सकता है, कब्रिस्तान का नहीं।

३५. उस उद्यान के वृक्षादि के नाम संस्कृत के हैं और वे भी चुने हुए पवित्र यथा केतकी, जई, जुही, चम्पा, मौलश्री, हरश्रृंगार और बिल्व वृक्ष हैं।

३६. ताजमहल का रेखांकनकर्ता अविदित है।

३७. ताज पर किसी प्रकार का व्यय करना तो दूर वह तो शाहजहाँ के लिए सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी सिद्ध हुआ। जबकि अर्जुमन्दबानो को ठंडे, पथरीले स्थान पर दफनाया गया और भवन की सारी मूल्यवान् सम्पत्ति लूटकर शाहजहाँ के कोष में जमा करा दी गई।

३८. ताजमहल उन दो बस्तियों के मध्य स्थित है जिन्हें जयसिंहपुरा और

खवासपुरा कहते हैं और ये नाम राजपूती हैं मुसलमानी नहीं। संस्कृत में 'पुर' का अभिप्राय व्यस्त नगरी से है न कि किसी खुले मैदान से।

३९. ताजमहल का प्रवेश-द्वार दक्षिणाभिमुख है। यदि यह मुस्लिम भवन होता, तो इसका द्वारा पश्चिमाभिमुख होता।

४०. इसकी सज्जा और संगमरमर का काम ९६७ में निर्मित आमेर (जयपुर) प्रासाद के अनुरूप है।

४१. ताजप्रासाद की लाल पत्थर की दीवार के साथ बाहर की ओर अन्य अनेक कक्ष हैं जो दरबारी तथा अन्य कर्मचारियों के लिए बने हैं।

४२. अपनी पहली आगरा यात्राओं के दौरान अकबर ख़वासपुरा और जयसिंहपुरा में ठहरा करता था, जिससे स्पष्ट है कि वह ताज में ठहरा था।

४३. शाहजहाँ के दरबार में एक अन्य विदेशी पर्यटक बर्नियर का कथन है कि भूगर्भ-कक्ष कल्पनातीत शोभायुक्त था और उसमें किसी गैर-मुसलमान का प्रवेश वर्जित था। इससे स्पष्ट है कि इसके सम्बन्ध में किसी रहस्य को छिपाया जाता था।

ऐसे असंख्य अन्य साक्ष्य प्रस्तुत किये जा सकते हैं जो हमारी धारणा की पुष्टि करते हैं किन्तु हम समझते हैं कि पाठकों को उचित स्थिति समझाने के लिए हमने पर्याप्त सामग्री प्रस्तुत कर दी है।

शाहजहाँ द्वारा अपनी पत्नी के शव को बुरहानपुर से उखड़वाकर लाने के अधार्मिक कृत्य को पुनः अर्जुमन्दबानो के अवशेषों को, यदि वे वास्तव में ताजमहल में हैं तो, उसकी मूल कब्र जो अभी भी बुरहानपुर में विद्यमान है, उसमें वापस ले जाकर सुधारा जा सकता है। उसी प्रकार शाहजहाँ के अवशेषों को भी उसकी पत्नी की कब्र के पास दफनाया जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि अपनी पत्नी के प्रति उसका अनन्य लगाव था। ऐतिहासिक न्याय के लिए ताजप्रासाद को कब्रों और नकली कब्रों के ढेरों से साफ कर दिया जाए।

आनुसन्धानिक प्रक्रिया

प्रसिद्ध इतिहासज्ञों के साथ अपने विचार-विमर्श के समय हमने पाया कि वे हमारी अनुसन्धान-प्रक्रिया पर सन्देह व्यक्त करते हुए हमारी अनुसन्धान की प्रबलता को टालने का यत्न करते हैं। इसलिए हम यहाँ पर **उन** प्रमुख इतिहास-शोधकों की प्रक्रिया का उल्लेख करते हैं जिन्हें संसार-भर के इतिहास के प्राध्यापकों में असीम आदर-भक्ति प्राप्त है।

उस सुखद आघात की कल्पना कीजिए जो हमें लगा है जब हमने पाया कि विषय के धुरन्धर विद्वानों ने उन्हीं सिद्धान्तों का पोषण किया है जिन्हें हम अपने ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए प्रयुक्त करते रहे हैं। विपरीत इसके वे ही इतिहास के अध्यापक और प्राध्यापक तथा अनुसन्धानकर्ता जो उन प्रमुख सिद्धान्तों की दुहाई देते हैं उन्होंने उन सभी सिद्धान्तों को तिलांजलि दे दी है जिन्हें उनके गुरु बड़ा महत्त्वपूर्ण बताते थे। इससे स्पष्ट होता है कि क्यों भारतीय इतिहास, जो आजकल पढ़ाया और प्रस्तुत किया जाता है, इतना अधिक भ्रान्त और गम्भीर गलतियों का भण्डार बना हुआ है?

इन गलतियों के कुछ उदाहरण हैं—१. यह कि अकबर महान् और भद्र था, जबकि उसके कारनामे सिद्ध करते हैं कि वह औरंगजेब का प्रपितामह[१] था। २. शेरशाह और फिरोजशाह तुगलक जैसे शासकों को अनेक मार्गों, दुर्गों, प्रासादों और नगरों का निर्माता मानना और उन्हें आदर्श प्रशासक मानना जबकि उनका राज्य निरन्तर लूट-मार का राज्य था। ३. तथाकथित मध्यकालीन मुस्लिम मकबरों और

---

१. 'इतिहास की भयंकर भूलें', में अकबर पर विशेष अध्याय सिद्ध करता है कि वह अधम था। इसके अतिरिक्त लेखक की पुस्तक 'कौन कहता है अकबर महान् था!' भी पठनीय है।

मस्जिदों को जो हिन्दू पद्धति पर बने हैं उन्हें मुस्लिम-पूर्व हिन्दू भवन मानने में संकोच करना।

इन सब गलतियों के फलस्वरूप ऐतिहासिक अनुसन्धान-प्रक्रिया के आधारभूत सिद्धान्तों की पूर्ण उपेक्षा हो गई। इतिहास अन्वेषण का पहला तत्त्व है गुप्तचरी प्रकार की पहुँच। प्रो. डब्ल्यु. एच. वाल्श कहता है[१]—"जब कोई इतिहासकार किसी इस या उस 'मूल-स्रोत' से कोई वक्तव्य पढ़ता है तो वह उसे यों ही सहज में स्वीकार नहीं कर लेता, यदि वह अपना कार्य जानता है तो उसका उसके प्रति दृष्टिकोण सदा आलोचनात्मक होता है। उसको निश्चय करना होता है कि वह विश्वास करे अथवा नहीं।"

कौलिंगवुड[२] इतिहासकार की पद्धति की तुलना जासूस से करता है। प्रो. वाल्श आगे लिखता है—"इतिहासकार का विषय बिलकुल समानान्तर है, यदि आवश्यक हो तो उसको अपने दृढ़ विश्वास पर भी सन्देह करने के लिए तैयार रहना चाहिए।"

ठगे जाने के विरुद्ध इतिहासकारों को चेतावनी देते हुए प्रो. वाल्श[३] लिखता है—"हम विश्वास कर सकते हैं कि विगत के लिए हमारे पास पर्याप्त प्रमाण हैं बिना यह विश्वास करते हुए कि इसके सम्बन्ध में कोई सुझाव सन्देह से परे है···प्रत्येक दशा में ऐतिहासिक तथ्यों की स्थापना होनी ही चाहिए। उनको यों ही नहीं छोड़ देना चाहिए।"

लौंग लोइस और सीनबौस जैसे रीतिविद्[४] इतिहाकारों को परामर्श देते हैं कि प्रत्येक स्वीकारोक्ति को देखने की प्रक्रिया मूलतः सन्देहात्मक होनी चाहिए। वे कहते हैं कि इतिहासकार को सन्देह से शुरू करना चाहिए। भारतीय ऐतिहासिक अनुसन्धान में स्पष्ट असंगतियाँ, अनियमितताएँ, विरोधाभास और भद्दापन तो बिना पूछे-ताछे छोड़ दिया जाता है या उस ओर ध्यान ही नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ, इस प्रकार के दावे कि कुतुबमीनार को कुतुबुद्दीन ने बनवाया था, या अल्तमश ने, या अलाउद्दीन खिलजी ने, या फिरोजशाह तुगलक ने या फिर थोड़ा-थोड़ा उन

१. प्रेक्टिसिंग हिस्टोरियन : ले. प्रो. एच. वाल्श, पृष्ठ १८
२. दि आइडिया ऑफ हिस्ट्री : लेखक आर. जी. कौलिंगवुड, पृष्ठ १३
३. प्रेक्टिसिंग हिस्टोरियन, पृष्ठ ८३
४. हिस्ट्री—इट्स परपज एण्ड मैथड : ले. डॉ. जी. जे. रेनियर, पृष्ठ १३२

सबने ही बनवाया था।

एक अन्य रीतिविद् एफ. सी. एस. शीलर भी पुष्टि करता है[१] "सन्देह-शोध एवं अन्वेषण का मुख्य उत्तेजक भाव है, जबकि आरोपित सत्य हमें सन्तुष्ट करने में असमर्थ हो जाता है तो सन्देह उसमें प्रवेश करता है।"

इतिहास-शोधन की रीतिविदों द्वारा ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया के विषय में जबकि 'सन्देह' और 'शंका' तथा जासूसी पर इतना जोर दिया जाता है, भारतीय इतिहास, अविश्वसनीय मध्यकालीय इतिहासों, जो केवल संरक्षकों के स्तुतिपाठ-मात्र हैं, का अन्धानुकरण है। सर एच. एम. इलियट[२] उन्हें "धृष्ट और निहित स्वार्थ जालसाजी" कहता है। डॉ. टेसीटोरी उनको अविश्वसनीय मानता है। इसके बाद भी हमारे इतिहास तुगलकाबाद का दुर्ग तुगलक का बनाया हुआ मानते हैं, क्योंकि उसके साथ उसका नाम जुड़ा हुआ है, बिना यह सोचे-समझे कि प्रत्येक घुसपैठिया जिस स्थान पर अपना अधिकार जमा लेता है, उस पर अपना नाम अंकित कर देता है। और बिना यह पूछे कि क्या उसे बनाने के लिए उसके पास इतना समय, धन, इच्छा, ज्ञान, शान्ति और सुरक्षा के साधन थे? और यदि उसने उसे बनाया ही था तो फिर कुछ ही दिनों बाद उसका विध्वंस क्यों कर दिया? उसी मूर्खता के प्रवाह में अहमदाबाद को अहमदशाह द्वारा और फिरोजाबाद को फिरोजशाह द्वारा बसाया हुआ मान लिया जाता है। यदि हमारे ऐतिहासिक निष्कर्ष का यह आधार है तब तो यही समझना चाहिए कि अल्लाहाबाद निश्चय ही स्वयं अल्लाह ने बसाया होगा।

ऐतिहासिक अनुसन्धान के लिए दूसरी अनिवार्यता है, न्यायिक पद्धति। जब कोई न्यायाधीश किसी सम्भावित अपराधी की स्वीकारोक्ति लिखता है तो वह उसे सावधान करता है कि कानून[३] के अनुसार वह स्वीकारोक्ति के लिए बाध्य नहीं है। किन्तु यदि वह स्वीकार करना चाहता है तो उसका वक्तव्य उसके विरुद्ध प्रयुक्त हो सकता है, किन्तु उसके पक्ष में नहीं। मुस्लिम इतिहास ऐसे रोचक वक्तव्य हैं, और उनका उपभोग, यदि करना हो तो, उनके विरोध में जिनके कि पक्ष में उन्होंने बड़ी

---

१. 'अवर ह्यूमन ट्रुथ्स' : लेखक शीलर, पृष्ठ ७७-७८

२. इलियट और डौसन का इतिहास, प्राक्कथन।

३. इंडियन क्रिमिनल प्रोसीजर कोड।

वीरता के कृत्य बखान किए हैं, करना चाहिए किन्तु उनके पक्ष में नहीं।

जब हम शम्स-ए-शीराज आसिफ या अबुल फजल के विवरणों पर विश्वास न करने का तर्क प्रस्तुत करते हैं या बर्नियर, टैवर्नियर या मौंसरेट ने जो कुछ लिखा है उसे एकमात्र प्रमाण नहीं मानना चाहिए, इस बात पर बल देते हैं, तब हमारा यह अभिप्राय नहीं होता कि उनको ध्यान में कदापि न रखा जाए अथवा उद्धृत न किया जाए। इस प्रकार का विचार भी अतार्किक होने से न्यायिक जाँच जो कि हम आगे करने का विचार करते हैं, से विमुख हो जाएगा। इस बात का आग्रह करना अनुपयुक्त होगा कि या तो हम उपरिलिखित इतिहासकारों और पर्यटकों के प्रत्येक शब्द पर पूर्ण विश्वास करें या फिर उन पर किंचित् भी विश्वास न करें। इसे 'या तो स्वीकार करो या छोड़ दो' के आधार पर नहीं ग्रहण करना चाहिए। पूर्ण ग्राह्यता उपयुक्त नहीं है। प्रत्येक शब्द ध्यान से सुना जाए, इसका उद्देश्य और वे परिस्थितियाँ जिनके आधार पर उसका उल्लेख हुआ हो, उस सब पर सावधानी से विचार करना चाहिए। कभी-कभी, ऐसे अन्वीक्षण के बाद कुछ वक्तव्य अस्थायी रूप में स्वीकार किए जा सकते हैं, दूसरे से मिलान के लिए कुछ को प्रत्यक्षत: स्वीकार किया जा सकता है, शेष को धोखा समझकर त्याग दिया जा सकता है।

लौर्ड सैंकी ने इतिहास-संगठन के सन् १९३९ के लन्दन अधिवेशन में अपने भाषण[१] में उपर्युक्त विषयों के न्यायिक सिद्धान्तों पर बल देते हुए इतिहासकार और विधिवेत्ता के कार्यों की समानता पर बल दिया।

अन्य प्रसिद्ध रीतिविद् डॉ. जी. जे. रेनियर भी उन्हीं विचारों का है। वह कहता है—"अकाट्य साक्ष्य के नियमों पर निर्भर रहनेवाली न्याय प्रणाली बड़े आत्मसंयम से तथा निरन्तर के त्याग द्वारा किसी विशुद्ध निष्कर्ष पर पहुँचने का अवसर खोजती रहती है। इतिहासज्ञ की अपेक्षा, जो सापेक्षता के सिद्धान्त पर निर्भर करता है, कानून अधिक तार्किक और आलोचनात्मक होता है।"[२]

भारतीय इतिहासकारों ने न्यायिक जाँच की उक्त प्रक्रिया अथवा सिद्धान्तों को कम सम्मान दिया है। उदाहरणार्थ, यद्यपि ताजमहल के वास्तुकारों के विषय में

---

१. हिस्ट्री—इट्स परपज एण्ड मैथड : लेखक डॉ. जी. जे. रेनियर, पृष्ठ ११९
२. वही, पृष्ठ १२०

५-६ नाम लिए जाते हैं, इसका निर्माणकाल १० से २२ वर्ष तक का माना जाता है, इसकी निर्माण की लागत चालीस लाख से नौ करोड़ सत्रह लाख तक बताई जाती है। तारीख-ए-ताजमहल अभिलेख के अधिकांश अंशों और शाहजहाँई दन्त-कथाओं को कीन ने धोखाधड़ी बताया है, किन्तु फिर भी किसी को इसमें जालसाजी और धोखाधड़ी नजर नहीं आई, क्योंकि इतिहासकार के पास न्यायाधीश की दृष्टि नहीं थी। न्यायालय में तो ऐसा अपूर्ण अभियोग प्रथम वाचन में ही उठाकर फेंक दिया जाता। किन्तु हमारे इतिहास में इसको अकाट्य सत्य मानकर घसीटा जा रहा है।

इतिहास-शोधन के लिए तीसरा आवश्यक उपकरण है तर्क। तर्क को विज्ञानों का विज्ञान कहा जाता है, क्योंकि इसका विषय दोषरहित तर्क होता है। जो कि किसी भी क्षेत्र में किसी उचित निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए आधारभूत आवश्यकता होती है।

इस सम्बन्ध में प्रत्यक्ष उदाहरण उपयुक्त होगा। यदि किसी मृतक के पास यह लिखा मिलता है कि उसने आत्महत्या की है इसके लिए किसी को दोषी न माना जाए, किन्तु यदि शव की पीठ पर छुरे का घाव पाया जाता है तो तर्कपूर्ण निष्कर्ष तो यही निकलेगा कि मृतक की हत्या की गई है और लेख जालसाजी है। किसी जटिल अभियोग में यह इस प्रकार भी हो सकता है कि मृतक ने आत्महत्या की नीयत से टिप्पणी अपने पास रखी किन्तु इसी बीच उसकी हत्या कर दी गई। ऐसी स्थिति में टिप्पणी वास्तविक होने पर भी न्याय के मर्मज्ञ, मृतक की पीठ पर घाव होने के कारण यह मानने में असमर्थ होंगे कि उसने आत्महत्या की। इस प्रकार का तार्किक और विधि-विवेक लिखित ऐतिहासिक साक्ष्यों के सम्बन्ध में उपेक्षित है, जिसके कारण स्पष्टतया वास्तविक निष्कर्ष पर पहुँच पाना नितान्त कठिन है।

इतिहास-शोधन-पद्धति की चौथी आवश्यकता है स्वतन्त्र चिन्तन। दुर्भाग्य से भारत में इतिहास का प्रत्येक स्नातक या अध्यापक अथवा इतिहास के किसी विभाग या संस्थान का अधिकारी जनसाधारण द्वारा अथवा स्वयमेव भी इतिहासज्ञ समझा जाता है। वाल्श की धारणा है[१]—''इतिहासकारों में प्रायः उस अन्तर्दृष्टि का अभाव पाया जाता है जो पूर्ण पुनःस्थापन के लिए आवश्यक है।''और वे

१. वही 'प्रैक्टिसिंग हिस्टोरियन', पृष्ठ ३२

विश्लेषणात्मक क्रमबद्ध विवेचन करने की अपेक्षा लकीर के फकीर बने रहते हैं। ऐतिहासिक चिन्तन के लिए अन्तर्दृष्टि का होना मुख्य है। कौलिंगवुड ने[१] ब्रैडले का सन्दर्भ देते हुए कहा है कि इतिहासकार का श्रेय वह है जो कुछ वह अपने साथ प्रमाण के अध्ययन का भाव लाता है और वह जो कुछ वह स्वयं ही है।"

इतिहास-शोधन का पाँचवाँ स्वत:सिद्ध तत्त्व है कि शोधकर्ता इतिहासज्ञ निराधार परम्परागत विचारों के प्रति झूठी निष्ठा-भावना से ग्रस्त न हो। दूसरे शब्दों में, इतिहासकार एक प्रकार का विद्रोही होना चाहिए न कि ट्रेड यूनियनिस्ट जो व्यक्ति अपनी मान्यताओं के स्तर को उठाने से घबराता है वह इतिहास का ही नहीं किसी भी क्षेत्र का वास्तविक शोधकर्ता नहीं हो सकता। डॉ. रैनियर शोधकर्ता को पुनराश्वस्त करते हुए कहता है कि "अपने पूर्ववर्ती शोधकर्ता के प्रति अन्धसमर्पण इतिहासज्ञ से अपेक्षित नहीं है।" प्रोफेसर वाल्श का भी यही कथन है कि "सच्चे इतिहासकार को उसको सौंपे गए तथ्यों एवं धारणाओं की परख के लिए हर प्रकार के सामान्य एवं तकनीकी ज्ञान का स्वतन्त्रतापूर्वक उपभोग करना चाहिए। परन्तु भारत में इसके विपरीत परम्परा प्रचलित है, यथा परम्परागत बातों का अन्धानुकरण करना और यदि उस परम्परागत विचार पर सन्देह व्यक्त करे तो उसको ही सन्देह की दृष्टि से देखा जाता है।"

हमें आश्चर्य है कि कौन-सी ऐसी राजनीतिक, साम्प्रदायिक, प्रशासनिक या दासता की संव्याधि से इतिहास के भारतीय अध्यापक ग्रस्त हैं कि भारतीय एवं विश्व-इतिहास की अनेकानेक छद्मवेशीय बेहूदगियों की पूर्ण सत्यता को जानते हुए भी उसके विरुद्ध आवाज उठाने के लिए उनके मुँह पर स्थायीरूपेण ताला-सा लगा हुआ है।

क्या वह उन असत्य शैक्षिक निष्ठाओं की बेड़ियों को तोड़कर कभी स्वयं को मुक्त नहीं कर पाएगा? हमारे द्वारा इतिहास में धोखे का पर्दाफाश किए जाने पर भी भारतीय इतिहासकार क्या उसी झूठ की पुनरावृत्ति की तिरस्कृति में ही अपना जीवन व्यतीत कर देगा?

---

१. 'हिस्ट्री—इट्स परपज एण्ड मैथड', पृष्ठ १६०, वही।

कुछ स्पष्टीकरण

इस पुस्तक के अनेक पाठक निस्संदेह अब यह समझने में समर्थ होंगे कि शाहजहाँ की ताजमहल के सम्बन्ध में प्रचलित कथा अन्तत: उतनी विश्वसनीय नहीं जितनी कि समझी जाती थी, फिर भी उनके मन में अभी कुछ सन्देह होगा जैसा कि वे मुझको अपने पत्रों में लिखते हैं, अथवा मुझसे मेरे ऐतिहासिक शोध के सम्बन्ध में दिए जानेवाले भाषणों के अवसर पर प्रश्न करते हैं, उससे मैं अनुमान लगाता हूँ।

शाहजहाँ की प्रचलित कथा को विस्तार से निरस्त करने एवं स्पष्टतया यह निर्धारित करने, कि शताब्दियों तक दोहराए जानेवाले उस झूठ ने संसार-भर के बुद्धिशील मानव को कितनी हानि पहुँचाई है, पर भी वे सन्देह अभी बने ही हुए हैं इसलिए मैं इस अध्याय में उन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ।

प्रश्न : जब कि आपने शाहजहाँई प्रचलित कथा की त्रुटियों की ओर इंगित किया है, तब आप ऐसा कोई सुपुष्ट प्रमाण क्यों नहीं प्रस्तुत कर पाए कि ताजमहल को हिन्दू राजाओं ने मुसलमानों से पूर्व बनवाया था?

उत्तर : उपरिलिखित प्रश्न की अनेक धारणाएँ सत्य नहीं हैं। प्रथमत:, पिछले अध्यायों में इस सम्बन्ध में अनेक सुपुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। उदाहरणार्थ, शाहजहाँ का दरबारी इतिहास बादशाहनामा यह स्पष्ट करने के लिए उद्धृत किया जा चुका है कि जो राजा मानसिंह का भवन कहा जाता था उसे मुमताज़ को दफनाने के लिए उसके पौत्र जयसिंह से लिया गया। टैवर्नियर को भी यह कहने के लिए उद्धृत किया गया है कि 'ताशी-मकान' अर्थात् वह भवन जो ताजमहल कहा जाता है, जो पहले से ही विद्यमान था, शाहजहाँ ने उसे मुमताज़ को दफनाने के लिए सोद्देश्य चुना, क्योंकि वह संसार को आकर्षित करनेवाला था। तीसरा निश्चित प्रमाण है उसमें उत्कीर्ण संस्कृत शिलालेख जो यह संकेत करते हैं कि ताजमहल पूर्वकाल में तेज-

महा-आलय नाम से विख्यात मन्दिर हो सकता है। चतुर्थ निश्चित प्रमाण ऐसे स्पष्ट विवरण हैं जैसे ताजमहल का त्रिशूलयुक्त बुर्ज, उसके उद्यान में 'बिल्व' वृक्षों की विद्यमानता और कब्रवाले कक्ष के चारों ओर की संगमरमरी जालियों में पुष्पों और पवित्र हिन्दू मंत्र 'ॐ' का अंकन। पंचम निश्चित प्रमाण है औरंगजेब का पत्र। दूसरी धारणाएँ कि 'नकारात्मक' प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं, उपयुक्त नहीं। संसार-भर के न्यायालयों में प्रतिदिन उस तथाकथित 'नकारात्मक' प्रमाणों के आधार पर हत्यारों और धोखेबाजों को दण्डित किया जाता है। बाद में भी यदि कोई कही-सुनी बात विदित हो जाती है तो उसके आधार पर अपराधियों का पता लगाया जाता है और अपराध की तिथि के वर्षों बाद भी उनको दण्डित किया जाता है। उस आदमी की बात लीजिए जो चिथड़ों में मूल्यवान् हीरा बेचने का यत्न कर रहा हो। उस स्थिति की अयोग्यता किसी भी नागरिक को उस हीरा बेचनेवाले पथिक को रोकने और उस पर धोखाधड़ी या चोरी आ आरोप लगाने के लिए पर्याप्त है। इस स्थिति में या तो उसका भिखारियों का-सा परिधान धोखा है या फिर वह हीरा जाली है या फिर वह व्यक्ति उस हीरे का वास्तविक स्वामी नहीं है। ऐसी स्थिति में कोई उस सन्देहास्पद व्यक्ति को इसलिए नहीं छोड़ देगा, क्योंकि उसने उसको हीरा चुराते हुए नहीं देखा है। 'नकारात्मक' के सम्बन्ध में साधारण जन जो भूल करते हैं वे ही वास्तव में दिनानुदिन स्वीकार किए जाने वाले निश्चित प्रमाण होते हैं। दूसरा बिन्दु जो ध्यान देने योग्य है वह यह है कि जबकि, शाहजहाँ का ताजमहल-सम्बन्धी दावा अस्वीकार हो गया तब वह भवन, जो कि हिन्दुस्तान में स्थित है, तो स्वाभाविक ही वह हिन्दू सम्पत्ति हो जाता है।

प्रश्न : आपने ताजमहल के सम्बन्ध में संक्षिप्त हिन्दू इतिहास क्यों नहीं दिया?

उत्तर : वह इसलिए कि ताजमहल के सम्बन्ध में जो कुछ खोजा जाना चाहिए वह अभी तक खोजा नहीं गया है। ताजमहल की सभी कुंजियाँ होनी चाहिए, तथा खोज के साधन और ताजमहल के कोने-कोने में जाकर देखने का अधिकार होना चाहिए। इससे अनेक भूगर्भस्थ कक्ष जिन्हें शाहजहाँ ने ईंट और चूने से बन्द कर दिया था, उन्हें खोलकर खोज करने की आवश्यकता है। मैं यह समझता हूँ कि कुछ निश्चयात्मक प्रमाण उन बन्द किए गए कक्षों में छिपे हुए हैं। उनमें संस्कृत शिलालेख, हिन्दू प्रतिमाएँ, पाण्डुलिपियाँ और मुद्राएँ तथा उस भवन का प्राग्-शाहजहाँकालीन इतिहास हो सकता है। ताजमहल भवन में स्थित बहुमंजिला कुआँ साफ कर उसके तल में भी ऐसे ही प्रमाण खोजे जाने चाहिए। अब तक मैं जिस कार्य में सफल हुआ

हूँ वह है मेरी यह स्थापना कि ताजमहल निश्चित ही हिन्दू भवन है और शाहजहाँ ने उसे हथियाया था। किस हिन्दू राजा ने और किस उद्देश्य से इसे बनवाया था यह अभी खोज करना शेष है।

प्रश्न : जब शाहजहाँ इस भवन को अपनी पत्नी के मकबरे के रूप में बदलना चाहता था तो उसने त्रिशूल, बुर्ज तथा अन्य हिन्दू चिह्नों को क्यों नहीं हटाया?

उत्तर : शाहजहाँ ने कभी ऐसा झूठा दावा नहीं करना चाहा था कि ताजमहल उसका अपना है, क्योंकि वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि उसने इसे जयसिंह से लिया था। सर्वाधिक, शाहजहाँ यदि झूठे से भी यह चाहता कि वह ताजमहल को अपनी निर्मिति माने तो वह एक असम्भव कार्य था, क्योंकि शाहजहाँ के समकालीनों ने स्वयं जयसिंह से ताजमहल के अधिग्रहण में भाग लिया और मुमताज़ की कब्र बनवाई थी। हिन्दू धार्मिक चिह्नों के प्रति मुसलमानों की घृणा के फलस्वरूप शाहजहाँ ताजमहल के बुर्ज पर से त्रिशूल उखाड़ना चाहता भी तो ऐसा नहीं कर सकता था, क्योंकि इससे गुम्बद पर छिद्र पड़ जाता और परिणामस्वरूप वर्षा में भीतर पानी भर जाता। शाहजहाँ और उसके दरबारी इतने घाघ थे कि वे अपनी इच्छानुसार अपनी धर्मान्धता से विमुख नहीं हो सकते थे। यदि बुर्ज का त्रिशूल उखाड़ दिया जाता तो उस समय के मुसलमानों में कोई ऐसा नहीं था जो कि उस छिद्र को भरने की तकनीक जानता हो। त्रिशूल की छड़ी गुम्बद के केन्द्र से ३१ फीट ऊँची थी। इतनी ऊँचाई पर स्थिर रहना, जो कि त्रिशूल की छड़ से काफी दूर गुम्बद की गहराई में थी, काफी कठिन था। इसलिए गुम्बद को कोई हानि पहुँचाए बिना त्रिशूल को उखाड़ना सम्भव नहीं था।

प्रश्न : क्या बुर्ज की छड़ मुस्लिम चाँद का चिह्न नहीं है?

उत्तर : बुर्ज की छड़ मुस्लिम चाँद का चिह्न नहीं है। मुस्लिम चाँद समानान्तर नहीं होता। उसका वृत्त लगभग पूर्ण होता है, केवल थोड़ा-सा स्थान इसके सिरे पर तारे के लिए छूटा हुआ होता है। एक विशेषता यह कि मुस्लिम चिह्न चाँद मध्य में छड़ से विभाजित करके नहीं रखा जाता। ताजमहल के गुम्बद के ऊपर लगा त्रिशूल हिन्दुओं का पवित्र चिह्न है जो मध्य में छड़ के समानान्तर पीतल का त्रिशूल अर्द्धवृत्त-सा दिखाई देता है। ताजमहल के पूर्वी छोर पर लाल पत्थर के दालान में त्रिशूल का पूरा आकार खुदा हुआ है। कोई बड़ी निकटता से इसे देखकर यह अनुमान लगा सकता है कि गुम्बद का त्रिशूल कैसा दीखता है। वहीं एक कुप्पी की तरह की छड़ी भी देखी जा सकती है जिसके छोर पर पवित्र कलश है जिसमें दो कमलपत्र दोनों ओर को झुके

हैं और शीर्ष पर श्रीफल को सहारा दिए हुए हैं। हिमालय की तलहटी में स्थित हिन्दू और बौद्ध मंदिरों में इसी प्रकार के त्रिशूल स्थित हैं।

प्रश्न : गुम्बद के ऊपर का त्रिशूल क्या तत्कालीन ब्रिटिश शासकों द्वारा बिजली की कड़क को सहारने के लिए नहीं लगाया गया?

उत्तर : यह अनेक भ्रान्त धारणाओं में से एक है। गुम्बद पर स्थित त्रिशूल प्राचीन हिन्दुओं द्वारा भले ही इस कार्य के लिए निर्धारित किया हो किन्तु उसे वहाँ पर अंग्रेजों ने नहीं लगाया है।

प्रश्न : क्या त्रिशूल पर फारसी लिपि में अल्ला-हो-अकबर (ईश्वर महान् है) उत्कीर्ण नहीं है?

उत्तर : तो क्या? शाहजहाँ द्वारा ताजमहल को विकृत किए जाने पर उसने उसमें तथा उससे सन्नद्ध कक्षों में सर्वत्र फारसी के अक्षर उत्कीर्ण कराए हैं। यदि त्रिशूल पर भी इसी प्रकार परसियन के शब्द उत्कीर्ण हैं तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि ताजमहल शाहजहाँ ने बनवाया था। दूसरी ओर अक्षरों के ऊपर दुबारा अक्षर उत्कीर्ण करना यह सिद्ध करता है कि शाहजहाँ भवन को विकृत करनेवाला था, क्योंकि 'अल्ला-हो-अकबर' शब्द लाल पत्थरवाले दालान में अंकित त्रिशूल की प्रतिमूर्ति पर उत्कीर्ण नहीं है। यदि शाहजहाँ ताजमहल का निर्माता होता तो गुम्बद पर पीतल के त्रिशूल पर अंकित शब्द दालान की प्रतिमूर्ति में भी अंकित होने चाहिए थे।

प्रश्न : 'शाहजहाँ ने ताजमहल बनवाया' यह कहानी किसने प्रचलित की?

उत्तर : यह कहानी बाद में किसी उत्साही दरबारी में प्रचलित की लगती है जिसे यह अपमानजनक प्रतीत हुआ कि शाहजहाँ जैसे बादशाह द्वारा अपनी पत्नी को पुराने भवन में दफन करने की बात प्रचलित हो। उसके बाद निरन्तर पुनरावृत्ति होते रहने से कपोल-कल्पना सत्य प्रतीत होने लगी। सर्वाधिक उस कपोल-कल्पना का मूल भी मनगढ़न्त ही रहा। सभी मध्यकालीन हिन्दू भवनों को मुस्लिम कब्रों के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। उन भवनों के दर्शकों के मन में यह बात बैठा दी जाती रही कि उसके भीतर कोई-न-कोई व्यक्ति दफन है। समय बीतते यह गलत विश्वास जड़ पकड़ गया कि भवन का निर्माण कब्र के लिए किया गया। वास्तव में भवन तो पहले से ही विद्यमान था। भीतर की कब्र तो बाद में हथियाये गए हिन्दू भवन में स्थापित कर दी गई। बहुत से भवनों की तो कब्रें भी नकली हैं। त्रिकोणात्मक कब्रों के ढेर तो केवल दर्शकों को धोखा देने के लिए बनाए गए जिससे कि उन भवनों पर सदा-सर्वदा

के लिए मुसलमानों का ही अधिकार बना रहे। इस कार्य में तो मध्यकालीन मुसलमानों ने हिन्दुओं की उस भावना का लाभ उठाया कि गलत या सही कैसा भी धार्मिक स्थल हो, हिन्दू उसको नहीं छेड़ता। एक ही रात में धोखे के मकबरे बनाने का प्रयोग और भवनों तथा परती पड़ी भूमि पर अधिकार करने की प्रवृत्ति आज भी उन लोगों में विद्यमान है।

प्रश्न : अनुसन्धान एवं ज्ञानार्जन के प्रति अगाध प्रेम होने पर भी क्या कारण है कि पाश्चात्य विद्वान् ताजमहल के सम्बन्ध में प्रचलित शाहजहाँई कथा की असत्यता को भाँप नहीं पाए?

उत्तर : यह विश्वास करना गलत है कि सर्वसाधारण पाश्चात्य जन भारतीयों की अपेक्षा ज्ञानार्जन एवं शिक्षा के प्रति अधिक लगाव रखते हैं। कोई भी पाश्चात्य उतना ही तुच्छ और दम्भी होता है जैसा कि कोई भी अन्य मानव प्राणी। किसी विदेश से आया हुआ कोई भी अन्य व्यक्ति भारत-स्थित किसी भवन के विषय में किसी इस या उस व्यक्ति का होने की किंचित् ही परवाह करता है। वह तो केवल भवन की दर्शनीयता के प्रभाव में रुचि रखता है। पाश्चात्य दर्शक को यौन-प्रेम की भावुक कहानी से आसानी से बहलाया जा सकता है। इस दिशा में उसकी मानसिक स्थिति किसी भी साधारण भारतीय से भी निम्न-स्तर की होती है। पाश्चात्य व्यक्ति यह नहीं समझ सकता कि स्त्री के प्रति पुरुष का यौन-आकर्षण पुरुष को दुर्बल एवं अयोग्य बनानेवाला होता है। यौन-भावना कभी भी कार्यशीलता के लिए प्रेरक नहीं हो सकती, विदेशों से आनेवाले पर्यटक के पास भवन के मूल निर्माता के सम्बन्ध में स्थानीय विवाद में पड़ने अथवा उसका अध्ययन करने के लिए न तो समय होता है और न भावना ही। सर्वाधिक ऐसे पर्यटक सरकारी कथन पर अधिक निर्भर रहते हैं और उसके विपरीत कथन को सन्देह की दृष्टि से देखते हुए उसे अप-प्रचार समझते हैं। तदपि कुछ पाश्चात्यों ने मुझे लिखने का साहस किया है कि वे ताज के सम्बन्ध में मेरी धारणा से प्रभावित हैं।

प्रश्न : इतिहास के अध्यापक और प्राध्यापकों ने आपके कथन को क्यों स्वीकार नहीं किया?

उत्तर : इतिहास के अनेक अध्यापक और प्राध्यापक स्पष्ट संकेत कर चुके हैं मेरी इस मान्यता पर कि ताजमहल हिन्दू भवन है, उनका दृढ़ विश्वास है। मेरी मान्यता पर अपनी सहमति वे पत्रों तथा व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा और अपनी पुस्तकों, लेखों,

शोध-पत्रों तथा भाषणों द्वारा प्रकट कर चुके हैं। अधिकांश वे लोग जो खुले तौर पर अपने ही किसी कारण से, यथा या तो वे कम बोलने के अभ्यासी हैं या फिर बहुत दिनों से प्रचलित विश्वास का विरोध करने का सामर्थ्य नहीं, या फिर उन्हें डर है कि उनके अधिकारी उन्हें दण्डित करेंगे, या फिर अपने क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिए जाने के डर से, या फिर अत्यधिक राजनीतिक और धार्मिक प्रवृत्ति के कारण वे अनुभव करते हों कि इसका श्रेय हिन्दुओं को प्राप्त होता है। इससे वे मेरा पक्ष ग्रहण करने में असमर्थ हैं। विश्वविद्यालयों के इतिहास के कुछ प्रमुख प्रोफेसर तथा वे जो भारत के पुरातत्त्व, अभिलेखागार और पर्यटन विभाग चला रहे हैं, भयाकुल हैं कि यदि उन्होंने ताज संबंधी शाहजहाँई कथा का खोखलापन स्वीकार कर लिया तो उन्हें आर्थिक तथा अन्य रूप से पर्याप्त हानि सहनी पड़ेगी। आजीविका चलानेवाले सांसारिक बुद्धि के ये लोग चुप रहना या फिर सरकारी कथन को पढ़ना ही श्रेयस्कर समझते हैं। सामान्य जन-जीवन में किसी हलचल के बिना शान्ति के रहना पसन्द करता है यहाँ तक कि वह किसी सत्य के लिए भी आन्दोलन करने को उद्यत नहीं। यदि सरकार द्वारा ताजमहल के सम्बन्ध में कोई नई खोज उसके सम्मुख रख दी जाएगी तो वह उसको भी बिना किसी लगाव के पढ़ाना आरम्भ कर देगा।

साधारणतया अधिसंख्य मुसलमान ताज के सम्बन्ध में नए उद्घाटित तथ्य की अनदेखी करते हैं, क्योंकि इससे उनकी प्रतिष्ठा को वैयक्तिक हानि होने की सम्भावना है। उनमें से कुछ तो इस खोज को अस्वीकार करने अथवा दबाने तक के लिए तैयार हो जाएँगे।

पुरातत्त्व विभाग तथा अभिलेखागार के उच्चाधिकारी तथा स्कूल ऑफ ओरिएंटल एण्ड अफ्रीकन स्टडीज, लंदन, दि इंस्टीट्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज, शिमला और रायल एशियाटिक सोसाइटी, लंदन, हमारी ताजमहल-संबंधी खोज को बड़ी झिझक के साथ देख रहे हैं, क्योंकि आजीवन तो वे उसी असत्य का पोषण करते आए हैं जो कि ताज के सम्बन्ध में शाहजहाँई कथा प्रचलित रही है।

जो विश्वविद्यालयों में इतिहास-विभाग के अध्यक्ष हैं, और अन्य संस्थानों तथा कार्यालयों में उनके जो सहयोगी हैं, उन पुस्तकों के आधार पर जो उन्होंने प्रकाशित कराई हों, वे प्रपत्र जो कदाचित् उन्होंने लिखे हों, वे शोध-छात्र जिनका उन्होंने मार्गदर्शन किया हो, शाहजहाँई कथा के प्रति प्रतिबद्धता के कारण निष्ठा से यह स्वीकार करने का साहस नहीं कर सकते कि वे अब तक एक निराधार मान्यता का पोषण और

प्रचार कर रहे थे।

एक साधारण-सी मानव दुर्बलता के कारण जिसने अध्यापकों, प्राध्यापकों और इतिहास पर कार्य करनेवाले अधिकारियों को अपनी आँखें, कान और मस्तिष्क को ताज-सम्बन्धी नई खोज से बन्द करने के अनेक उद्देश्य सम्मुख आए हैं।

प्रश्न : *शिवाजी सदृश शासकों ने ताज पर पुन: अधिकार क्यों नहीं किया ? यदि यह हिन्दू भवन था तो उनको इसका ज्ञान होना चाहिए था ?*

उत्तर : यह प्रश्न भ्रान्त धारणा पर आधारित है। भारत में विशाल भवनों एवं दुर्गों का आधिक्य है, भारत में ताजमहल-सदृश शताधिक सुन्दर भवन हैं। उनमें से अनेक का तो मुस्लिम इतिहासकारों ने ही उल्लेख किया है। आश्चर्यचकित होते हुए मुस्लिम इतिहासकारों ने, उदाहरणार्थ, उल्लेख किया है कि विदिशा तथा मथुरा में भव्य एवं उच्च भवन मन्दिर थे। जिनको यदि २०० वर्ष तक भी ९ सहस्र श्रमिक कार्यरत रहें तो उन्हें दुबारा नहीं बना सकते। इसलिए यह सोचना गलत है कि भारत में ताजमहल ही एक ऐसा भव्य भवन था जिसके लिए सभी भारतीय एकाग्रचित्त होकर रक्षा के लिए सन्नद्ध रहते ताकि वह धर्मान्ध मुस्लिम आक्रान्ताओं के हाथों न पड़ जाए। जबकि सारा भारत उत्तर में अटक से दक्षिण में आरकौट तक अपने सभी भवनों, मन्दिरों और दुर्गों सहित मुसलमानों के अधिकार में जा पड़ा तो यह प्रश्न तर्कसंगत नहीं कि ताजमहल को क्यों नहीं बचाया जा सका ? और यह थोपा हुआ अनुमान, क्योंकि किसी हिन्दू को ताजमहल के विषय में ज्ञान नहीं था अत: यह हिन्दू भवन नहीं होगा, गलत है। शिवाजी सदृश वीर योद्धा तो वास्तव में उस समय धर्मान्ध आक्रामकों के अधिकार से समस्त भारत को मुक्त करने के लिए युद्ध की तैयारी कर रहे थे, ऐसा करने में उनका मुख्य उद्देश्य था सिन्धु से कन्याकुमारी तक उन सभी भवनों एवं क्षेत्रों को नियन्त्रण एवं अधिकार में लेना। सर्वाधिक शिवाजी सदृश शासक उतनी शक्ति संगठित नहीं कर पाए थे कि मुगलों को खदेड़ सकें जैसाकि १८५८ तक मुगल शासन के निरन्तर बने रहने से स्पष्ट है।

प्रश्न : *यदि ताजमहल 'मानसिंह मंजिल' के नाम से विख्यात था तो जयपुर दरबार के कागजातों में इसका कुछ प्रमाण प्राप्त हो सकता था ?*

उत्तर : हाँ, वहाँ प्रमाण प्राप्त हो सकता था। किन्तु दुर्भाग्य से राजकीय जयपुर अभिलेखागार, जिसका नाम पोथीखाना है, वह शासक के अधीन होने के कारण वहाँ न तो कोई व्यक्ति कुछ देख सकता था और न ही कुछ अध्ययन कर सकता था। इसका

कारण सम्भवतया यह था कि उन कागजों में, राजघराने का आन्तरिक विवरण तथा धर्मान्ध मुगलों के प्रति व्यवहार का विवरण जो कि समकालीन राजपूत समाज में नितांत तुच्छ और घृणित समझा जाता था, अंकित है। ऐसा विवरण किस प्रकार दबाया गया इसका एक स्पष्ट प्रमाण इस बात से प्राप्त होता है कि जिन राजकुमारियों को बलात् मुगल हरम में ले जाया गया था उनके नामों तक का लोप हो गया है। इसलिए ऐसे समय में जब जयपुर राज और राजपरिवार की महिलाओं को धर्मान्ध मुस्लिम आक्रांताओं द्वारा बड़ी क्रमबद्धता से हथियाया और भ्रष्ट किया जा रहा था तब बड़े कौशल से ताजमहल अधिग्रहण के लुप्त प्रमाण जो कि बड़ी चतुराई से विकृत कर दिए गए होंगे। उन्हें बड़ी कठिनाई से किसी कुशल शोधकर्ता द्वारा एकत्रित करके उनमें सामंजस्य स्थापित करने की आवश्यकता है। मैं उन समकालीन लोगों से, जो स्वयं को इतिहासकार मानते हैं, मिला हूँ या उनको सुना है जो दावा करते हैं कि उन्हें 'पोथीखाना' के कुछ प्रमाणों पर दृष्टि डालने का अवसर प्राप्त हुआ है। वे बड़ी अस्पष्टता से बताते हैं कि उन्होंने कुछ ऐसे कागजात देखे हैं जिसे जयसिंह द्वारा शाहजहाँ को आगरा में ताजमहल बनाने के लिए भूमि बेचने का विक्रयनामा कहा जाता है। ऐसे एक व्यक्ति जिनसे मैं मिला हूँ, डॉक्टर आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव हैं, जो अनेक वर्ष से आगरा विश्वविद्यालय में इतिहास विभाग के अध्यक्ष हैं। जब पूछा गया कि उस कागज में उसका क्या क्रय मूल्य अंकित है तो उन्होंने कहा कुछ भी नहीं। ऐसे व्यक्ति की तद्विषयक बुद्धि का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है जो कि ऐसे अस्पष्ट प्रमाणों पर अंधविश्वास करते हैं। ऐसे क्रयनामे का उल्लेख करना जिसमें क्रय-मूल्य अंकित न हो, ठीक उसी प्रकार है जिस प्रकार हैमलेट के बारे में बात करते हुए कहना कि वह डेनमार्क का राजकुमार नहीं था। ऐसे व्यक्ति जो ऐंग्लो-मुस्लिम कथनों से प्रभावित हों वे ऐसे विषयों के शोध करने में समर्थ नहीं हो सकते जिससे बड़ी सावधानी और असीम बुद्धिचातुर्य की आवश्यकता होती है। कानूनी ज्ञान जो भ्रान्त प्रमाणों को अलग कर सके और ऐसी तीव्र तर्कबुद्धि जो छूटे हुए तथा भ्रामक तन्तुओं को तुरन्त पहचान सके, ऐसे लोगों में नहीं पाई जाती। वे सब कागजात जिनका मुगलों से जयसिंह का लेन-देन से सम्बन्ध है, विशेषतया वे जो सन् १६२८ और १६३२ के मध्य के हैं, उनकी बड़ी सूक्ष्मता से जाँच होनी चाहिए जिससे कि ताजमहल के अधिग्रहण के सम्बन्ध में जयपुर की ओर से कोई संकेत प्राप्त हो सके। भूतपूर्व जयपुर-नरेश और बीकानेर स्थित राजस्थान राज्य अभिलेखागार के निदेशक ने तो मुझे

बताया है कि इस प्रकार का कोई क्रयनामा विद्यमान नहीं है। यह भी सम्भव हो सकता है कि ताजमहल का निर्माण जयपुर राजघराने ने नहीं कराया हो, किन्तु वह उनके अधिकार में विजय, क्रय अथवा विनिमय या दहेज के रूप में आया हो।

प्रश्न : यदि ताजमहल भव्य हिन्दू भवन है तो यह कैसे सम्भव हुआ कि इसके पूर्व इसका कोई उल्लेख नहीं है?

उत्तर : इतिहासकार और जनसाधारण जिनका यह विश्वास जम गया था कि ताजमहल को शाहजहाँ ने बनवाया था, वे मानसिक रूप से इतने असमर्थ हो गए थे कि वे इसका कोई पूर्व-सन्दर्भ सोच ही नहीं पाए। इसके बाद यदि वे खुले मस्तिष्क से अपनी उन सन्दर्भ-पुस्तकों को पुनः पढ़ें तो सम्भवतया ताजमहल के सम्बन्ध में उन्हें अनेक तथ्य प्रकट हो जाएँ। स्वयं हमने प्रस्तुत पुस्तक में यह दिखाया है कि शाहजहाँ के प्रपितामह बाबर ने ताजमहल का उल्लेख किया है, वास्तव में बाबर की मृत्यु ताजमहल में हुई थी। बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम ने भी ताजमहल की ओर संकेत किया है। यदि इसी प्रकार पूर्ववर्ती विवरणों एवं इतिहासों का बुद्धिमत्तापूर्ण पुनः अध्ययन किया जाए तो अन्य अनेक सन्दर्भों का ज्ञान हो सकता है। सर्वाधिक, जब सड़कों तथा मुहल्लों का नाम तक प्रत्येक नए शासन के साथ बदलता रहा हो तो यह जानना कठिन हो जाता है कि जिसे हम आज ताजमहल कहते हैं, उस समय उसका क्या नाम होगा। एक कठिनाई यह भी है कि एक ऐसे नगर में जहाँ अनेक भव्य भवन हों, तो तत्कालीन विवरण में किसी भवन विशेष के अस्तित्व का ज्ञान कर पाना नितान्त कठिन हो जाता है। लेखक तो प्रत्येक ऐसे भवन के विषय में यही कहेगा कि वह भव्य, विशाल और विस्तृत है। तदपि एक कठिनाई और यह है कि यदि मुस्लिम आक्रमण और नरसंहार से उथल-पुथल के वातावरण में ताजमहल जैसा भवन एक से दूसरे के अधिकार में जाता है और एक बार वह मन्दिर के रूप में प्रयुक्त हुआ हो और फिर बाद में भवन के रूप में या फिर इसके विपरीत तब उस भवन का स्रोत मिलना कठिन हो जाता है।

प्रश्न : जिस हिन्दू राजा से ताजमहल का अधिकार छिन गया उसने कोई कागजात क्यों नहीं छोड़े या अपने अधिकार का दावा क्यों नहीं किया?

उत्तर : यह पूछना तो ठीक वैसा ही है कि मुहम्मद बिन कासिम से प्रारम्भ कर अन्त तक सहस्रों मुस्लिम आक्रमणों में जिन्होंने काश्मीर से कन्याकुमारी तक अपने दुर्ग, मन्दिर, भवन, घर, दुकानें, उद्यान या खेत खो दिए, आज सामने आकर अपने

वंशजों के माध्यम से उन सबके दावे के लिए आग्रह क्यों नहीं करते ? जब देश का बहुत बड़ा भाग विदेशी आक्रामकों के हाथ में चला गया और प्रजा का संहार हो गया या युद्ध में मारी गई और अधिकृत भवनों पर शताधिक वर्षों से शत्रुओं ने अधिकार कर लिया तब क्या किसी निष्कासित व्यक्ति के वंशज से यह अपेक्षा रखी जा सकती है कि वह अपने पूर्वजों के भवन के द्वार के बाहर इस आशा में लटका रहे कि किसी समय कालान्तर में उसे या उसके वंशजों को उस भवन का अधिकार मिल जाएगा! क्या महामारी, नर-संहार, उपद्रव, भूकम्प आदि समस्त जीवन-मूल्यों को नहीं बदल देते और क्या वे लोगों को उनके अपने ही जीवन-काल में उनके अपने स्थान से विस्थापित नहीं कर देते ? क्या परिवारों का विनाश नहीं होता ? क्या परिवार अनेक शाखाओं में विभक्त होकर अपने पूर्वजों के नाम तक भी स्मरण रखने में असमर्थ नहीं होते ? और ऐसे परिवर्तन में जो वर्षों के अन्तराल से विस्तीर्ण हो, क्या किसी के लिए यह सम्भव है कि वह मूल कागजों को सुरक्षित रख पाए ? क्या वे खो नहीं सकते, चुराए नहीं जा सकते, जल नहीं सकते अथवा दीमकों या कीड़ों द्वारा नष्ट नहीं किए जा सकते अथवा पानी से नष्ट नहीं हो सकते ?

प्रश्न : क्या आपका अभिप्राय यह है कि शाहजहाँ ने किसी प्राचीन हिन्दू भवन को ध्वस्त करके उस स्थान पर ताजमहल बनवाया ?

उत्तर : नहीं। इस पुस्तक का मुख्य बिन्दु है पाठकों को यह विश्वास दिलाना कि जैसा ताजमहल आज है, जैसा उसे आज हम सब देखते हैं, यह वही भवन है जिसे शाहजहाँ ने हथियाया था। यदि उसने इसमें कुछ किया है तो मैं कहूँगा उसने इसे विकृत किया, इसे कुछ कम भी किया, किन्तु उसने कुछ अपनी तरफ से इसकी सुन्दरता और आकार में वृद्धि नहीं की। मूल हिन्दू ताजमहल इससे कहीं अधिक सुन्दर था। इसकी मोती जैसी श्वेत दीवारें अब कीड़े-मकोड़ों जैसी रेखाओं से काली-सी लगने लगी हैं। मूल हिन्दू मन्दिर प्रासाद में बहुत-से मण्डप आदि थे जो इसके चारों ओर बिखरे ध्वंसावशेषों से प्रकट होता है। जो ताजमहल आज हम देखते हैं वह कटा-छँटा और बिगाड़ा हुआ स्मारक है। इसकी भूगर्भस्थ संगमरमर के चबूतरे के नीचे यमुना के स्तर तक की अनेक मंजिलें छिपी, अपेक्षित और बन्द पड़ी हैं। सुन्दर रंग की चित्रकारी जो उन भूगर्भस्थ कक्षों की दीवारों को शोभित करती थी, धर्मान्धों ने रगड़कर नष्ट कर दी है।

प्रश्न : कोई ताजमहल को मुस्लिम मकबरे के रूप में देखता है और कोई हिन्दू

मन्दिर प्रासाद परिसर के रूप में, तो क्या इससे कुछ अन्तर पड़ जाता है ?

उत्तर : निश्चित ही इससे बहुत अन्दर पड़ता है। यदि किसी से यह कहा जाता है कि तुम मकबरा देख रहे हो तो वह कमरों के भीतर जिसमें कब्रों के ढेर ढके हैं, झाँकता है और बाहर आकर समझने लगता है कि आज का उसका दिन सफल रहा। इससे वह ताजमहल की भव्यता और सुन्दरता को भूल जाता है। इससे किसी के मन में यह बुद्धिमत्तापूर्ण विचार भी नहीं उठता कि वह किसी अन्य दृष्टिकोण से, जबकि वह विशाल भव्य भवन में जो कि ताजमहल जैसे आयाम का हो, समझने का यत्न नहीं कर सकता। यदि किसी को यह ज्ञान हो कि यह मन्दिर प्रासाद परिसर है तो उसके पास इतना अधिक समय होता है और वह प्रत्येक विस्तार के लिए सावधान हो जाता है कि हर एक मंजिल के हर एक कोने के वराण्डे, गलिहारे, बड़े कमरे, पोर्टिको, संलग्न-कक्ष, भूगर्भस्थ कक्षा, प्रवेश-द्वार, अश्वशाला, बाहरी कक्ष आदि-आदि पर पूर्ण दृष्टि रखकर अपनी तृप्ति का अनुभव कर सकता है। इसके बाद ताजमहल देखने जानेवाला प्रत्येक दर्शक न केवल सम्पूर्ण ताज-परिसर को देखने के लिए पर्याप्त समय लेकर जाएगा जिससे कि वह भीतर-बाहर तथा एक छोर से दूसरे छोर तक और ऊपर-नीचे तक भली प्रकार देख सके अपितु वह उस परिसर की बाहर से भी परिक्रमा कर उसकी परिधि के बाहर बड़ी दीवार को घेरे लाल पत्थरों से बने अनेक भवनों को भी देखने जाएगा। यदि जनता अपने इस अधिकार के प्रयोग का निश्चय कर ले तो सरकार को विवश होकर ताजमहल के बन्द, अवरुद्ध और छिपाई हुई मंजिलों के द्वार खोलने पड़ेंगे। यदि सरकार प्रवेश-शुल्क लेती है तो फिर क्या कारण है कि वह जनता का प्रवेश केवल शव-गृहों तक ही सीमित करती है ? तब तक जन-साधारण और सरकार यह धारणा बनाए रखेंगे कि ताजमहल मकबरे के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, तब तक तो सीमित प्रवेश की बात समझ में आ सकती थी, किन्तु अब तो जनता और सरकार दोनों ही जागृत हों और ताज मन्दिर प्रासाद के सम्बन्ध में अपना-अपना कर्तव्य निबाहें।

प्रश्न : *यदि शाहजहाँ ने हिन्दू मन्दिर प्रासाद का दुरुपयोग कर उसको मकबरा बना भी दिया तो फिर उसे वैसा ही क्यों न रहने दिया जाए, गड़े मुर्दे उखाड़ने से क्या लाभ ?*

उत्तर : इस प्रश्न से अनेक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठते हैं। प्रथमतः, जिस प्रकार कोई देश जो अपनी स्वतन्त्रता विदेशी के हाथों खो चुका हो वह उसे पुनः प्राप्त करना

आत्मसम्मान का प्रश्न बना लेता है, उसी प्रकार जो भवन विकृत कर दिया गया हो उसे उसके मूलरूप में लाने की भी बात है। द्वितीयत:, ताजमहल को हिन्दू प्रासाद अथवा मुस्लिम मकबरे के रूप में देखकर उससे उसके वास्तुशिल्प, उसकी लागत, तथा जो स्थान उपलब्ध किया गया है उसकी उपादेयता एवं आकार के विषय में सोचने का महान् अन्तर हो जाता है। तीसरी बात यह है कि जहाँ सत्य को रहस्य बना कर छिपा दिया गया हो वहाँ खोज की प्रक्रिया निरन्तर जारी रहनी चाहिए और ताजमहल उसमें अपवाद नहीं माना जाना चाहिए। चतुर्थत:, इतिहास का स्पष्टतया भूतकाल से सम्बन्ध होता है, इसलिए जब इतिहास की बात हो तो यह कहना नितान्त अनुचित है कि विगत को क्यों कुरेदा जाए? इतिहास विगत को कुरेदने से न कम है न ज्यादा। यदि जनता अपनी बुद्धि से कभी यह समझती कि इतिहास अनावश्यक अथवा व्यर्थ का विषय है तो यह कानून से प्रतिबन्धित होता, क्योंकि किसी भी देश ने अभी तक ऐसा नहीं किया, तो यह प्रमाणित है कि जनता ऐतिहासिक अनुसन्धान के पक्ष में है। सत्य, जहाँ वह असत्य की तह के नीचे दबा हुआ है, उसका उद्घाटन हो।

प्रश्न : इतिहासकारों की अनेक पीढ़ियाँ ताजमहल के सम्बन्ध में सत्य की खोज क्यों नहीं कर पाईं जो आपने की है?

उत्तर : वह इसलिए कि उन्होंने अपनी मूर्खता को अपनी अनुसन्धानवृत्ति के साथ चलने दिया, वे प्रचलित कथा पर विश्वास करते रहे और सन्देहों को टालते रहे। वे ताजमहल की लागत, उसकी निर्माण-अवधि, उसका वास्तुशिल्पी, ताज में कहीं भी शाहजहाँ द्वारा उसके बनाए जाने के उल्लेख का अभाव, और मुमताज़ की मृत्यु तथा उसके दफन किए जाने की तिथि के बारे में मौन जैसी विशाल त्रुटियों के विषय में वे लुभावने स्पष्टीकरणों से चिपके रहे।

प्रश्न : ताजमहल के सम्बन्ध में जब प्रमुख-प्रमुख इतिहासकार आपसे पहले अनुसन्धान कर चुके हैं, तब आप क्या नया प्रमाण प्रस्तुत कर सकते हैं?

उत्तर : मुझसे पूर्व ऐतिहासिक अनुसन्धानकर्ताओं का कार्य बड़ा त्रुटिपूर्ण रहा है। वे तो पूर्ण सन्तुष्ट प्रमाणित हुए। वे प्रमुख सन्देह व्यक्त करने और उनका प्रत्येक का उत्तर ढूँढने में असमर्थ रहे। मैं यह दावा नहीं करता कि मैं कोई विशेष प्रमाण लेकर आगे आया हूँ। मेरा काम तो उस पुलिस अधिकारी जैसा है जिसे किसी अपराध के विषय में किसी अज्ञात व्यक्ति द्वारा सूचित किया जाता है तब वह उस स्थान पर अपने साथ केवल एक पेंसिल और नोट-बुक लेकर जाँच के लिए पहुँचता है। जाँच के

अधीन घटना का साक्ष्य ढूँढ़ना होता है। जाँच करनेवाले पुलिसमैन के घर से यह कार्य नहीं किया जा सकता। उसी प्रकार जब मुमताज़ मेरे जन्म से लगभग २८७ वर्ष पूर्व दिवंगत हुई और वह सब-कुछ जो ताज के विषय में कहा गया, वह आगरा से टिंबकटू तक के विश्वविद्यालयों एवं अभिलेखागारों में संगृहीत है तब मैं कौन-सा नया साक्ष्य प्रस्तुत कर सकता हूँ? (मैं कहता हूँ कि मेरा जन्म मुमताज़ की मृत्यु से लगभग २८७ वर्ष बाद हुआ, क्योंकि मेरी जन्म-तिथि अनेक स्थानों पर ठीक प्रकार से लिखी गई है। मुमताज़ की मृत्यु-तिथि तो इतिहास को भी विदित नहीं, हालाँकि ताजमहल की मृत नायिका के रूप में उसको खूब उछाला गया है।) मेरा कार्य तो केवल साक्ष्य एकत्रित करना, उन्हें क्रमबद्ध करना, उनका विश्लेषण करना और अपनी बात पर तर्क करना, पाठकों को मध्यस्थ मानकर उनसे आग्रह करना कि क्या जो प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं उनके आधार पर शाहजहाँ ने ताजमहल स्वयं बनवाया था या कि उसने केवल उसे हथियाया था, तक ही सीमित है। किन्तु मैं इस बात की ओर अवश्य संकेत करूँगा कि साक्ष्यों की समीक्षा और पुनरीक्षण की अवधि में मुझे विदित हुआ कि कुछ बहुत से महत्त्वपूर्ण स्रोत बड़ी चतुराई से विकृत किए गए और दबाए गए या फिर मूर्खता एवं असावधानी से उपेक्षित कर दिए गए। उदाहरणार्थ, ताजमहल के सम्बन्ध में टैवर्नियर का उद्धरण यों ही चलते-फिरते उद्धृत किया गया और इतने वर्षों तक उसको पूर्णतया गलत तरीके से समझाने का यत्न किया गया। बादशाहनामे की स्वीकारोक्तियाँ तो भुला दी गईं या दबा दी गईं। एक वयोवृद्ध इतिहासकार, जिन्होंने दो या तीन बार बादशाहनामे का अध्ययन किया है, उन्होंने स्वेच्छया और स्पष्टतया मेरे सामने स्वीकार किया कि शाहजहाँ का अपना बादशाहनामा (दरबारी इतिहास), खण्ड एक के पृष्ठ ४०३ पर स्वीकार करता है कि ताजमहल हथियाया गया हिन्दू भवन था। दुर्भाग्य से मैं अनेक ऐसे मुसलमानों से मिला जो स्वयं को इतिहासकार मानते हैं, और जब उनको उक्त उद्धरण दिखाया गया तो उन्होंने उस पर कुछ कपटपूर्ण टिप्पणी करने का यत्न किया। इससे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार भारत में कुछ ऐसे लोग हैं जिनकी मनोवृत्ति नितान्त साम्प्रदायिक है। वे इतिहास को विगत घटनाओं का पवित्र सत्य मानने की अपेक्षा इसको इस प्रकार विकृत करने में लगे हैं जिससे कि वह उनकी अपनी आकांक्षा, रुझान और दुराग्रह की पूर्ति कर सके। मैं एक ऐसी संस्था, जिसमें इतिहास के शिखरस्थ विद्वान् सम्मिलित हैं, (१९६६) में इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस के मैसूर अधिवेशन में गया, जहाँ मैंने बादशाहनामे से उद्धृत कि 'ताजमहल हिन्दू भवन था',

चार पंक्तियों का प्रपत्र वितरित किया। उनकी प्रतिक्रिया आश्चर्यचकित और दुखित करनेवाली थी। बिना उसको स्वीकार अथवा अस्वीकार किए उन्होंने केवल मुँह बिचका दिया। मुझे लगा कि उनके इस बुद्धिमत्तापूर्ण मौन का विशेष कारण था। किसी संस्था अथवा विभाग के अध्यक्ष होने के नाते उनकी बड़ी ख्याति थी। अपने जीवनकाल में जो कुछ उन्होंने पढ़ा-पढ़ाया और विश्वास किया उसके विपरीत यह स्वीकार करना कि ताजमहल हथियाया गया हिन्दू भवन था, उनको असुविधाजनक और घबरानेवाला प्रतीत हुआ। उस घटना से मुझे विश्वास हो गया कि जन-साधारण भले ही वह उच्चशिक्षित और प्रतिष्ठित हो, वह प्रचलित भ्रांतियों से ही चिपका रहना चाहता है विपरीत इसके कि वह सत्य का पक्ष ग्रहण करे चाहे इसमें उसको कुछ असुविधा ही क्यों न हो। उनके लिए ऐतिहासिक सत्य पढ़ाना या उसका प्रचार करना कोई महत्त्व नहीं रखते। जो उनके लिए विचारणीय है, वह है उनका अहम्।

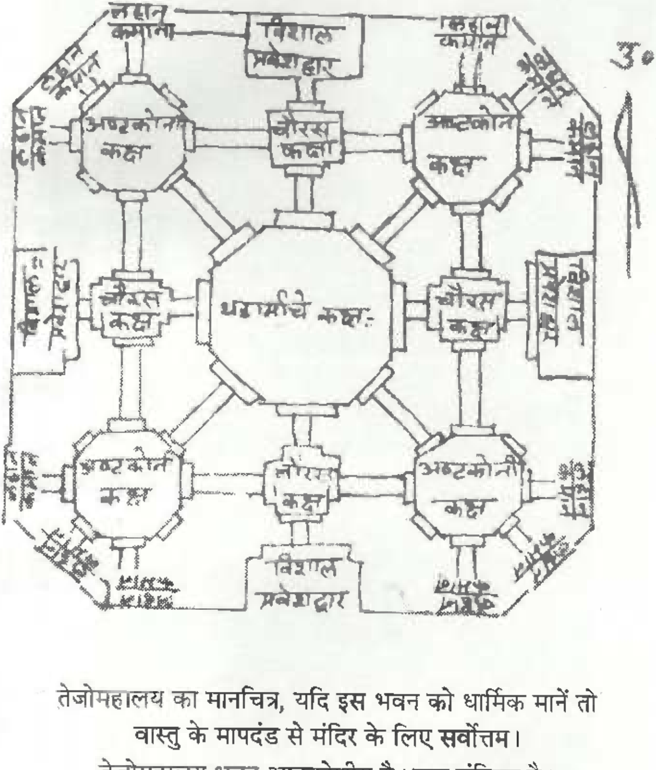
प्रश्न : क्या आप यह विश्वास नहीं करते कि मुमताज के प्रति शाहजहाँ का प्रेम इतना पर्याप्त था कि उसकी स्मृति में ताजमहल बनाए?

उत्तर : इस प्रश्न के अनेक उत्तर हैं। यह प्रश्न मेरे अथवा आपके विश्वास करने का नहीं है। प्रत्येक बात के लिए इतिहास को प्रमाण की आवश्यकता होती है। यह दावा करना कि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था, स्वयं में कल्पना है। चाहे आप किसी भी इतिहास-पुस्तक में पढ़ें, आपको स्मरण होगा कि यदि इतिहास में कहीं कुछ उल्लेख किसी मुगल का अपनी पत्नी के प्रति विशेष लगाव का आया है तो वह केवल जहाँगीर और नूरजहाँ के सम्बन्ध में है। वे जो यह दावा करते हैं कि शाहजहाँ का मुमताज़ के प्रति असांसारिक प्रेम था, उनको वे अनेक सन्दर्भ स्मरण कराने होंगे जब शाहजहाँ ने शासन के कार्यों में ढील देकर मुमताज़ के पार्श्व में अपने दिन बिताए हों। उस स्थिति में इतिहास में यह उल्लेख होगा कि उस विलास-कक्ष के बाहर एक पहरेदार खड़ा रहता होगा अथवा वहाँ कोई बोर्ड लटका होगा जिसमें इस प्रकार लिखा होगा, "बादशाह बेगम की बाँहों में लिपटे हैं…व्यस्त हैं…क्षमा कीजिएगा…परेशान न कीजिए…" क्योंकि ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है और न ही शाहजहाँ और मुमताज़ की प्रेम-गाथा की कोई पुस्तक ही उपलब्ध है जैसी कि रोमियो-जूलियट या लैला-मजनूँ की, तो यह विश्वास करना गलत होगा कि शाहजहाँ-मुमताज़ में कोई विशेष प्रेम था। यह भी स्मरण रखना होगा कि पुरुष का नारी के प्रति आकर्षण पुरुष को दुर्बल और अक्षम बनानेवाली भावना है। यौन-प्रेम, मांसल प्रेम, नारी के प्रति

यौनाकर्षण पुरुष को बलशाली नहीं बनाता, केवल उच्च भावनाएँ ही जैसे ईश्वर के प्रति या अपने देश के प्रति या अपनी माता अथवा पुत्र के प्रति प्रेम ही वह प्रेरणाप्रद भावना है जो उससे कुछ बड़ा काम करवा देती है। स्त्री के प्रति यौनाकर्षण तो मनुष्य को अपराध की ओर धकेलता है, और नहीं तो बलात्कार, आत्महत्या अथवा हत्या तो करवा ही देता है। यह नितान्त भ्रामक है कि ताजमहल की उत्पत्ति शाहजहाँ और मुमताज़ के प्रेम से हुई है, क्योंकि स्त्री-पुरुष के प्रेम से केवल दो चीजें उत्पन्न होती हैं, लड़का या लड़की, कोई भवन नहीं। इसे आप अपने परीक्षण से पुष्ट कर सकते हैं।

प्रश्न : ताजमहल के सम्बन्ध में शाहजहाँई कपोल-कथा का प्रसारक आपकी दृष्टि में कौन हो सकता है?

उत्तर : इसका उत्तरदायित्व, कि बिना बात इतनी बड़ी गप्प घड़ लेना, निश्चित ही मध्यकालीन अथवा पूर्व-मुस्लिम चापलूसी-मिश्रित दरबारी बहादुरी पर है और शोधकर्ता भी अपने कार्य के प्रति असावधानी के उत्तरदायी हैं जो उन्होंने केवल किंवदन्ती पर विश्वास करके किसी प्रमाण की माँग नहीं की तथा वे कवि भी दोषी हैं जो अपनी कविता की ऊँचाई के प्रलोभन में अपनी कल्पना की उड़ान को यौन-प्रेम के सम्बन्ध में किसी प्रकार की लगाम नहीं लगा पाए और ऐतिहासिक तथ्यों एवं विवरणों पर दृष्टिपात नहीं कर पाए।

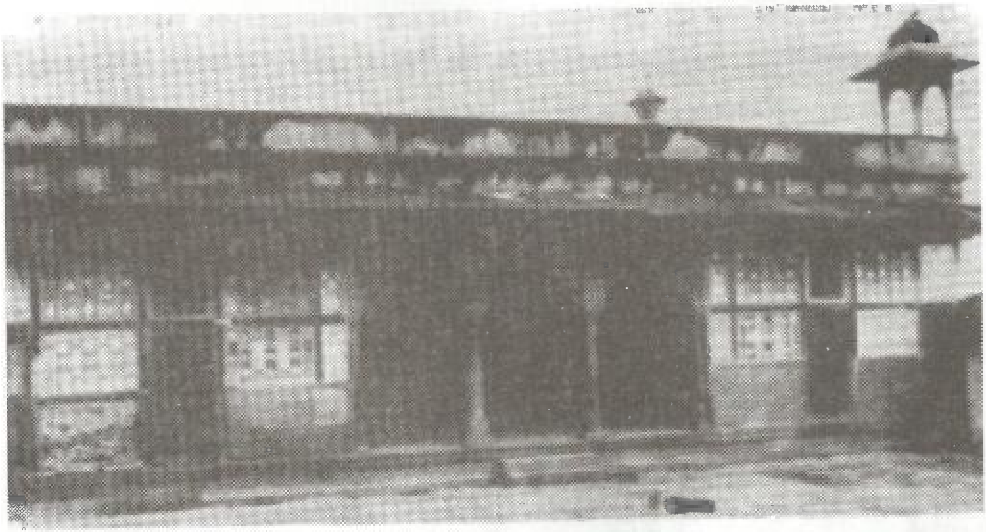


तेजोमहालय का मानचित्र, यदि इस भवन को धार्मिक मानें तो
वास्तु के मापदंड से मंदिर के लिए सर्वोत्तम।

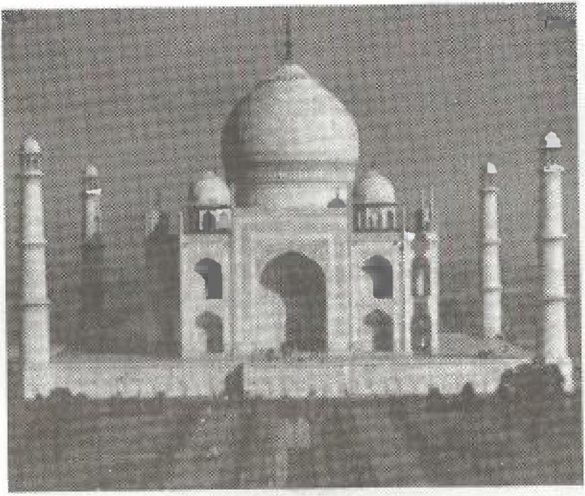
तेजोमहालय भवन अष्टकोणीय है। सात मंजिला है।

दो एक-समान लाल पत्थर द्वारा बनाए गए भवन भी सात मंजिला हैं।

अष्टकोण भवन, सात मंजिला भवन क्या रामायण में
अयोध्या का स्मरण नहीं करवाते?



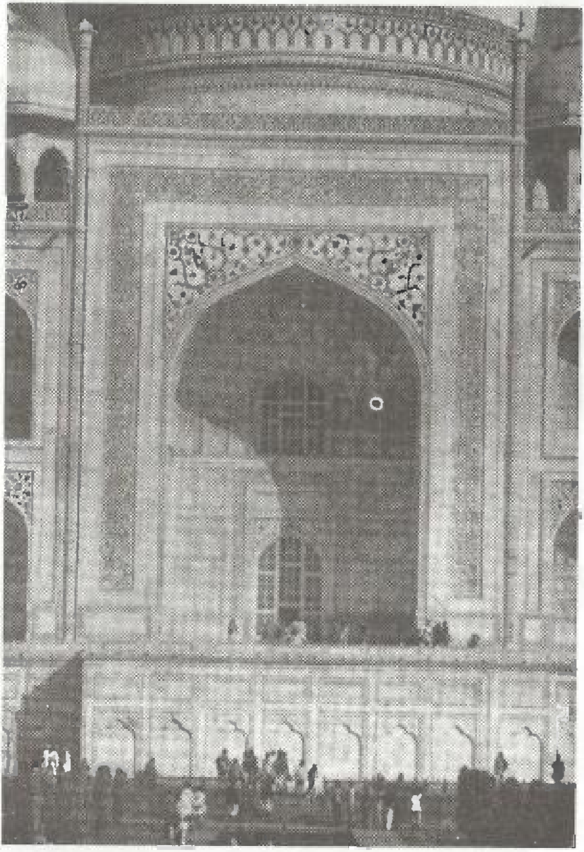
लगभग प्रत्येक उस पुस्तक में, जिसमें ताजमहल का वर्णन मिलता है यही लिखा गया है कि ताजमहल के दोनों ओर के भवनों में अतिथि कक्ष, रक्षकों के कक्ष, अस्तबल व दुकानों के लिए कक्ष बने हैं। रसोई इत्यादि भी इन्हीं भवनों में बनी दिखती है। क्या किसी कब्रगाह में अतिथियों का आगमन, रहने का प्रबंध, उनके रक्षकों के कक्ष या भोजन व्यवस्था के लिए रसोई अपेक्षित है ? ये परम्परा प्राचीन मंदिरों की है जिनके साथ धर्मशालाएँ बनाई जाती थीं जहाँ दर्शनार्थी व भक्त रहते हैं। उनके रक्षक व सेवक रहते हैं। उनके भोजन की व्यवस्था के लिए रसोई होती है।



यह विश्व में अनूठा भवन जिसका मध्य भाग शिवलिंग के आकार को लिए हुए है। भूतल व ऊपर 5 मंजिला भवन, भूतल से नीचे की दो मंजिलें जो यमुना नदी की ओर से लाल पत्थर की बनी हुई स्पष्ट दिखती हैं। जिनके गवाक्ष व द्वार बाद में बंद करवा दिए गए हैं।

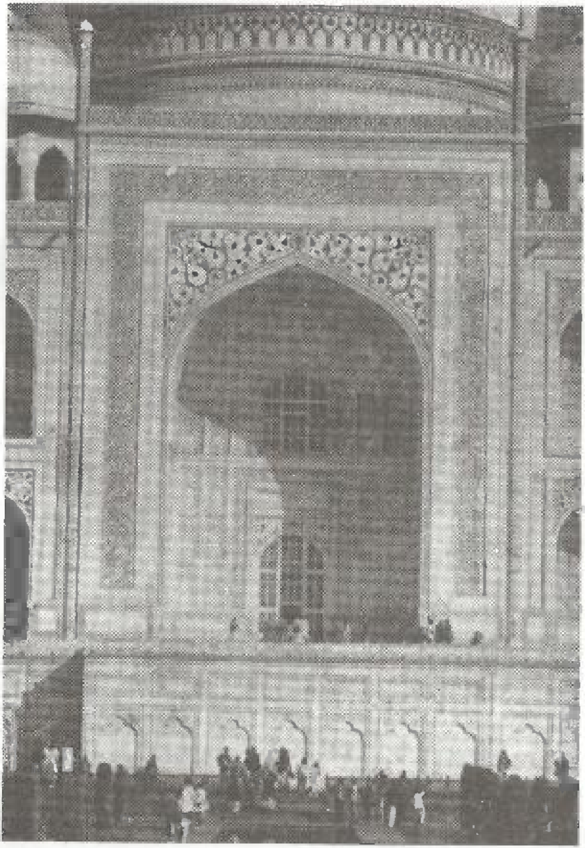


पूर्व की ओर से देखा जाए तो भवन के गवाक्ष दर्शाते हैं कि भवन के सेवकों के लिए बनाए गए 1089 कमरे अलग-अलग माप के व अलग-अलग ढंग के संगमरमर के टुकड़ों द्वारा बाद में ढँके गए।

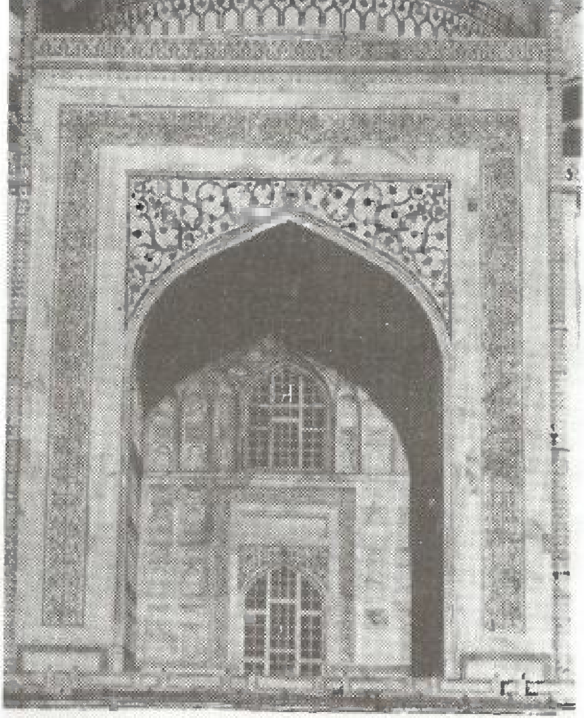


मुख्य प्रवेश द्वार की संगमरमर की सीढ़ियों पर चढ़ने से पूर्व ही जूते उतारने का विधान है। ये विधान किसी भी अन्य कब्रगाह पर दर्शकों के लिए नहीं है।

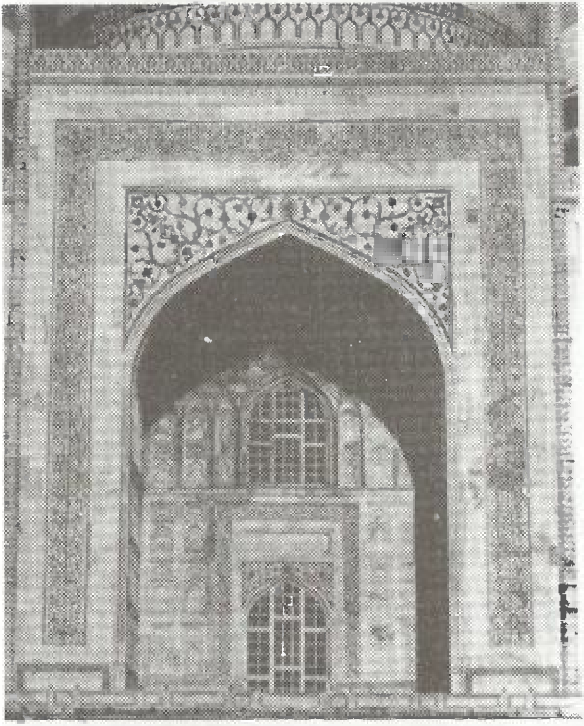
पूर्वकाल में जब यह मंदिर भवन था जूते उतारने की परम्परा उसी समय से चली आ रही है।



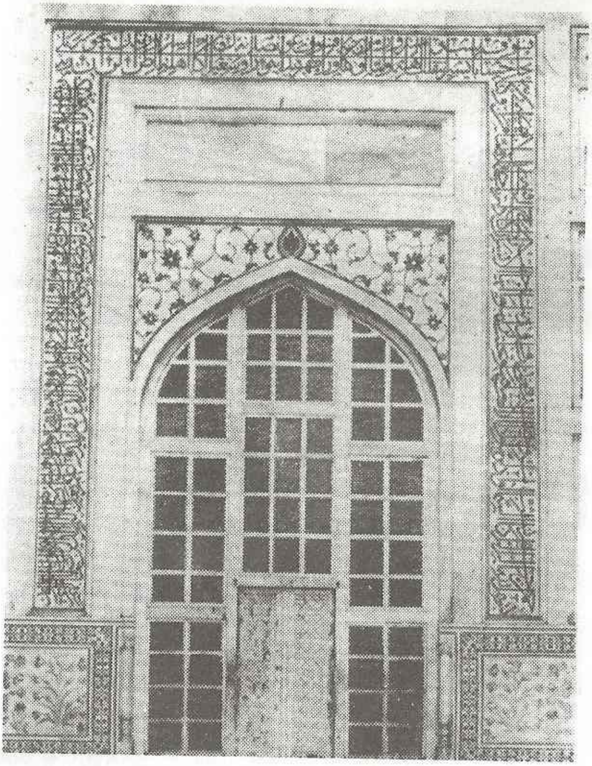
इस चित्र में प्रवेश द्वार की ओर मुख किए खड़ा श्वेत वस्त्रधारी व्यक्ति जिस स्थान पर खड़ा है वहाँ पर नंदी की मूर्त्ति मंदिर की ओर मुख किए थी। ऐसी मान्यता है। ये मूर्त्ति वहाँ से इस मंदिर को कब्रगाह बनाते समय हटायी गई। यहाँ पर संगमरमर अलग तरह का है, इस पत्थर में अजीब सी लाली है। चारों प्रवेश द्वारों के ऊपर मध्य में बनी पवित्र लाल कमल फूल की कली स्पष्ट देखी जा सकती है।



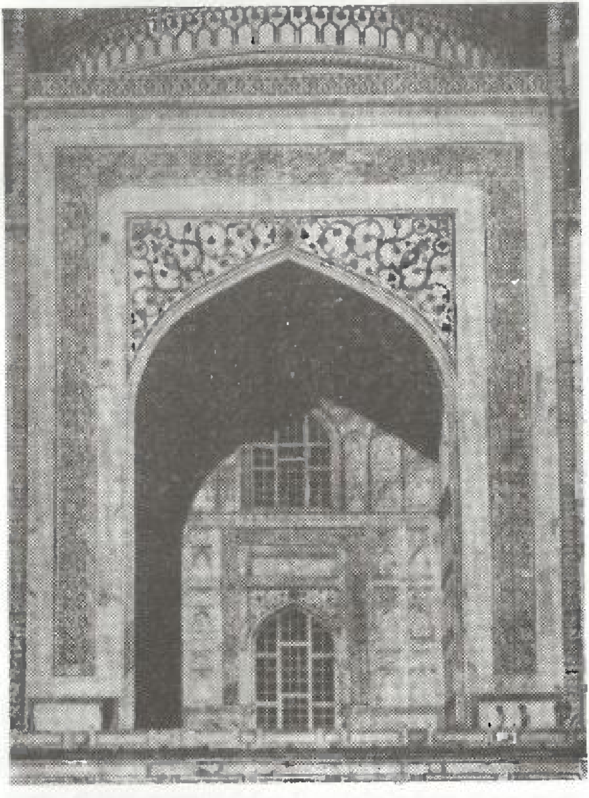
तेजोमहालय की भव्य विशाल इमारत में लगा संगमरमर बेहतरीन है लेकिन ऊपर दिए चित्र में स्पष्ट दिखता है कि मंदिर के द्वारों की सजावट में प्रयुक्त पत्थर बदला गया है। ये संगमरमर दागदार व घटिया किस्म का है जिसपर काले व पीले निशान इसे बाद में बदला गया दर्शाते हैं।



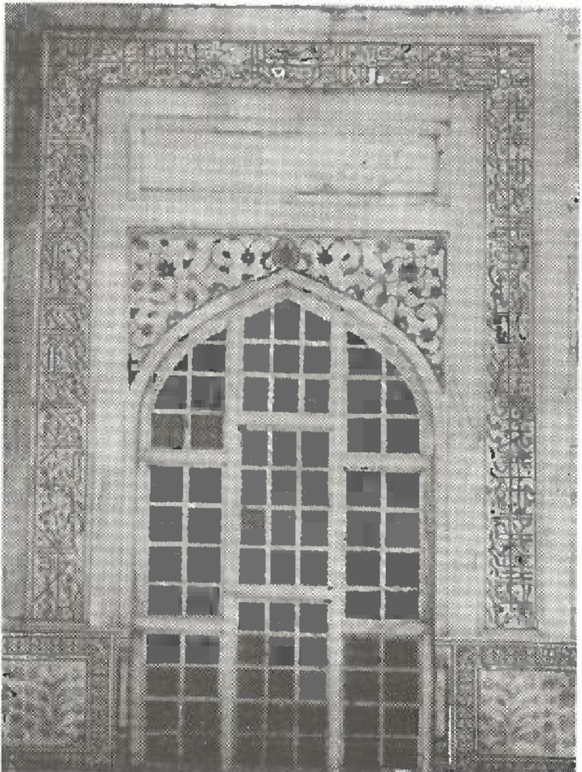
तेजोमहालय का पश्चिमी द्वार। यदि ध्यान से देखें तो इस द्वार के तीन तरफ हल्की प्रकृति का संगमरमर लगा है जो सारे भवन के संगमरमर से अलग है। धब्बों वाला है। ये मंदिर की सजावट को नष्ट करने के बाद, भवन के बनने के बहुत समय बाद थोपे गए संगमरमर के टुकड़े हैं।



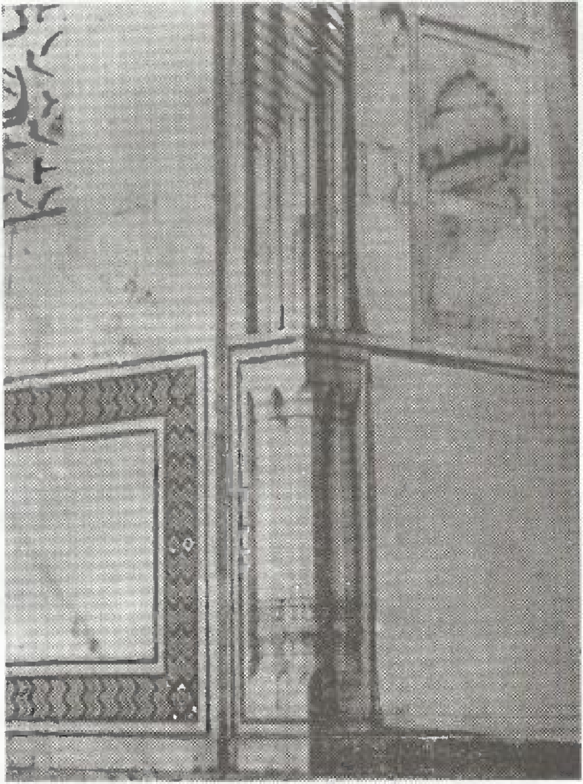
इनकी द्वार की रचना भी रही है।



तेजोमहालय के पूर्वी द्वार का संगमरमर भी अलग प्रकृति का है, काले धब्बों वाला है। द्वार के बाएँ खंभे के चरण में संगमरमर का टुकड़ा सबसे छोटा व अलग से थोपा गया प्रतीत होता है।



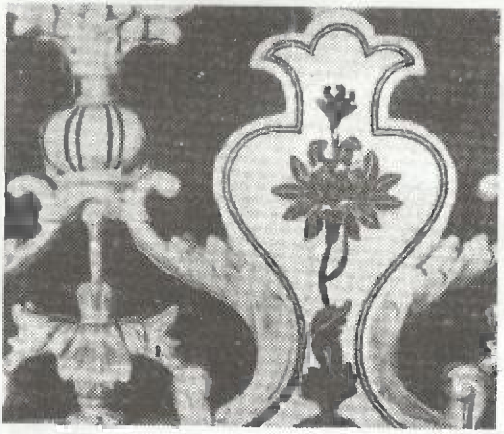
दक्षिण द्वार के खंभों में कहीं कहीं सलेटी संगमरमर लगा है। ऊपरी आयताकार गवाक्ष में पत्थर अलग प्रकृति व माप के हैं। ये बाद में जल्दबाजी में थोपे गए प्रतीत होते हैं।



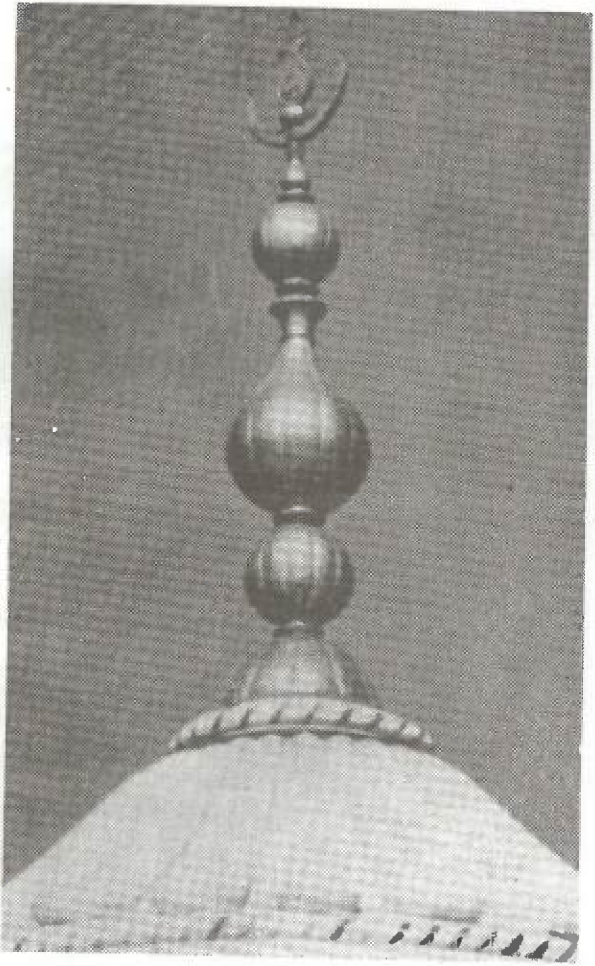
पश्चिमी दीवार का उत्तरी कोना। ऊपर दाएँ हाथ के गवाक्ष को बंद करने के लिए प्रयुक्त पत्थर और नीचे बाएँ हाथ के पत्थर अलग प्रकृति के काली व सलेटी रेखाओं के साथ हैं। ये जल्दबाजी में लगाए गए प्रतीत होते हैं।



दक्षिण और वाम द्वारों की सजावट के लिए विशेषत: धतूरे के फूल बनाए गए हैं। धतूरे का फूल ॐ का आकार बनाता है।

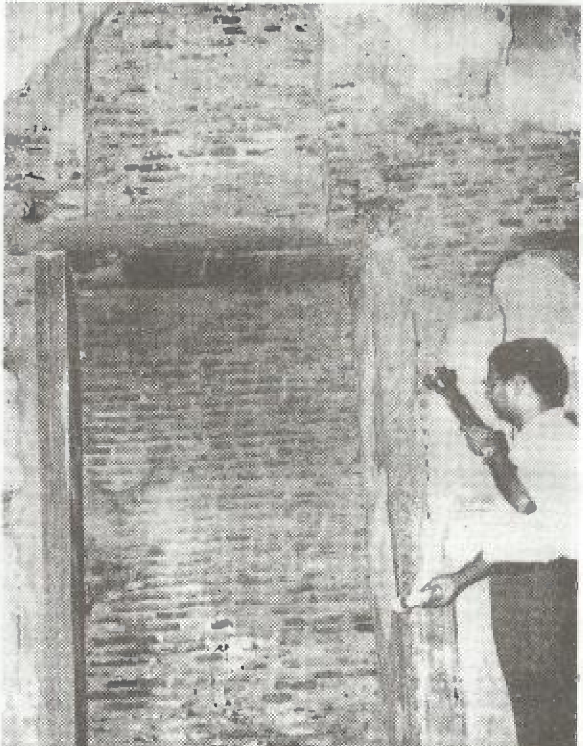


अष्टकोणीय जाली जो मुमताज की तथाकथित कब्र के ऊपर है उसमें कुल 108 घड़े हैं। कुछ गोलाई में, कुछ धारीदार हैं। चित्र में दर्शाए गए धारीदार कलश (बाईं ओर) से गिरता दूध जो शिवलिंग को धो रहा है।

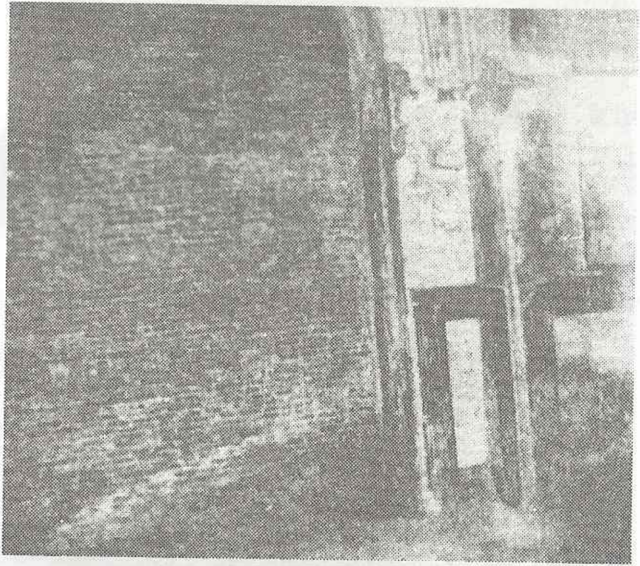


भगवान शिव के शीष पर अर्द्धचंद्र सदा विराजमान रहता है। वही चंद्र तेजोमहालय के कलश का त्रिशूल है। इसी चंद्र के मध्य में पूजा के प्रयोग में आनेवाले कलश की आकृति है। अर्द्धचंद्र, मध्य में कलश आकृति व नारियल मिलाकर भगवान शिव का अस्त्र त्रिशूल तेजोमहालय की

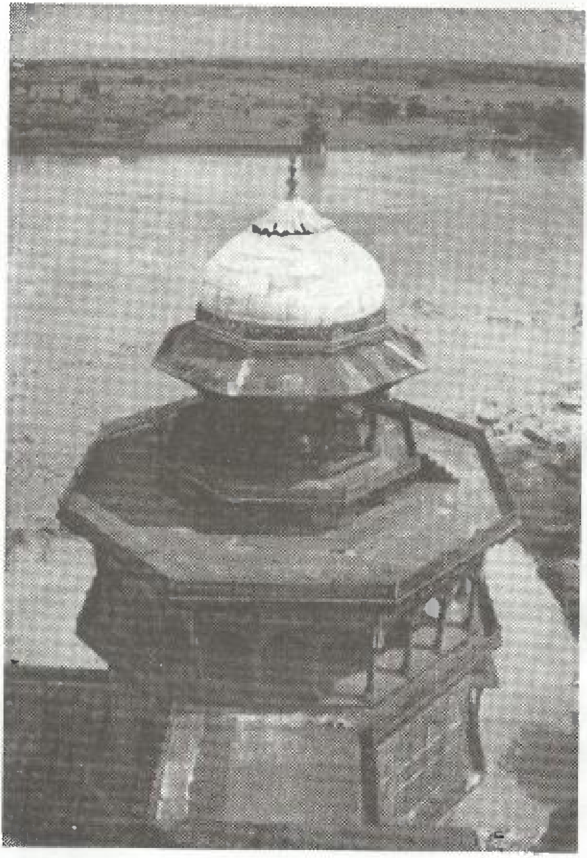
[illegible] है।



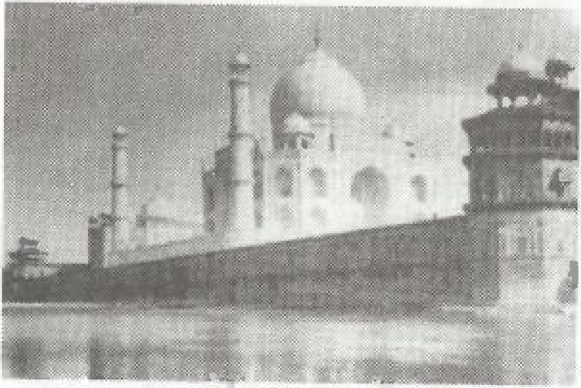
तहखाने का द्वार जिसे ईंटों से बंद कर नींव का रूप दिया गया है। यह नदी की ओर उन 22 कमरों में से एक का द्वार है जो भूतल से नीचे दूसरी मंजिल में है।



भवन के गुप्त तहखाने के उन 22 कमरों में से एक कमरे का भव्य गवाक्ष जिसे बंद कर नींव का रूप दिया गया है। दीवार में अलग से थोपी गई ईंटें स्पष्ट दिख रही हैं। इस दीवार को कौन नींव मान सकता है?



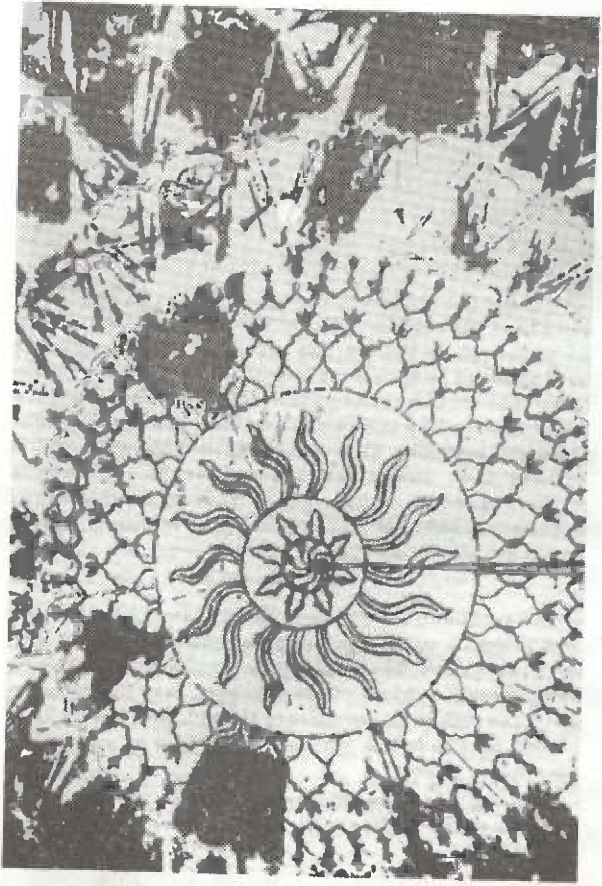
सात मंजिली अष्टकोणीय मीनारें जो भवन के चारों ओर बनाई गई हैं, यमुना तट से प्रारम्भ होती हैं। अष्टकोणीय मीनारें स्थान-स्थान पर बने मंदिरों में साधारणतया पाई जाती हैं। ये सभी दस दिशाओं को दर्शाती हैं।



यमुना नदी की ओर से भवन की नींव को देखें तो यह दो मंजिली इमारत स्पष्ट नजर आती है। सात मंजिली भवन की दो मंजिलें भूतल से नीचे और चार मंजिलें भूतल से ऊपर हैं। अगले चित्रों में स्पष्ट दिख रही ईंटें जिनसे इन मंजिलों को बंद कर नींव का रूप दिया गया है।



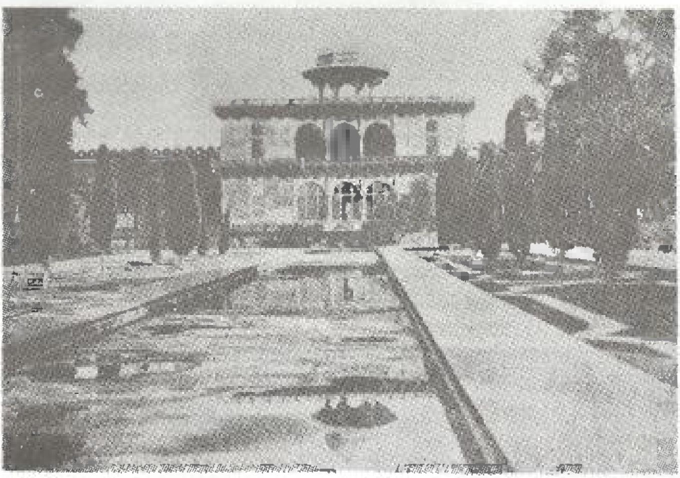
केंद्रीय कक्ष की परिक्रमा करते हुए दीवारों पर संगमरमर में 108 ॐ की आकृति खुदी देखी जा सकती है।



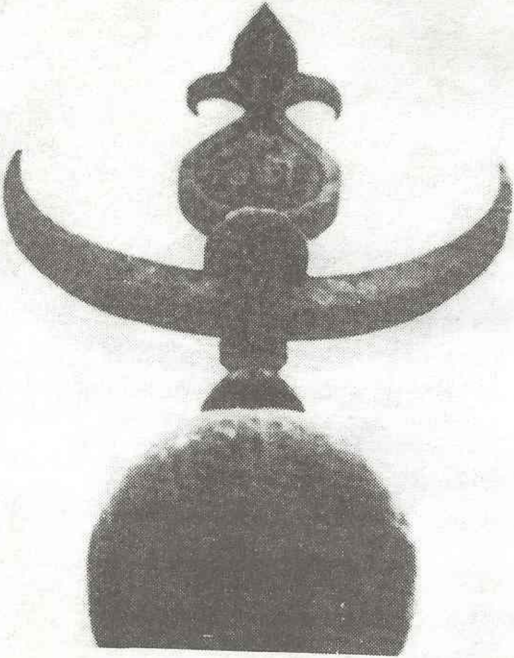
मुख्य गुम्बद के मध्य में सांकेतिक कमल के मध्य में चेन लटकी हुई है। वैदिक मान्यतानुसार आठ दिशाएँ दर्शाने के लिए आठ सर्प फन इसके चारों ओर हैं। इन फनों के चारों ओर सोलह नाग इसे घेरे हैं। इनके बाहर के वृत्त में 32 त्रिशूल और उससे भी बाहर 64 कमलकलियों का घेरा है। ये सभी पवित्र वैदिक चिह्न संख्या 8 के गुणन फल में हैं।



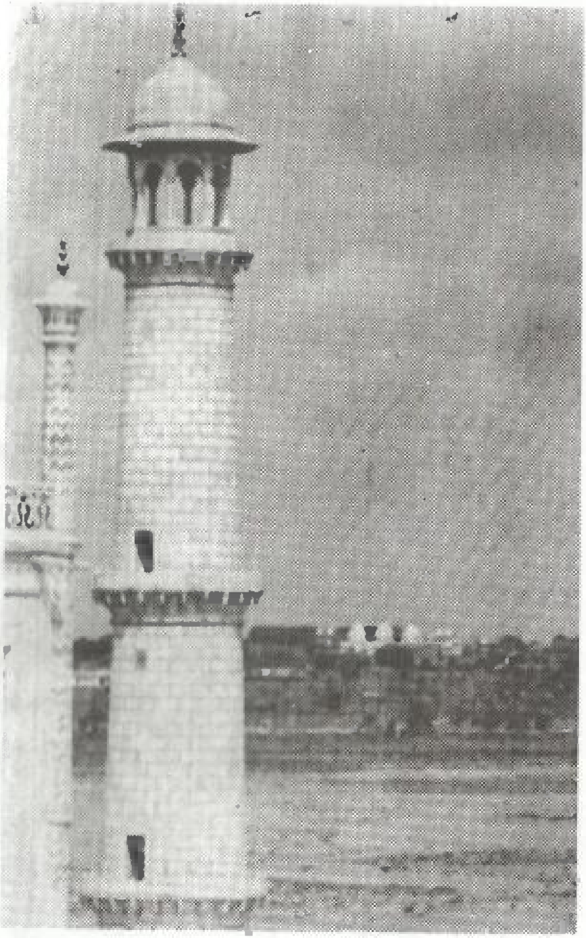
गणेश का चित्र जो शिव मंदिरों के द्वार पर बनाया जाता है। चतुराईपूर्वक एक चित्र में तीन आकृतियाँ (गणेश त्रय दिखते हुए) केसरिया रंगत में घुटनों तक की ऊँचाई में ताज बगीचे के बृहत् लाल द्वार (जहाँ प्रवेश–पत्र खरीदे जाते हैं) में बनाए गए हैं।



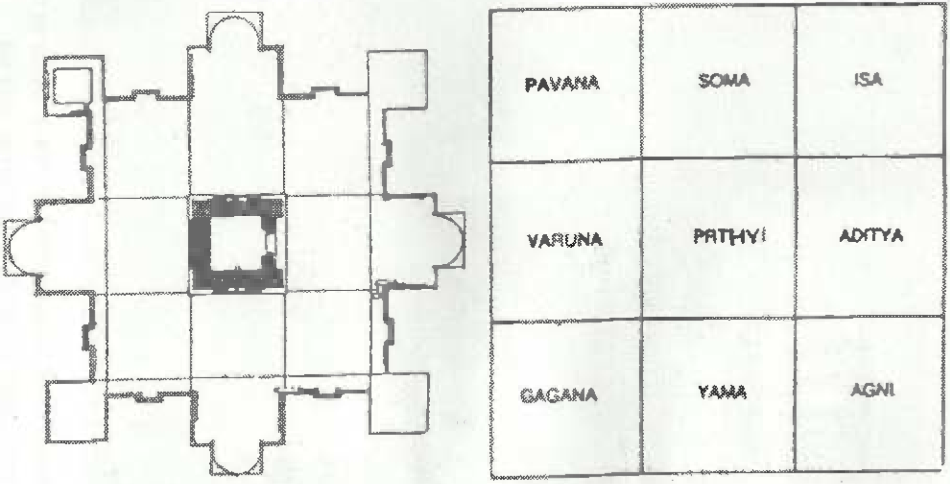
Nakkar Khana



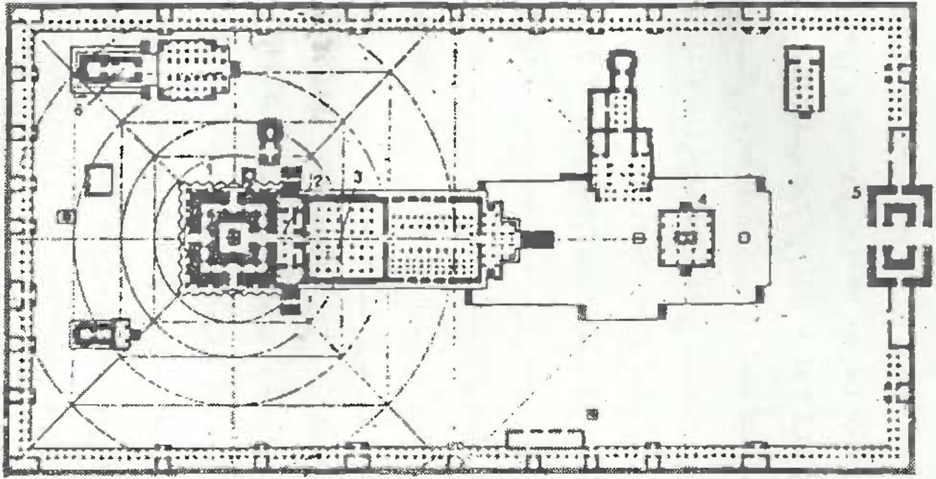
तेजोमहालय के ऊपर कलश का ऊपरी भाग यदि ध्यान से देखें तो त्रिशूल के आकार का है व इस त्रिशूल का मध्य पूजा में प्रयोग आनेवाले कलश और इसके ऊपर रखे नारियल की स्पष्ट आकृति देता है।



चार कोणों पर बनी मीनारें जिनकी गैलरियाँ सर्प फन के आकार पर रखी गई प्रतीत होती हैं। ये मीनारें मंदिर की सुरक्षा चौकी एवं रौशनी के लिए प्रयोग की जाती थीं।



अन्य वैदिक मंदिरों की तरह ताजमहल के नक्शे को भी नौ वर्गों में विभक्त कर वैदिक वास्तु के सुंदर उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। वैदिक मान्यतानुसार खगोलीय शक्तियाँ व वास्तु पुरुष दर्शाते खंडारेखित नक्शे को देखें।



यह चित्र ताजमहल का नहीं है। यह चित्र वस्तुतः नक्शा है बृहदीश्वर मंदिर, तंजुवूर, तमिलनाडु का। इसी मानचित्र पर आधारित एक शिव मंदिर ईसा पूर्व का योरुप में है जिसे ईसा पश्चात् चर्च में परिवर्तित किया गया। तीन शताब्दी बाद जिसे मस्जिद बना दिया गया।

هردو را از هم جدا می ساخت - و بهمین زورهای بیجا بیمار شده پس از چندی در زندگی پدر سپری شد - سابقاً چون فتح خان پسر عنبر بوسیلهٔ یمین الدوله آصفخان عرضه داشت مشتمل بر دولتخواهی و هوا جوئی فرستاده معروض داشته بود - که این خدمت گذار اخلاص شعار بی نظام را که از کوتاه بینی و شقاوت گزینی بدسگالی و مخالفت اولیای دولت ابد میعاد می نمود - مقید ساخته امیدوار مراحم پادشاهی است - و در جواب آن فرمان قضا جریان عز صدور یافته بود - که اگر گفتار او فروغ راستی دارد جهان را از آلایش وجود بی سود او پاک گرداند - چون فتح خان بعد از ورود حکم جهان مطاع برهان بی نظام بدفرجام را خفه نموده شهرت داد که باجل طبیعی در گذشت - و حسین نام پسر ده ساله او را جا نشین آن بد آئین گردانید - و عرضه داشتی مبنی از حقیقت این واقعه بدست محمد ابراهیم که از نوکران معتمد او بود بدرگاه سلاطین پناه فرستاد - مثال لازم الامتثال صادر شد که اموالی را که بدرون حصار دولتاباد برده - از قلت آذوقه ضایع خواهند شد - آن را با نفایس جواهر و مرصع آلات بی نظام همراه پسر کلان خود برسم پیشکش ارسال نماید - تا ملتمسات او عز قبول یابد و با منشور نوازش کهپوه مرصع و دو اسپ یکی عراقی با زین طلا دیگری ترکی راهوار با زین مطلا مصحوب شکرالله عرب و فتح خان بدولتاباد فرستادند - او داجیرام بانعام چهل هزار روپیه سرافراز گردید روز جمعه هفدهم جمادی الاولی نعش مقدس مسافر اقلیم تقدس حضرت مهد علیا ممتاز الزمانی را که بطریق امانت مدفون

पुरुषोत्तम नागेश ओक

जन्म : २ मार्च १९१७, इन्दौर (म० प्र०)
शिक्षा : बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० बी०
जीवन कार्य : एक वर्ष तक अध्यापन कर सेना में भर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिंगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना द्वारा समर्पण के उपरान्त आज़ाद हिन्द फौज के स्थापन में भाग लिया, सैगौन में आज़ाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

विश्व युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। १९४७ से १९७४ तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समैन में) कार्य किया तथा भारत सरकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। फिर अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में कार्य किया।

देश-विदेश में भ्रमण करते हुए तथा ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें कीं। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ हैं -- ताजमहल मन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, कौन कहता है अकबर महान था?

उनकी मान्यता है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कुप्रयास किया है, वह वैदिक धर्म को नष्ट करने के लिए जानबूझकर किया है और दुर्भाग्यवश हमारे स्वार्थी इतिहासकार इसमें उनका सहयोग कर रहे हैं।

हिन्दी साहित्य सदन
18/28 (मार्ग 28), पंजाबी बाग पूर्वी
नई दिल्ली - 110 026